कालिदास

और

उसकी

काव्य-कला

वागीश्वर विद्यालंकार

कालिदास
और
उसकी काव्य-कला

लेखक
विद्यामार्त्तण्ड वागीश्वर विद्यालंकार
एम०ए०, साहित्याचार्य
भू. पू. अध्यक्ष–संस्कृत-हिन्दी विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली :: पटना :: वाराणसी

भूमिका

गुरुकुल काँगड़ी विश्व विद्यालय में ४० वर्ष तक सस्कृत साहित्य का प्राध्यापक रहते हुए, मुझे समय-समय पर, कालिदास, भवभूति-आदि महाकवियों के सम्बन्ध मे अनेक व्याख्यान देने पडे। वे व्याख्यान, अपने सहयोगी प्राध्यापकों तथा छात्रों को बहुत रोचक तथा नवीनता पूर्ण प्रतीत हुए। उन्होंने आग्रह किया कि उक्त व्याख्यानों को ग्रन्थरूप मे अवश्य प्रकाशित किया जाए जिससे कि अन्यविद्वानो को भी उनपर विचार विमर्श का अवसर मिलसके। किन्तु गुरुकुल में सेवा करते हुए अत्यधिक कार्य व्यग्र रहने के कारण, इस मे कुछ प्रगति न हो सकी।

सन् १९५९ मे, जब मै वहाँ से कार्य मुक्त होकर अपने घर आ गया तो प्राच्य साहित्य के सुप्रसिद्ध तथा उत्साही प्रकाशक अपने मित्र श्री सुन्दरलाल मालिक, मोतीलाल बनारसी दास फर्म ने आग्रह किया कि मै उन्हें शकुन्तला नाटक का हिन्दी अनुवाद तथा उसकी विस्तृत भूमिका लिख कर दूँ। मे स्वय इस कार्य को करना चाहता था और अब मुझे इसके लिए अवकाश भी था। अनुवाद तो शीघ्र ही तैयार हो गया और भूमिका का कार्य प्रारंभ हुआ। मेरी इच्छा थी कि मै कालिदास के सम्बन्ध मे अपने सब विचार इसमे सगृहीत करदूँ। परिणाम यह हुआ कि भूमिका का कलेवर बहुत बढ़ गया। यह देखकर, एक दिन, लाला जी ने मुझसे पूछा कि इस भूमिका को 'कालिदास और उसकी काव्य कला' के नाम से पृथक ग्रन्थ के रूप मे क्यो न प्रकाशित कर दिया जाए। मुझे उनका यह विचार बहुत पसन्द आया और ऐसा करने के लिए मैने उन्हे अपनी स्वीकृति दे दी।

कालिदास भारत का मूर्धन्य कवि है और उसके विषय में देशी तथा विदेशी विद्वान् इतना अधिक लिख चुके है कि अब तत् सम्बन्धी किसी विचार को नवीन कहना दु साहस मात्र प्रतीत होता है अतः मै ऐसा न करूँगा। इसमें कुछ भी नवीन या उपयोगी है अथवा नही इसका निर्णय सुजन पाठक ही कर सकते हैं। स्वयं कालिदास ने लिखा है :—

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्ति हेतवः।
हेम्नःसंलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा ॥१०॥ रघु० सर्ग १ पद्य १०

कालिदास के काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है और मैंने उनके मतों को बिना किसी पक्षपात के रखने का यत्न किया है। यद्यपि मेरा झुकाव उस पक्ष की ओर अधिक है जो उसका जन्म विक्रमीय सवत् के प्रारभ के आसपास मानता है, और उस के लिए मैंने अनेक कारण भी यहाँ प्रस्तुत कर दिये है तथापि उसके लिये मेरा उत्कट आग्रह नही है। इसीलिये मैंने विक्रमोर्वशीय नाटक के वे उद्धरण यहाँ एकत्र कर दिए है जिनमे कुछ अन्य ध्वनि निकलती प्रतीत होती है। विद्वज्जन उन पर विचार करने की कृपा करे।

कालिदास के जन्मस्थान का प्रश्न भी कुछ कम विवादास्पद नही। मैंने उसके सम्बन्ध मे अपना सुझाव उपस्थित किया है। मेरी मान्यता है कि कवि का जन्म हिमालय के किसी ऐसे प्रदेश मे हुआ था जहां भगवती भागीरथी भी साथ साथ बहती है और वह प्रदेश गढवाल ही है अत कालिदास गढवाल का निवासी था। मगध तथा उज्जयिनी के प्रति उसका विशेष लगाव अवश्य है किन्तु वे मुझे उसके जन्मस्थान नही प्रतीत होते। इस सम्बन्ध मे मैंने जो कुछ लिखा है उसके पक्ष या विपक्ष मे यदि विद्वज्जन अपने विचार प्रकट करेंगे तो मैं उनसे लाभ उठाने का यत्न अवश्य करूँगा।

प्रसिद्ध है कि कालिदास शृगाररस का कवि है किन्तु उसका शृगार सुसयत तथा शालीन है इस पर भी मैंने कुछ प्रकाश डालने का यत्न किया है। कालिदास की सौन्दर्य भावना कितनी सूक्ष्म, तरल तथा मधुर है इस पर भी पाठकों को यहाँ कुछ सामग्री उपलब्ध हो सकेगी, साथ ही प्रसिद्ध प्राचीन उक्ति 'उपमा कालिदासस्य' की भी यत्किचित् चर्चा यहां प्रसग वश आगई है आशा है कि उससे सहृदयो का कुछ मनोरजन अवश्य होगा।

यद्यपि ग्रन्थ का आकार बढ गया है तो भी इसमे मेरे सब अभिमत विषयों का समावेश न हो सका इसका मुझे दुख है 'शकुन्तला का अनुवाद तथा कालिदास की नाट्य कला,' अलग प्रकाशित हो रही है। आशा है कि कुछ विषय तो उसमे स्थान पा जाएगे किन्तु फिर भी जो बच रहेगा उसका क्या हो यह भविष्याधीन है।

अन्त मे उन लेखको का धन्यवाद करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ जिनके ग्रन्थो से मैंने लाभ उठाया है। 'विक्रम-स्मृति ग्रन्थ मे मुझे एक जगह ही बहुत सी सामग्री मिलगई अत. उसके प्रकाशक महोदय का मैं ऋणी हूँ। ऐतिहासिक विषय का प्रतिपादन करते हुए मेरे सामने जो भी कठिनाई आई उसके लिए मैंने अपने सुयोग्य शिष्य श्री देवेन्द्र कुमार वेदालकार एम० ए० द्वारा डा० श्री दशरथ शर्मा, रीडर इतिहास विभाग, दिल्ली विश्व-

विद्यालय की सहायता चाही जो उन्होने बड़े प्रेम और उदारता से दी। उक्त दोनों महानुभाव भी मेरे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। अन्त मेयह लिखने की तो आवश्यकता ही नही कि यदि श्री सुन्दरलाल का सहयोग मुझे न मिलता तो सभवत. मेरा यह परिश्रम मेरी अलमारी मे ही बन्द पड़ा रह जाता।

१५–७–१९६३ **वागीश्वर विद्यालंकार**

कालिदास और उसकी काव्यकला

विषय-सूची

महाकवि कालिदास : काल-निर्णय

१. कालिदास के वंश काल आदि का प्रश्न एक समस्या है

महाकवि कालिदास कब तथा कहां उत्पन्न हुए, किन पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों मे उनका जीवन व्यतीत हुवा, किन संघर्षों, विफलताओं और सफलताओं ने उनके विचारों एवं भावनाओं के निर्माण में योगदान किया— इन प्रश्नों का उत्तर आज भी एक कठिन समस्या बना हुआ है।

२. कवि सम्बन्धी कुछ जनश्रुतियों तथा कहानियों से ही सहृदयों की संतुष्टि

सहृदय जन शताब्दियों से इस महाकवि की रचनाओं का रसास्वाद करते आरहे थे किन्तु इसके जीवन वृत्तान्त के सम्बन्ध में कुछ जानने की उत्सुकता ने उन्हें कभी आकुल नही किया। कर्ण परम्परा से चली आ रही कुछ असत्य या अर्धसत्य जनश्रुतियों और रोचक कहानियो से ही उनका हृदय संतुष्ट हो जाया करता था।

३. कवि के सम्बन्ध में प्रसिद्ध किंवदन्तियाँ

रसिक वर्ग बहुत दिनों से यह अनुभव किया करता था कि जिस अद्भुत, मधुर तथा सुकुमार कला का दर्शन इस कलाकार की कृतियों में होता है वह मानवीय नहीं, अतः अवश्य ही किसी देवता की कृपा का फल होगी। और देवता की कृपा के लिए मानव किसी विशेष विपत्ति में ही आतुर होता है। संभवतः इसी आधार पर यह कल्पना की गई कि कालिदास अपने जीवन के पूर्व भाग में अशिक्षित ही नही, किन्तु अत्यन्त मूर्ख भी थे। तभी विवाह की सुहागरात में अपनी विदुषी पत्नी से अपमानित होकर उन्हें काली देवी की शरण में जाना पड़ा और उसके वरदान से वे महाकवि बन गए। फिर देवता की वह कृपा भी भला क्या जो एक वज्रमूर्ख को अद्भुत प्रतिभा न दे सके। अतः देवता के वरदान का महत्व प्रकट करने

के लिए बेचारे कालिदास को वृक्ष की उस शाखा को काटता हुआ दिखाया गया जिसके सहारे वह बैठा था। वरदान का श्रेय काली देवी को दिलवाने में कवि के नाम ने भी सहायता की होगी, क्योंकि किंवदन्ती जगत् में यह प्रश्न ही नहीं उठता कि कवि का नाम 'कालिदास' तो संभवतः उसके माता पिता ने उक्त तथाकथित घटना के पूर्व ही रख दिया होगा। यह भी कहा जा सकता है कि कवि का पहला नाम कुछ और ही रहा होगा तथा काली से वरदान प्राप्ति के अनन्तर ही उसका यह नाम पड गया हो।

४. 'अस्ति कश्चिद्वाग् विशेषः' वाली सूझ

इसके साथ ही किसी चतुर सहृदय की सयोजक कल्पना ने कवि के काव्यों के प्रथम शब्दों—अस्ति, कश्चित्, तथा वाक् को मिला कर, पत्नी द्वारा पीछे से उसके अभिनन्दन की सुन्दर कथा को भी जन्म दे दिया।

५. कवि ने अपने सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा

महाकवि बाण भट्ट ने अपने आश्रय दाता सम्राट् हर्ष का चरित लिखते हुए अपने वंश, जन्म स्थान, तथा जीवन के विषय में भी पर्याप्त प्रकाश डाल दिया। महाकवि भवभूति ने भी अपने नाटकों की प्रस्तावना में अपने वंश, माता पिता, जन्म स्थान आदि के विषय में मौनावलम्बन नहीं किया। पर संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकवि कालिदास ने अपना कुछ भी परिचय देने में इतनी कृपणता क्यों की, यह समझ में नही आता। कवि ने कही भी यह स्पष्ट निर्देश नही किया कि वह कब, किस राजा के समय तथा कहा निवास करता था।

६. बाणभट्ट तथा रवि कीर्त्ति द्वारा कालिदास का स्मरण

ईसा की सातवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे उत्पन्न सम्राट् हर्ष (६०४ ई० पू० से ६४२ ई० पू० तक) के राजकवि बाण भट्ट ने हर्ष चरित[1] में कालिदास को स्मरण किया है किन्तु उसके समय, स्थान, तथा आश्रय दाता राजा का उल्लेख नही किया। उस समय तक कालिदास को हुए कुछ ही शताब्दियां बीती थी, और बहुत संभव है कि उस सम्बन्ध मे लोगों का ज्ञान निश्चयात्मक था। शायद इसीलिए बाण ने उस विषय मे कुछ लिखना सर्वथा अनावश्यक समझा। लगभग उन्ही दिनों सम्राट्

---

१. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मंजरीष्विव जायते। हर्षचरित

पुलिकेशी द्वितीय के राजकवि रवि[1] कीर्ति ने एक शिला[2] लेख में अपनी तुलना कालिदास तथा भारवि से की किन्तु उसने भी अप्रासंगिक होने के कारण वहां इन कवियों के देश काल आदि के विषय में कुछ नहीं लिखा।

७. दण्डी आदि आचार्यों ने कवि के विषय में कुछ प्रकाश नहीं डाला।

दण्डी वामन आदि अलंकार शास्त्र के आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में कालिदास की रचनाओं का आश्रय लेते हुए भी कवि के संबन्ध में कुछ नही लिखा। वे भी संभवतः यही समझते रहे कि 'यह तो सभी जानते हैं' अतः इस विषय में कुछ लिखना पिष्टपेषणमात्र होगा।' यहां हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि भारतीय सहृदय की विशेष रुचि काव्य के प्रति ही रही काव्यकर्ता के प्रति नही। वह समझता था कि उसे तो आम चूसने हैं, आमों के वृक्ष नहीं गिनने।

८. अपने महापुरुषों के विषय में भारतीय लेखकों की उपेक्षा

यह भी आश्चर्य का विषय है कि भारतीय लेखकों ने सिकन्दर जैसे जगद्विजेताओं का मुँह मोड़ देने वाले वीरों का, कही नाम तक नहीं लिया और अशोक, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त जैसे महापुरुषों के कार्यों को स्मरण रखने के लिए ग्रन्थ नही लिखे। फिर बेचारे कवि किस गिनती में आ सकते थे। इस उपेक्षा का दुष्परिणाम यह हुआ कि कुछ काल पश्चात्, जाति के इन महापुरुषों के सम्बन्ध मे प्रामाणिक तथ्यों को जानने वाले व्यक्तियों का सर्वथा अभाव हो गया और आगे आने वाली संततियो के लिए, इन उज्वल ज्योतियों पर अन्धकार का पर्दा पड़ गया।

९ कालिदास के काल के सम्बन्ध में मतभेद

महाकवि कालिदास के प्रामाणिक जीवन परिचय के अभाव में जनता की कल्पना शक्ति ने विकृत जनश्रुतियों और किंवदन्तियों के आधार पर विचित्र कथाओं की सृष्टि करनी प्रारम्भ की। इनमें से किसी कथा के अनुसार यदि यह कवि ईसा से ५७ वर्ष पूर्व, उज्जयिनी मे किसी मालवेश,

१. येनाऽयोजि नवेऽश्म स्थिर मर्थविधौ विवेकिना जिन वेश्म।
स विजयतां रवि कीर्तिः कविताश्रित कालिदास भारविकीर्तिः॥

२. इस शिलालेख का लेख काल—
पञ्चा शत्सु कलौ काले षट्सु पंचशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥ (५५६ शकाब्द या ६३४ ई० प०)।

शकारि, विक्रमादित्य[1] की राज सभा के नवरत्नों में सर्वश्रेष्ठ था तो किसी दूसरी के अनुसार वह ईसा के पश्चात् ११वीं शताब्दी में धारानरेश राजा[2] भोज (१०१८-१०६०) के दरबार का राजकवि था। किन्तु बहुत से ऐतिहासिक विद्वान उसे चौथी पाँचवीं शताब्दी में चन्द्र गुप्त[3] द्वितीय विक्रमादित्य का सम सामयिक स्वीकार करते हैं। किसी कथा में उसे पहले, अत्यन्त मूर्ख और पीछे महाविद्वान् कवि किन्तु विषय लम्पट चित्रित किया गया है और उसकी मृत्यु भी किसी वेश्या के घर में हुई बतलाई गई है तो कोई उसे सब शास्त्रों में पारंगत, प्रतिभा सम्पन्न, आदर्श-ब्राह्मण के रूप में अपने आश्रयदाता सम्राट् की राजसभा का प्रधान रत्न मानते हैं। विविधता की इस खिचड़ी में से सत्य को ढूंढ निकालना टेढ़ी खीर है।

---

१. धन्वन्तरि क्षपणका मरसिंह शंकु वेतालभट्टघट कर्पर कालिदासाः।

(क) ख्यातो वराह मिहिरो नृपतेः सभायां।
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

(ख) हालेनोत्तम पूजया कवि वृषः श्रीपालितो लालित।
ख्यातिं कामपि कालिदास कवयोनीताः शकारातिना॥
श्री हर्षो विततार गद्यकवये बाणाय वाणीफलं।
सद्य. सत्क्रिययाभिनन्दमपि च श्रीहारवर्षोऽग्रहीत्॥

॥ रामचरित में अभिनन्द

(ग) सर विलियम जोन्स कालिदास का काल ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी निर्धारित करते है तथा डा० पीटर्सन का मत है कि कालिदास का काल ईस्वी सन् के प्रारम्भ के आस-पास है। (डा० राधाकृष्णन द्वारा लिखित साहित्य अकेडमी दिल्ली द्वारा प्रकाशित मेघदूत की भूमिका के पृ० ७ पर फुटनोट।)

२. बल्लाल पण्डित कृत भोज प्रबन्ध

३. कालिदास का काल अश्वघोष तथा भास के पश्चात् ही मानना चाहिए। उसे ग्रीक ज्योतिष शास्त्र के जामित्र आदि पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान है। उसके नाटकों की प्राकृत अश्वघोष तथा भास के नाटकों की प्राकृत से निश्चय ही अर्वाचीन हैं। उसे गुप्त काल से पूर्ववर्ती नहीं स्वीकार किया जा सकता ·······। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी और कालिदास का सम्बन्ध भारतीय परम्परा के अनुसार विक्रमादित्य से प्रसिद्ध है। बैरीडेल कीथ कृत हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर का हिन्दी अनुवाद पृ० ८०।

किन्तु आज का पाठक इन परस्पर विरोधी किंवदन्तियों से सन्तुष्ट नहीं होता और वह कवि के देश, काल, जीवन वृत्तान्त आदि के सम्बन्ध में सत्य की खोज करना चाहता है। यह दुःख का विषय है कि स्वयं कवि ने तथा अन्य भारतीय लेखकों ने तो इस विषय में चुप्पी साधी ही, पर उन चीनी यात्रियों ने भी इस महाकवि के लिए दो शब्द तक न लिखे जिन्होंने अपनी यात्रा का विस्तृत विवरण तथा उस समय के भारत का बहुत कुछ आँखों देखा हाल अपने यात्रा वृत्तान्तों में लिखा है। फाहियान सन् ४०४ ई० प० में चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल मे भारत आया तथा ६, ७ वर्ष पश्चात् सन् ५११ ई० में वापिस लौट गया। वह ३, ४ वर्षतक तो पाटलिपुत्र में ही रहा जो उन दिनों गुप्त सम्राटों की राजधानी था। यदि कालिदास का काल वही माना जाए तो कुछ आश्चर्य नही कि इन वर्षों मे फाहियान का साक्षात् परिचय भी उससे हुआ हो। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे (६०४ ई० से ६४२ ई० तक) सम्राट् हर्षवर्धन के राजकविबाण ने कालिदास की कविता की प्रशंसा की है किन्तु उन्हीं दिनों भारत मे आए दूसरे चीनी यात्री ह्वेनत्सांग ने कालिदास का कुछ भी जिकर नही किया।

१०. चीनी यात्री भी कालिदास के विषय में चुप रहे

इस प्रकार कवि के जीवन वृत्तान्त के सम्बन्ध में प्रामाणिक बहिः साक्ष्यों का प्रायः अभाव होने के कारण केवल अनुश्रुतियों तथा अन्तः साक्ष्यों का ही आधार शेष रह जाता है। कठिनाई यह है कि ये दोनों आधार भी विचारक को किसी निर्विवाद निर्णय पर नहीं पहुँचा पाते। तथापि, इन्हीं आधारों को लेकर श्री लक्ष्मीधर कल्ला ने अपने निबन्ध 'कालिदास का जन्म स्थान' में ठीक ही लिखा है कि कवि तथा उसके जन्म स्थान के विषय में किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए आवश्यक है कि विचारक उसकी रचनाओं का निरन्तर स्वाध्याय करे, जहाँ कवि जाता है वह भी उसके साथ वहीं पहुँचे, कवि जो कुछ देखता है वह भी उसे देखे, कवि जो कुछ चिन्तन करता है वह भी उसी का चिन्तन करे। (बर्थ प्लेस ऑफ कालिदास पृ० ३ पंक्ति ६-९) अतः, इसी पद्धति पर कवि के ग्रंथों का अनुशीलन करके यहाँ कुछ विचार करने का यत्न किया जा रहा है।

११. कवि के काल के विषय में केवल अन्तः साक्ष्यों का ही आधार शेष रह जाता है

विक्रमोर्वशीय नाटक के नाम का साक्ष्य—ऊपर ऐसे दो श्लोक उद्धृत किए जा चुके हैं जिनकी रचना उस अनुश्रुति के आधार पर हुई प्रतीत होती है जिसके अनुसार कालिदास किसी विक्रमादित्य के सभारत्न थे । इस अनुश्रुति का समर्थन कवि के एक नाटक 'विक्रमोर्वशीय' के नाम से भी होता है । इस नाम का अर्थ पाणिनि-व्याकरण के नियम के अनुसार वह ग्रथ है जिसकी रचना विक्रम तथा उर्वशी के विषय को लेकर की गई हो। किन्तु सारे नाटक मे विक्रम नाम का कोई पात्र नही है । नाटक का नायक चन्द्रवंशी राजा पुरुरवा है, और नायिका उर्वशी । अत. नाटक का नाम 'पुरुरव-उर्वशीय' होना चाहिए था । कोई कह सकता है कि विक्रम से प्राप्त उर्वशी=विक्रमोर्वशी, और इस सम्बन्ध में लिखा गया ग्रथ=विक्रमोर्वशीय । किन्तु यह योजना क्लिष्ट कल्पना मात्र है क्योकि ग्रंथ के नाम मे 'छ' प्रत्यय तभी हो सकता है जब उसका विषय शिशुक्रन्द, यमसभा, द्वन्द्व (दो व्यक्तियो के नाम) या इन्द्रजनादि में से कोई हो । किन्तु उक्त योजना इनमे से किसी भी शर्त को पूरा नही करती । प्रतीत होता है कि कवि ने अपने आश्रय दाता विक्रम के जीवन की किसी विशेष घटना को चिरस्मरणीय बनाने के लिए या उसके लिए किए गए, किसी मांगलिक समारोह के अवसर पर खेलने अथवा राजा का भेट करने के लिए उन्ही दिनों लिखे गए इस नाटक का नाम 'विक्रमोर्वशीय' रख दिया और व्याकरण के आचार्य का मन रखने के लिए विक्रम तथा पुरुरवा का अभेद मान लिया।

१२. (क) कवि का विक्रम से सम्बन्ध

इसी नाटक के प्रथमाङ्क के पन्द्रहवे श्लोक के आगे गन्धर्व राज चित्ररथ का वाक्य 'विक्रम की उस महिमा के लिए मै आपको बधाई देता हूँ जिसके कारण आप इन्द्र का भी उपकार करने की क्षमता[1] रखते हैं ।' तथा उसके कुछ ही आगे उसका दूसरा वाक्य 'ठीक है । यह नम्रता ही विक्रम की शोभा है ।' ध्यान देने योग्य हैं । दोनों ही जगह विक्रम शब्द का प्रयोग वाक्यो के वाच्यार्थ के प्रतिपादन के लिए आवश्यक न था। "आप (अर्थात् विक्रमादित्य) ऐसे शक्ति शाली हैं कि इन्द्र को भी आपका आभार स्वीकार करना पड़ता है" तथा 'विनय ही

१२. (ख) विक्रमोर्वशीय नाटक में किसी विक्रम का स्मरण

१ महेन्द्रोपकार पर्याप्तेन विक्रम महिम्ना वर्धते भवान् । (विक्रमोर्वशीय अंक १ श्लोक १५ के आगे ।)

आपका भूषण[1] है।' ऐसा भी कहा जा सकता था। किन्तु किसी व्यंग्य-अर्थ को प्रकट करने के लिए ही कवि ने दोनों वाक्यों में जानबूझ कर 'विक्रम' शब्द का प्रयोग किया है, यह बात सारे प्रसंग को देखने से प्रकट हो जाती है। कल्पना की जा सकती है कि जब यह नाटक विक्रमादित्य की उपस्थिति मे उसके दरबार में खेला गया होगा और जब एक के बाद एक करके दो बार, पास पास ही यह विक्रम शब्द बोला गया होगा तब दर्शक मण्डली में उसकी कैसी उल्लासपूर्ण प्रतिक्रिया हुई होगी।

१३. (क) जीवानन्द विद्यासागर प्रकाशित अभिज्ञान शाकुन्तल की प्रस्तावना में विक्रम का स्मरण

श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा कलकत्ता से सन् १९१४ मे प्रकाशित अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक की प्रस्तावना[2] से प्रतीत होता है कि उक्त नाटक काव्य मर्मज्ञ श्री विक्रमादित्य की राजसभा में खेलने के लिए लिखा गया था।

१३. (ख) श्री केशव प्रसाद मिश्र की हस्तलिखित प्रति का साक्ष्य

काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पडित केशव प्रसाद मिश्र के पास सुरक्षित अभिज्ञान शाकुन्तल की एक हस्तलिखित प्रति (इस प्रति का लेखन काल अगहन सुदि पचमी, संवत् १६९९ विक्रमीय अर्थात् ईस्वी सन् १६४२ है) की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि कालिदास के आश्रयदाता राजा का वैयक्तिक नाम 'विक्रमादित्य' था और उपाधि साहसांक[3]। विक्रमादित्य उसकी उपाधि

---

१. युक्तमेतत्, अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकार। (विक्रमो० अंक १ श्लोक १७ के आगे।)

२. सूत्रधारः—'आर्ये इयहि रसभाव विशेष दीक्षागुरो विक्रमादित्यस्याभिरूप भूयिष्ठा परिषत्। अस्यां च कालिदास ग्रथित वस्तुना नवेनाभिज्ञान-शाकुन्तलनामधेयेन नाटकेनो पस्थातव्यमस्माभिः।" अभिज्ञान शाकुन्तल के जीवानन्द विद्यासागर वाले संस्करण की प्रस्तावना, सन् १९१४, कलकत्ता)

३. सूत्रधारः—"आर्ये रसभाव विशेष दीक्षा गुरो विक्रमादित्य साहसाङ्क-स्याभिरूप भूयिष्ठेयं परिषत्। अस्यां च······" (कालिदास ग्रन्थावली के परिशिष्ट में डा० राजबलि पाण्डेय का लेख—विक्रमादित्य पृ ११)

न थी जैसी कि गुप्तवंशी सम्राटों की। चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा स्कन्दगुप्त के नाम तो और थे किन्तु उपाधि विक्रमादित्य थी।

१३. (ग) अभिज्ञान शाकुन्तल की प्रस्तावना में विक्रम का निर्देश होना आवश्यक है, न होना अस्वाभाविक।

मालविकाग्निमित्र[1] नाटक कवि की प्रथम रचना प्रतीत होती है क्योंकि उसकी प्रस्तावना में उसने अपना परिचय नए तथा अप्रसिद्ध कवि के रूप में दिया है और पुराने कवियों—भास आदि के नाटकों के सामने उसकी सफलता में सन्देह प्रकट किया है। विक्रमोर्वशीय की प्रस्तावना में इस प्रकार के सन्देह को स्थान नही मिला। तब तक, कवि मे कुछ आत्मविश्वास उत्पन्न हो चुका था। उसने समझ लिया था कि पहले कवियो के प्रबन्धों के साथ तुलना करने मे उसकी रचना उन्नीस नहीं तो भी उसने दर्शकों से उस उदारता तथा सहानुभूति[2] की याचना की है जो अपने प्रेमियों से की जाती है। यह तो ऊपर लिखा ही जा चुका है कि इस नाटक की रचना विक्रमादित्य की किसी विजय के उपलक्ष में ही की गई होगी, और इसीलिए उक्त नाटक का नामकरण भी विक्रम के नाम पर किया गया। तब यह बिलकुल स्वाभाविक ही है कि इसके अनेक वर्षों पश्चात्, अपने आश्रयदाता सम्राट से अनेक प्रकार के सम्मान प्राप्त कर चुकने पर, वह अगले नाटक मे उसको उचित गौरव प्रदान करे। इसलिए अभिज्ञान शाकुन्तल की प्रस्तावना मे विक्रमादित्य नाम का निर्देश न

१ "अभिहितोऽस्मिविद्वत्परिषदा, कालिदास ग्रथित वस्तु मालविकाग्निमित्रं नाम नाटक मस्मिन् वसन्तोत्सवे प्रयोक्तव्यमिति··· ···।" पारि-पार्श्वकः—मा तावत्। प्रथित यशसा भाससौमिलक कविपुत्रादीनां प्रबन्धानति क्रम्य वर्त्तमान कवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं बहुमानः।" मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना।

२. सूत्रधारः—मारिष, परिषदियं पूर्वेषाकवीना दृष्ट रस प्रबन्धा। अहमस्यां कालिदास ग्रथितवस्तुना नवेन नाटकेनोपस्थास्ये। उच्यतां पात्रवर्गः स्वेषुस्वेषु पाठेष्ववहितैर्भ वितव्यमिति।

पारिपार्श्वक.—यथाऽऽज्ञापयति भावः। (इतिनिष्क्रान्त.)

सूत्रधार.—यावदिदानी मार्य विदग्ध मिश्रान् विज्ञापयामि (प्रणिपत्य)
प्रणयिषु या दक्षिण्यादथवा सद्वस्तु पुरुष बहुमानात्।
श्रृणुत जना अवधानात् क्रियामिमा कालिदासस्य॥ विक्रमो० प्रस्तावना, श्लोक २॥

होना ही कुछ विचित्र लग सकता है न कि उसका होना। अतः किन्ही प्रतियों में विक्रमादित्य का नाम न देख कर जीवानन्द विद्यासागर वाली अथवा श्री केशव मिश्र वाली हस्त लिखित प्रति की प्रामाणिकता पर सन्देह करना उचित नहीं।

१४. रघुवंश में पाण्ड्यों की राजधानी उरगपुर कही गई है। अतः कवि का काल ईसा की प्रथम शताब्दी से पूर्व होना चाहिए।

कालिदास ने रघुवंश के सातवे सर्ग में इन्दुमती की स्वयंवर सभा में आए पाण्ड्य नरेश की राजधानी उरगपुर[1] (कावेरी के तट पर स्थित उराइयूर) लिखी है। श्री चिन्तामणी विनायक वैद्य का कथन है कि इस प्रसंग मे दक्षिण भारत के चोल तथा पल्लव राजाओं का उल्लेख नही है। परन्तु इतिहास से सिद्ध है कि चोल नरेश कारिकाल ने ईसवी सन् की पहली शताब्दी में पाण्ड्यों को परास्त कर दिया था, और इसके बाद तीसरी शताब्दी मे एक बार फिर पाण्ड्यों ने प्रबलता प्राप्त कर अपनी राजधानी मदुरा में स्थापित की। तीसरी शताब्दी के पश्चात् पाण्ड्यो की राजधानी उरगपुर कभी न बनी। अतः कालिदास का काल तीसरी शताब्दी से पूर्व ही होना चाहिए। यदि कालिदास का काल चन्द्रगुप्त द्वितीय का समय माना जाए तो पाण्ड्यों की राजधानी के रूप में मदुरा का नाम आना उचित था। रघु की दिग्विजय के प्रसंग में भी पाण्ड्यों का ही उल्लेख है चोल तथा पल्लवों का नही। इससे भी यही सिद्ध होता है कि कालिदास ईसा की पहली शताब्दी से पूर्व ही विद्यमान रहा होगा। (विक्रम स्मृति ग्रन्थ में पृष्ठ २७२ पर महामहोपाध्याय श्री विश्वेश्वर नाथ रेऊ का लेख।)

---

१. (क) अथोरगा रव्यस्य पुरस्य नाथं दौवारिकी देवसरूप मेत्य।
इतश्चकोराक्षि विलोकयेति पूर्वानुशिष्टां निजगाद भोज्याम्॥

(ख) पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन।
आभाति बालातप रक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः॥
रघु सर्ग ६, श्लोक ५९, ६०।

(ग) दिशिमन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे॥ रघु ४ सर्ग का पद्य ४९।

१५. (क) मेघदूत में विदिशा को दूर दूर तक प्रसिद्ध राजधानी लिखा है। यह अवस्था ईस्वी सन् के प्रारम्भ के पश्चात् नहीं रही।

कालिदास ने मेघदूत मे विदिशा को दूर दूर तक प्रसिद्ध तथा दशार्ण देश की राजधानी लिखा है। १४८ ई० पूर्व यह विदिशा शुंगवंशीय शासक अग्निमित्र की राजधानी थी। शुंग वंश मे सब मिला कर दस राजा हुए जिन्होने १८० ई० पू० से ७२ ई० पूर्व तक राज्य किया। इसी काल में विदिशा को राजधानी रहने का गौरव प्राप्त हुआ। विदिशा के निकट बेसनगर में प्राप्त एक लेख से पता चलता है कि शुग वंशीय नवें राजा भागभद्र के शासन काल मे (११२ ई० पू० से ८१ ई० पू० तक) और उसके राज्यारोहण के चौदहवे वर्ष मे, तक्षशिला के यवन राजा अन्तिलिखिकद के राजदूत हेलियोदोरस ने वहा पर विष्णु भगवान् के सन्मानार्थ एक गरुडध्वज का निर्माण करवाया था। (वि० स्मिथ कृत, अर्ली हिस्टरी आफ इण्डिया ६०० ई० पू० से मुसलमानी विजय तक के पृ० २१४ का फुटनोट ३।) इससे सिद्ध होता है कि उस समय विदिशा की ख्याति तक्षशिला तक फैली हुई थी और उसके साथ दूर-दूर के शासक सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे। सारे मेघदूत मे राजधानी विशेषण केवल विदिशा के साथ लगाया गया है और उसे दिशाओ मे प्रसिद्ध भी कहा गया है। शुग काल मे उज्जयिनी अपने सौन्दर्य, वैभव, उदयन आदि राजाओ के कारण ऐतिहासिक महत्व तथा महाकाल के कारण अपने धार्मिक महत्व के लिए अवश्य प्रसिद्ध थी किन्तु राजधानी न थी।

१५. (ख) ईसा के प्रथम शतक में विदिशा का पतन

७२ ई० पू० में कण्वों द्वारा शुग वंश का अन्त हो जाने पर विदिशा राजधानी न रही। पूर्व में पाटलीपुत्र तथा पश्चिम मे धीरे धीरे उज्जयिनी का महत्व बढ़ गया। इस के पश्चात्, भारत के इतिहास में, किसी बड़े प्रदेश की राजधानी बनने का गौरव विदिशाको कभी प्राप्त नही हुआ। यह असंभव नही कि इसके कुछ समय पीछे भी कई वर्ष तक वह पुरानी राजधानी के रूप में स्मरण की जाती रही हो और पहले राज्याधिकारियों का निवास स्थान होने के कारण उसका राजनीतिक महत्व भी एक दम ही समाप्त न हो गया हो, क्योंकि कण्व वंश के संस्थापक वासुदेव ने देवभूति को मार कर उसका राज्य छीन लिया था किन्तु उसके कुल ने केवल ४२ वर्ष ही राज्य किया। इससे ज्ञात होता है कि इन ४२ वर्षों में भी राजनीतिक संघर्ष तथा उथल पुथल निरंतर होती रही और शीघ्र ही किसी

शक्तिशाली नये राज्य की स्थापना हो सकी। अतः कालिदास का काल इसके आसपास ही होना चाहिए।

भारत के पुरातत्त्व विभागीय सर्वे की सन् १९०९–१० की रिपोर्ट में ४०वें पृष्ठ पर निम्न सूचना[1] प्रकाशित हुई है। "सन्

१३. (घ) भीटा में प्राप्त मण्डलक का साक्ष्य १९०९ तथा १० मे सबसे महत्वपूर्ण नवीन अनुसन्धान की वस्तु निश्चय ही महाशय मार्शल द्वारा अलाहाबाद के निकट, 'भीटा' स्थान से खोद कर निकाला गया मिट्टी का एक मण्डलक है। पकी मिट्टी के इस सुन्दर मण्डलक को देख कर, कालिदास के शकुन्तला नाटक के एक दृश्य की याद स्वतः ही आ जाती है। इसमें बने चार घोड़ो वाले एक रथ पर सवार दो व्यक्ति संभवतः राजा दुष्यन्त तथा उसका सारथि हैं। एक ऋषि उनसे प्रार्थना कर रहा है कि वे आश्रम के पालतू मृग को न मारें। उसी मण्डलक मे एक कुटिया बनी है जिसके सामने एक कन्या वृक्षों को सींच रही है। यह कन्या, संभवतः नाटक की नायिका शकुन्तला ही है।" उसी रिपोर्ट में आगे फिर लिखा है कि 'इसमे सन्देह नही कि यह मण्डलक शुंगकाल (१८० ई० पू० से ७२ ई० पू०) का है। अतः कालिदास से बहुत पहले का है। इसलिए इसका सबन्ध शकुन्तला नाटक से जोडना ठीक नही'

---

1. The most important work of research carried out in 1909-10 was undoubtedly Mr. Marshall's excavation at Bhita near Allahabad... ..The beautiful tera cotta medallion found by Mr. Marshall reminds us of a scene from...the Shakuntla. In the two men on the quadringa in the centre of medallion we may perhaps see king Dushyanta and his charioteer who are being entreated by a hermit not to kill the antelope which has taken refuge in Kanva's hermitage. We note also the hermit's hut and in front of it a girl watering the trees in which we may recognise Shakuntla, the heroine of the play." (From the Report of the Archaelogical Survey of India for 1909-10 page 40.)

   The Report continues—"The medallion which must belong to the Sunga period, is no doubt, much anterior to Kalidas, and on that account the identification cannot be regarded as certain.

रिपोर्ट के लेखक ने कालिदास को शुंगकाल से बहुत पीछे का अर्थात् गुप्तकाल का स्वीकार कर लिया और अपनी इस मान्यता के कारण ही उसे मण्डलक के इस चित्र का सम्बन्ध शकुन्तला नाटक के उक्त दृश्य से न जोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा, और यह कल्पना करनी पड़ी कि सभवत. शुंग काल मे भी कोई ऐसा नाटक या काव्य रहा होगा जिसके आधार पर किसी ने उक्त मण्डलक की रचना की होगी, और कालिदास ने भी संभवत उसी से अपने नाटक के प्रथम अक के उस दृश्य के लिए प्रेरणा प्राप्त की हो। यहाँ यह स्मरणीय है कि महाभारत के शकुन्तला उपाख्यान में मृग का पीछा करने तथा उसे न मारने के लिए ऋषि के निषेध का वर्णन नही पाया जाता और मुनि कन्या द्वारा आश्रम के वृक्षो को सीचने की चर्चा भी वहाँ नही है। पद्म पुराण में यह विषय अवश्य मिलता है किन्तु यदि कालिदास को पद्मपुराण का ऋणी मान लिया जाए तो उसकी मौलिकता तथा महत्व कुछ भी नही रह जाते क्योंकि अभिज्ञान शाकुन्तल की कथावस्तु के वे सब सुन्दर प्रसंग जो कालिदास की प्रतिभा के चमत्कार माने जाते है, अनघड़ रूप में, पद्मपुराण के शाकुन्तलोपाख्यान मे विद्यमान हैं। इसलिए यही मानना उचित है कि किसी परवर्ती लेखक ने, कालिदास की रचनाओं के आधार पर इन कथानकों का निर्माण करके उनका समावेश उस पुराण में कर दिया।

रिपोर्ट लेखक का अनुचित पक्षपात

मालविकाग्निमित्र कालिदास का प्रथम नाटक है, यह पहले प्रतिपादित किया जा चुका है। इस नाटक का नायक मगध सम्राट् पुष्यमित्र का पुत्र है जो अपने पिता के विस्तृत राज्य के एक प्रदेश का शासक बन कर तब विदिशा में शासन कर रहा था। उसने कोई ऐसे महान् कार्य नही किए जिनके कारण कालिदास जैसा महाकवि उसे अपने नाटक का नायक बनाता। इसके उत्तर में साहित्य शास्त्री लोग कह सकते हैं कि मालविकाग्नि मित्र नाटक शृंगार रस प्रधान है और उसका नायक अग्निमित्र धीरललित[1] नायक है अत यह आवश्यक नहीं कि उसने कोई वीरता के कार्य किए हों। धीरललित नायक का वर्णन राज्य कार्यों से निश्चिन्त, सदा

१६. (क) मालविकाग्निमित्र नाटक का साक्ष्य

---

१. निश्चिन्तोमृदु रनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्॥ साहित्य दर्पण ६ठा परिच्छेद

नृत्य गीत आदि का आनन्द लेने वाले प्रेमी तथा स्वभाव से कोमल प्रकृति वाले पात्र के रूप में किया जाता है और अग्निमित्र में ये सब विशेषताएँ पाई जाती हैं अतः उसे नाटक का नायक बनाने में क्या आपत्ति हो सकती है। वह उस सुप्रसिद्ध[1], मगध सम्राट्, पुष्यमित्र का ज्येष्ठ पुत्र है जिसने अन्तिम बौद्ध राजा बृहद्रथ को मारकर भारत में फिर से ब्राह्मण राज्य की स्थापना की, ग्रीक[2] आक्रान्ताओं को परास्त किया और अश्वमेध[3] यज्ञ किए। उसने स्वयं भी विदर्भ[4] में विद्रोह का दमन किया और उसके पुत्र वसुमित्र ने सिन्धु के दक्षिण तट पर अश्वमेध के घोड़े को पकड़ने वाले यवनों[5] पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार उसमे किसी उत्तम नायक के सभी गुण पाए जाते हैं। उसे नाटक का प्रधान पात्र बनाकर कालिदास ने कुछ भी अनुचित नहीं किया।

१६. (ख) अग्निमित्र को नाटक का नायक क्यों बनाया गया?

इस प्रसंग में यह प्रश्न विचारणीय है कि संस्कृत साहित्य के प्राचीन तथा प्रधान नाटकों मे केवल मालविकाग्निमित्र ही ऐसा है जिसका नायक रामायण, महाभारत या पुराणों का कोई विशेष व्यक्ति न होकर एक अत्यन्त साधारण राजा है। भास के स्वप्नवासवदत्त नाटक के नायक उदयन तथा हर्ष के नागानन्द नाटक के नायक जीमूत

---

१. (K. P. Jayaswal holds that the Sungas were Brahmanas and occupied a high position in the theological world at that early date. Pushyamitra belonged to the family of the royal chaplain (purohit) of the Mauryas, who though heterodox since Ashoka's reign probably retained the family nominally in its old position. According to the author the later Mauryas were degenerate and politically weak and Pushyamitra was forced to slay Brihadratha in the interest of the empire, which was threatened by the Yavanas or Bactrian Greeks under Menander. (The Early History of India (600 B. C. to...) by V. A. Smith. Page 208 foot note)

२. The invasion was repelled after a severe struggle, and the Greek king was obliged to retire to his own country. (The Early History of India by V. A. Smith page 210.)

३. प्राचीन भारत हिन्दी अनुवाद पृ० १२७ श्री सी० एस० श्री निवासाचारी तथा एम० एस० रामा स्वामी, अनुवादक गोरख नाथ चौबे।

४. 'वशीकृतः किल वीरसेन प्रमुखैर्भर्तुर्विजय दण्डैर्विदर्भनाथः। मालविकाग्निमित्र अंक ५,

५. ततः परान् पराजित्य वसु मित्रेण धन्विना। प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निवर्तितः॥ माल० अंक ५ श्लोक १५॥

वाहन की तरह उसका जन्म गन्धर्व विद्याधर आदि किसी देव योनि में नहीं हुआ। युधिष्ठिर भीम आदि महाभारत के पात्र तो हैं ही और उनका जन्म भी धर्मराज सूर्य, पवन आदि देवताओं से हुआ है। यद्यपि मुद्राराक्षस नाटक का नायक चन्द्रगुप्त पूर्णतया मानव है तो भी उसे नाटककार ने विष्णु का अवतार मान लिया है। साथ ही वह सारे भारत का स्वतन्त्र सम्राट् और नये राजवंश का संस्थापक है। ये विशेषताएं अग्निमित्र में नहीं पाई जाती। यशस्वी कार्यों के कारण यदि नायक का चुनाव करना होता तो उसका पिता पुष्यमित्र अधिक उपयुक्त ठहरता। कवि ने ऐसा क्यों न किया—इस पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

१६ (ग) ईसा की सातवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे विद्यमान, बाण ने हर्षचरित में पुष्यमित्र को स्वामी का वध करने वाला तथा अनार्य लिखा है। कालिदास का काल यदि चन्द्रगुप्त द्वितीय का समय (३७५ ई० प० से ४१५ ई० प०) माना जाय तो वह बाण से लगभग २०० वर्ष पूर्व, और यदि ईसा से ५७ वर्ष पूर्व माना जाये तो वह उससे लगभग ६५० वर्ष पूर्व हुआ। दोनों ही अवस्थाओं में वह पुष्यमित्र तथा अग्निमित्र के कार्यों के सम्बन्ध मे बाण की अपेक्षा अधिक ज्ञान रखता था। अत उनके प्रति जिस रोष तथा निन्दा का आभास हमें बाण के लेख में मिलता है वे कालिदास के समय और भी अधिक तीव्र रहे होंगे, तब कवि ने जनता के रोष के पात्र इन व्यक्तियों के चरित को अपने प्रथम नाटक की कथावस्तु के रूप मे चुनने का साहस कैसे किया? अवश्य ही इसका कोई कारण होना चाहिए।

उसने सम्राट की उपाधि क्यों न धारण की?

१६. (घ) **पुष्य मित्र का व्यक्तित्व**—यह सर्वविदित है कि मौर्य वंश के अन्तिम तथा निर्बल राजाओं के राज्यकाल में बौद्ध धर्म में बुराइयों ने घर कर लिया था और उसके विरुद्ध वैदिक भावनाएँ उभर रही थीं। बौद्धमठ अनाचार के अड्डे बन गए थे तथा भिक्षु-भिक्षुणियों का समाज में सम्मान न रहा था। अन्तिम मौर्य राजा बृहद्रथ निर्बल तथा मूर्ख था। उसने प्रजा को जो आश्वासन दिये थे वह उनका पालन न कर सका। उसका सेनापति पुष्यमित्र ब्राह्मण था। परिस्थिति का लाभ उठाकर संभवतः उसने सम्राट का वध करवा दिया और इसीलिए बाण ने उसे अनार्य कह कर

पुकारा[1] है। जान पड़ता है कि राजा की मृत्यु पर राजधानी में या देश में कोई आन्दोलन नहीं हुआ। यदि कुछ थोड़ी-सी उथल-पुथल हुई भी हो तो उसे दबा दिया गया। पुष्यमित्र ने प्रारम्भ में कुछ समय के लिए एक स्वामी भक्त सेवक की तरह उसके प्रतिनिधि के रूप में रह कर ही राज्य का सूत्र अपने हाथ में लेना उचित समझा। राजा के वध जैसी महत्वपूर्ण घटना के सम्बन्ध में जनता में अवश्य ही दो पक्ष बन गए होंगे, एक यदि पुष्यमित्र को इसके लिए दोषी ठहराता होगा तो दूसरा उसे निर्दोष सिद्ध करता होगा। कुछ आश्चर्य नहीं कि ये दो पक्ष घटना के बहुत वर्ष पीछे तक भी चर्चा के विषय बनते रहे हों और कालिदास का झुकाव दूसरे पक्ष की ओर ही अधिक हो। मालविकाग्निमित्र नाटक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि (क) बहुत समय बाद, यहाँ तक कि दिग्विजय के लिए छोड़े गए अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के सकुशल लौट आने पर भी पुष्यमित्र[2] अपने को सम्राट न कह कर सेनापति ही लिखता रहा। (ख) अन्तःपुर के कर्मचारी[3] कंचुकी ने राजा अग्निमित्र को मगध से आए पत्र की सूचना देते हुवे उसके पिता को (पुष्यमित्र को) सेनापति ही कहा है सम्राट नहीं। (ग) अग्निमित्र की रानी धारिणी[4] ने भी अपने श्वशुर के लिए उसी सेनापति पद की

---

१. प्रतिज्ञादुर्बलं च बलदर्शन व्यपदेश दर्शिता शेष सैन्यः सेनानीरनार्यो मौर्यं बृहद्रथ पिपेष पुष्यमित्रः। (हर्षचरित उच्छ्वास ६, पृ. १९९ बबई संस्करण)

२. "स्वस्ति, यज्ञशरणात् सेनापतिः पुष्यमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्त स्नेहात् परिष्वज्य दमनुदर्शयति विदित मस्तु। यो सौ राजसूययज्ञ दीक्षितेन मया राजपुत्र शतपरिवृतं वसु मित्र गोप्तारमादिश्य वत्सरोपात्त नियमो-निरर्गलस्तुरङ्गोविसृष्टः स सिन्धोर्दक्षिण रोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनेन प्रार्थित।" मालवि०—अंक ५,

३ "कंचुकी—यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रम्य सप्राभृतकं लेखं गृहीत्वा पुनः प्रविश्य) अनुष्ठिता प्रभोराज्ञा। अयं देवस्य सेनापतेः पुष्यमित्रस्य सकाशात् सोत्तरीय प्राभृतको लेखः प्राप्त.।" (मालविका० अंक ५)

४. "धारिणी—(आत्मगतम्) अहो, ततो मुखमेव नो हृदयम्। श्रोष्यामि तावद्गुरुजनस्य कुशलानन्तरं वसुमित्रस्य वृत्तान्तम्। अति घोरे खलु पुत्रकः सेनापतिना नियुक्तः॥" मालविका० अंक ५।

इन उद्धरणों की तुलना उत्तर राम चरित के निम्न प्रसंग से कीजिए :

पुनरावृत्ति की। रानी का वह वाक्य 'आत्मगत' है सबको सुना कर नहीं कहा गया। जान पड़ता है कि इस सम्बन्ध में पुष्यमित्र की हार्दिक भावना ही स्वामि भक्ति की रही और वह अन्त तक अपने दिवंगत स्वामी का विश्वास-पात्र रह कर उसके सेनापति या प्रतिनिधि के रूप में ही शासन करता रहा। राजकाज तथा दूसरे व्यवहारों में ही नही किन्तु पारिवारिक बोलचाल और पत्र-व्यवहार में भी उसे सेनापति ही कहा जाता रहा। पर यह मानना चाहिए कि किसी कारणवश इस सम्बन्ध मे इतनी अधिक कृत्रिमता तथा सतर्कता से काम लिया गया कि राजपरिवार के व्यक्ति अपने स्वगत कथनों में भी उसे 'सेनापति' ही कहते रहे। कुछ भी हो, यदि यह नाटक उन दिनो खेला गया होगा तो दूसरे पक्ष का समर्थन करने मे इससे अवश्य ही बड़ी सहायता मिली होगी।

मालविकाग्निमित्र के प्रथम तथा पचम अंक में एक और भी सकेत मिलता है जिससे पता चलता है कि विदर्भ के राजपरिवार में कुछ सघर्ष चल रहा था। एक पक्ष अग्नि मित्र का पक्षपाती था तथा अपनी बहिन मालविका का सम्बन्ध उससे करना चाहता था, किन्तु उसके चचेरे भाई को मौर्य राजपरिवार की कोई कन्या ब्याही थी, अतः वह उसका शत्रु था। किन्तु अन्त में अग्नि मित्र ने अपने सैन्य बल तथा नीति बल से उसे भी जीत लिया था।

यदि कालिदास का काल ईसा पूर्व ५७ के लगभग स्वीकार किया जाए तो

श्रीराम का राज्याभिषेक हुए एक दो दिन ही हुए थे। अभिषेक से पहले राजपरिवार के कर्मचारी वृद्ध अधिकारी आदि उन्हे 'रामभद्र' कहते थे। अभिषेक हो जाने पर उन्हे 'महाराज' कहना चाहिए था किन्तु बूढ़े कचुकी के मुख से पुराने अभ्यास के कारण 'रामभद्र' सबोधन ही निकल गया। बूढे को अपनी भूल का ध्यान हुआ और उसने तुरत उसे सुधार लिया। इस पर श्रीराम ने उदारतापूर्वक कहा कि आप अपने अभ्यास के अनुसार ही मुझे बुलाएँ। आप जैसे बड़ों बूढ़ों द्वारा बोला गया वह प्यार भरा सबोधन मुझे अधिक अच्छा लगता है '(प्रविश्य) कंचुकी—रामभद्र (इत्यर्धोक्ते साशकम्) महाराज। रामः (सस्मितम्) आर्य ननु रामभद्र इत्येव मां प्रत्युपचार. शोभते तात परिजनस्य तथा भ्यस्त मभिधीयताम्। कंचुकी-देव,ऋष्यश्रृगाश्रमा दष्टावक्रः संप्राप्तः।' श्रीराम द्वारा आश्वासन दिए जाने पर भी यहाँ कचुकी को दुबारा 'रामभद्र' कहने का साहस न हुआ।

स्पष्ट है कि उक्त घटना के कुछ समय पश्चात् ही वे अवश्य विद्यमान रहे होंगे। यह भी संभव है कि बातचीत में 'सेनापति' विशेषण के प्रयोग तथा इसी प्रकार की और भी बहुत सी छोटी-छोटी उपचार की बातें उन्होंने अपने समय के बूढ़े लोगों की मुंह जबानी सुनीं और अपने नाटक में उनका यथावसर उपयोग कर लिया।

पुष्यमित्र ने, प्रत्यक्ष रूप में अपने आपको राजा संभवत: कभी कहा ही नहीं। क्या इसी कारण कालिदास ने उसे अपने नाटक का नायक नहीं बनाया, क्योंकि प्राचीन परम्परा के अनुसार नाटक का नायक कोई राजर्षि[1] ही हो सकता था। और नाटक देखने वाली जनता पर कवि यह प्रभाव उत्पन्न करना चाहता था कि पुष्यमित्र राजा नहीं किन्तु अपने स्वर्गवासी स्वामी का विश्वासपात्र सेनापति मात्र है।

१६. (ङ) मालविकाग्निमित्र का भरत वाक्य

इस प्रसंग मे, विद्वानो के विचारार्थ, एक बात और लिख देनी कुछ अनुचित न होगी। संस्कृत नाटको के अन्त मे, भरत वाक्य के रूप में नाटक के वरिष्ठ पात्र के मुख से आशीर्वाद दिलवाने की प्राचीन परम्परा है। इस आशीर्वाद वाक्य का सम्बन्ध नाटक की कथावस्तु से बिलकुल नहीं होता किन्तु कवि के समय के राजा, देश या समाज से ही प्राय: होता है। केवल मालविकाग्निमित्र ही एक ऐसा नाटक है जिसके भरत वाक्य मे भी नायक अग्निमित्र[2] का निर्देश किया गया है। क्या इसके द्वारा भी कवि के समय के सम्बन्ध में कुछ विचार किया जा सकता है? भूलना न चाहिए कि मुद्राराक्षसनाटक के भरत वाक्य मे भी चन्द्रगुप्त का नाम आया है जबकि नाटक का नायक भी चन्द्रगुप्त ही है। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि संभवत: इस नाटक की रचना गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त के समय मे हुई और भरत वाक्य में उसी चन्द्रगुप्त का निर्देश है न कि मौर्य चन्द्रगुप्त का। दूसरी बात यह भी कही जा सकती है कि 'पार्थिवश्चन्द्र गुप्त:' के स्थान पर 'पार्थिवोवन्तिवर्मा'

---

१. प्रख्यात वंशो राजर्षि र्धीरो दात्त प्रतापवान् दिव्योथ दिव्या दिव्यो वा गुणवान्नायको मत.। सा० द० परि० ६०

२. "राजा-त्वं मे प्रसाद सुमुखी भव देविनित्य मेतावदेव हृदये प्रतिपालनीयम्। तथापीद मस्तु—(भरत वाक्यम्) आशास्य मीति विगम प्रभृति प्रजानां संपत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्नि मित्रे॥ माल० अंक ५ श्लोक २०॥

यह पाठान्तर भी मिलता है। अतः 'चन्द्रगुप्त' वाला पाठ सन्दिग्ध कोटि में चला जाता है।

कतिपय अन्य नाटकों के भरत वाक्यों के साथ तुलना कीजिए—

(क) अभिज्ञान शाकुन्तल—

राजा—अतः परमपि प्रियमस्ति। यदिहि भगवान् प्रियंकर्त्तुमिच्छति तर्हीद मस्तु (भरत वाक्यम्)

प्रवर्तता प्रकृति हिताय पार्थिवः सरस्वती श्रुति महती महीयताम्
ममापि च क्षपयतु नील लोहितः पुनर्भव परिगत शक्ति रात्म भूः ॥७ अ ३५॥

(ख) विक्रमोर्वशीय—

राजा—यदि मे मघवा प्रसन्नः, किं मतः परमिच्छामि। तथापि इदमस्तु।
(भरत वाक्यम्)

परस्पर विरोधिन्योरेक स श्रय दुर्लभम्।
सगतं श्री सरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम् ॥

अपिच—सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वोभद्राणिपश्यतु।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ॥ ५ अंक श्लो० २४, २५

(ग) मृच्छकटिक—

चारुदत्तः—अतः परमपि प्रियमस्ति।

१. लब्धाचारित्र शुद्धिः इत्यादि (२) कांश्चिन्तुच्छयति० इत्यादि।

३. तथापीद मस्तु भरत वाक्यम्—

क्षीरिण्यः सन्तुगावो भवतु वसुमती सर्व संपन्न सस्या,
पर्जन्यः काल वर्षी सकल जनमनो नन्दिनो वान्तु वाताः।
मोदन्ता जन्मभाजः सतत मभिमता ब्राह्मणाः सन्तु सन्तः
श्रीमन्तः पान्तु पृथ्वी प्रशमितरिपवो धर्मनिष्ठाश्चभूपाः ॥
अंक १०, श्लो० ६० ॥

(घ) उत्तररामचरित—

रामः—अतः परमपि प्रियमस्ति ? किन्त्विदं भरत वाक्य मस्तु।

पाप्मभ्यश्च पुनाति, वर्धयति चं श्रेयासि सेयं कथा,
मांगल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गंगेव च।
तामेता परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यत रूपा बुधाः
शब्द ब्रह्मविदः कवेः परिणता प्राज्ञस्य वाणीमिमाम् ॥
अंक ७ श्लो० २१॥

(ङ) अनर्घराघव—

रामः—भगवन् किमतः परमपि प्रियमस्ति, भगवत्प्रसादात्—

ताताज्ञामधि मौलि मौक्तिकमणिं कृत्वा महापोत्रिणो,

दंष्ट्राविन्ध्य विलास पत्रशवरी दृष्टा भृशं मेदिनी।

सेतु र्दक्षिणपश्चिमौ जलनिधी सीमन्तयन्नर्पितः

कल्याणं च कृतं च विश्व-मदश ग्रीवोप सर्गं जगत्॥ अंक ७ श्लोक १५०

तथापीद मस्तु—समुन्मीलत्सूक्त स्तवक मकरन्दैः श्रवणयो

रवि श्रम्य द्वारा सवन मुपचिन्वन्तु कवयः।

न शब्द ब्रह्मोत्थ परिमल मनाघ्राय च जनः

कवीनां गंभीरे वचसि गुण दौषौ रचयतु॥ अंक ६, श्लोक १५१॥

अपिच—देवस्यात्म भुवः कमण्डलु जल स्रोतासि मंदाकिनी

गगा भोगवती मयानि पुनते यावत्रिलोकी मिमाम्।

ताव द्वीर यशोरसायन मधुस्यन्दः कवीनामयं

जागर्तु श्रुति-शष्कुली वलयित व्योमावगाही गुणः॥१५२॥

(च) कुन्दमाला—

वाल्मीकिः—तथापीद मस्तु—

स्थाणुर्वेधा स्त्रिधामा मकरवसतय. पावको मातरिश्वा

पातालं भूर्भुवः स्वश्चतुरुदधिसमा. साम मन्त्राश्च वेदाः।

सम्यक् ससिद्धविद्या परिणत तपसः पीठिन स्तापसाश्च

श्रेयास्य स्मिन्नरेन्द्रे विदधतु सकलं वर्धतां गोकुलं च॥ अंक ६ श्लोक ४५॥

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसका निष्कर्ष यह है :—

१. कालिदास का सम्बन्ध किसी राजा विक्रमादित्य से अवश्य रहा है। (अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक की प्रस्तावना तथा विक्रमोर्वशीय नाटक का नाम और उसके प्रथम अंक के १५वे तथा १७वें पद्यो के आगे 'विक्रम' शब्द का विशेष प्रयोग।)

२. विक्रमादित्य उस राजा का नाम था, न कि चन्द्रगुप्त द्वितीय आदि गुप्तवशीय कतिपय राजाओं की तरह उसकी उपाधि। उसकी उपाधि संभवतः 'साहसाक' रही हो (अभिज्ञान शाकुन्तल की वही प्रस्तावना।)

३. उसने विशेष पराक्रम के कार्य किए थे, वह कवियो का सत्कार करने वाला तथा काव्य नाटकों का मर्मज्ञ भी था (रामचरित्त काव्य में अभिनन्द कवि का पद्य तथा, अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक की वही प्रस्तावना।)

४. शाकुन्तल नाटक ईस्वी सन् के प्रारम्भ होने से पूर्व विद्यमान था (भीटा के पास खुदाई से प्राप्त मण्डलक)

५. अति प्राचीनकाल में, दक्षिण भारत में पाण्ड्य नरेशो का प्रभुत्व सर्वोपरि था, और तब उनकी राजधानी उरगपुर (उराईयूर) थी। ईसा की प्रथम शताब्दी में चोल राजा कारिकाल ने पाण्ड्यों को परास्त कर दिया, और उसके पश्चात् फिर कभी ऐसी स्थिति नही हुई। पाण्ड्यो का जब दुबारा उत्थान हुआ तब उनकी राजधानी मदुरा थी। अतः कालिदास का काल इससे पूर्व ही होना चाहिए।

६ मेघदूत मे विदिशा का वर्णन दिशाओं में दूर-दूर तक प्रसिद्ध तथा दशार्णदेश (वर्त्तमान पूर्व मालवा तथा भूपाल राज्य) की राजधानी के रूप मे हुआ है। विदिशा की ऐसी स्थिति, ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के पश्चात् कभी नही हुई। अत कालिदास का काल इसके आसपास ही मानना चाहिए। (पूर्व मेघ पद्य २६)

७. मालविकाग्निमित्र नाटक में कवि ने विदिशा के एक साधारण से राजा अग्निमित्र को नायक बनाया न कि अश्वमेध यज्ञ करने वाले, और वैदिक (ब्राह्मण) राज्य के पुन. प्रतिष्ठापक उसके पिता पुष्यमित्र को। राजपरिवार से सम्बद्ध बहुत छोटी-छोटी बातों का भी कवि को ज्ञान है और वह पुष्यमित्र द्वारा किए गए राज्य परिवर्तन का भी पक्षपाती प्रतीत होता है। अत उसका समय शुगों का शासन काल या उसके कुछ ही पश्चात् होना चाहिए। (मालविकाग्निमित्र नाटक।)

१७. विक्रमादित्य तथा कालिदास का सम्बन्ध

विक्रमादित्य तथा कालिदास का परस्पर सम्बन्ध भारतीय भावना में ऐसा घर कर चुका है कि उन्हे अलग-अलग समयों में हुए मानने को मन ही नही करता। यदि विक्रमादित्य नामधारी राजा की सत्ता, उसके व्यक्तित्व अथवा काल के सम्बन्ध मे सन्देह उत्पन्न हो जाता है तो उसका कुछ प्रभाव कालिदास के व्यक्तित्व तथा काल पर भी पड़े बिना नही रहता। अत इस प्रसग में विक्रमादित्य के विषय में भी अलग से विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

भारतीय अनुश्रुतियों मे तथा प्राचीन संस्कृत साहित्य मे विक्रमादित्य को परमप्रतापी मालवेन्द्र के रूप में स्मरण किया जाता है और

१७. (क) अनु-श्रुतियों के अनुसार विक्रमादित्य मालवेन्द्रनाथ, शकारि तथा संवत् का प्रवर्त्तक था

उसकी राजधानी उज्जयिनी प्रसिद्ध है। यह भी कहा जाता है कि उसने विदेशी आक्रान्ता शकों का नाश कर, देश को उनके चंगुल से छुड़ाया तथा मध्यभारत के वर्त्तमान मालवा प्रदेश में मालवगण को प्रतिष्ठित किया और उसकी इस उज्ज्वल विजय की यादगार में ही विक्रम सवत् प्रचलित हुआ जो आज तक जन्मपत्री[1], लग्नपत्रिका[2], दानपत्र[3], संकल्प[4] पाठ आदि के रूप में

---

१. जन्मपत्री का ढाचा—"श्री गणेशाय नम. । यं ब्रह्मा वरुणेत्यादि० । जननी जन्म सौख्याना वर्धनी कुल सपदाम् । पदवी पूर्व पुण्याना लिख्यते जन्म पत्रिका । अथ शुभ सवत्सरेऽस्मिन् श्री नृपति वीर विक्रमादित्य राज्ये संवत ·······, शाके श्री शालिवाहनस्य······· तत्र······ मासाना मासोत्तमेमासे ····,··· पक्षे, ······ शुभतिथौ ······· ····पुत्र (पुत्री) रत्नमजीजनत्" इत्यादि ।

२. लग्न पत्रिका का ढाचा—"अथ शुभ संवत्सरेऽस्मिन् श्री नृपति वीर विक्रमादित्य राज्ये, श्री संवत् ·· ··, तत्र शाके श्री शालिवाहनस्य···· ··· ··, तत्र महा मंगले, मासाना मासोत्तमे ······ मासे, शुभे ··· ·· · पक्षे, शुभ ···· ··· तिथौ, ········ दोष-रहित पाणि ग्रहणम् ॥"

३. राजा भोज का दान पत्र—"जयति व्योमकेशौ सौ यः सर्गाय विभर्ति ताम् । ऐन्दवीं शिरसा लेखा जग द्बीजाङ्कुराकृतिम् ॥ परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री सीयक देव पादानुध्यात—परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री वाक्पति राजदेव पादानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री सिन्धुराज देव पादानुध्यात—परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोज देव. कुशली नाग ह्रद पश्चिम पथ-कान्तः पाति वीराणके समुपागतान् समस्त राजपुरुषान् ब्राह्मगोत्तरान् प्रति निवासि पट्टकिल जनपदादींश्च समादिशति—अस्तु वः सं विदितम् यथा अतीताष्ट सप्तत्यधिक साहस्रिक संवत्सरे (सवत् १०७८) माघासित तृतीयाया, रवा वुदगयनपर्वणि, कल्पित हलानां लेख्ये, श्रीमद्धाराया मवस्थितै रस्माभि स्नात्वा चराचर गुरुं भवानीपति समभ्यर्च्य, संसारस्या-सारतां दृष्ट्वा—'वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यमापातमात्रमधुरो विषयोपभोग· । प्राणा स्तृणाग्र जलबिन्दु समा नराणां धर्मः सखा परमहो

स्मरणातीत काल से अविच्छिन्न चला आ रहा है और सैकड़ों वर्षों से चली आ रही इस मान्यता पर, अब से पूर्व, कभी किसी को सन्देह नहीं हुआ। किन्तु एक बार सन्देह उत्पन्न हो जाने पर तो उसका निवारण सर्वथा अनिवार्य हो जाता है।

ईसा से पूर्व, प्रथम शताब्दी मे कोई राजा विक्रमादित्य हो चुका था—

१७. (ख) संकल्प पाठ तथा जन्म पत्री आदि में प्राचीन काल से विक्रम का उल्लेख

इसके विरुद्ध जब तक कोई साधक प्रमाण न मिल जाए, तब तक केवल निषेधात्मक युक्तियों—उस काल में विक्रमादित्य की विद्यमानता को सिद्ध करने वाले उसके सिक्के, ताम्रपत्र या शिलालेख आदि का अभी तक न मिल सकना—के आधार पर, यह नही स्वीकार किया जा सकता कि उस काल मे कोई विक्रमादित्य नही हुआ।

परलोक याने।' इति जगतो विनश्वर स्वरूप माकलय्य उपरि लिखित ग्रामः स्वसीमातृणगोचर यूतिपर्यन्तः सहिरण्य भाग भोगः सपरिकरः सर्वादाय-समेत ब्राह्मण धनपति भट्टाय भट्ट गोविन्द सुताय,··· मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशो भिवृद्धये अदृष्टफल मगीकृत्य आचन्द्रार्कार्णवक्षिति समकाल यावत् परया भक्तया, शासने नोदक पूर्वं प्रतिपादित इति मत्त्वा यथा दीयमान भाग भोग हिरण्यादिक माज्ञा श्रवण विधेयैर्भूत्वा सर्वमस्मै समुपनेतव्यम्। सामान्यं चैतत्फल बुध्वाऽस्मद्वशजैरन्यैरपि भावि भोक्तृ-भिरस्मत्प्रदत्त धर्मदायोऽयमनु मन्तव्य पालनीयश्च, संवत् १०७८ चैत्र, शु० दि० १४ स्वयमाज्ञामगल, महा श्रीः स्वहस्तोऽयं श्री भोजदेवस्य॥" (साहित्यदर्पण—निर्णयसागर प्रकाशित तृतीय सस्करण सन् १९१५ की दुर्गाप्रसाद लिखित भूमिका पृ० १९।)

४. सकल्प का ढाचा—"ओं तत्सत्। अद्यैतस्य ब्रह्मणोद्वितीये परार्द्धे, श्री श्वेतवराहकल्पे, वैवस्वतमन्वन्तरे, अष्टाविंशति तमे कलियुगे, प्रथम चरणे, जम्बूद्वीपे, भरत खण्डे,····अमुक क्षेत्रे, अमुक देशे, अमुक तीर्थे श्री विक्रमादित्य राज्यात्·····अमुक सख्याके सवत्सरे, श्री शालिवाहन राज्यात् अमुक संख्याके·····शके, अमुकायने, अमुक ऋतौ, अमुक मासे, अमुक नक्षत्रे, अमुक तिथौ, अमुक वासरे, अमुक नक्षत्रे, अमुक गोत्रो मुक नाम ···अहं·· ··अमुक कर्माधिकार प्राप्तये स्नानं कर्म करिष्यामि।" बृहन्नित्य कर्म प्रयोग माला—पण्डित श्रवणदत्त संकलित प्रथमावृत्ति सवत् १९९१ विक्रमीय पृ० ३६।

प्रचलित अनुश्रुति का खण्डन करने के लिए किसी प्रबल साधक प्रमाण की आवश्यकता है। अतः विक्रम सम्बन्धी अनुश्रुति तथा कुल पुरोहितों के उस व्यवहार को मिथ्या नहीं ठहराया जा सकता जिसका पालन संस्कार आदि मागलिक कार्यों के अवसर पर, न जाने, कब से होता चला आ रहा है।

१७. (ग) गाथा सप्तशती का साक्ष्य

न केवल अनुश्रुति, किन्तु आन्ध्रवंशी सातवाहन राजा हाल के सुभाषित ग्रन्थ, गाथा सप्तशती के पाँचवें शतक के ६४वें[1] पद्य से भी यह सिद्ध होता है कि उससे पूर्व, अपनी दान-शीलता के कारण प्रसिद्ध, राजा विक्रमादित्य हो चुका था। सातवाहन श्रीहर्ष के दरबारी कवि बाण से पूर्व हो चुका था, क्योंकि हर्षचरित की भूमिका में उसका उल्लेख हुआ है। 'अर्ली हिस्टरी आफ इण्डिया' में विंसेण्ट स्मिथ महोदय ने 'हाल' के समय के विषय मे महामहोपाध्याय श्री हरप्रसाद शास्त्री का निम्नलिखित मत उद्धृत किया है 'उसका काल ईसा की प्रथम शताब्दी के पश्चात् नहीं रखा जा सकता। और हाल की सप्तशती मे जिस विक्रमादित्य का नाम लिया गया है, वही संभवत. विक्रम सवत् का प्रवर्त्तक[2], है।'

१७. (घ) बृहत्कथा का साक्ष्य

उपर्युक्त आन्ध्रवशी राजा हाल के समकालीन कवि गुणाढ्य ने पैशाची भाषा में बृहत्कथा (बड्ड कथा) की रचना की थी। यह ग्रन्थ बाण के समय (ईस्वी ६०४—६४२) विद्यमान था क्योंकि उसने इस ग्रन्थ के विषय[3] मे लिखा है। किसी समय यह लुप्त हो गया किन्तु उससे पूर्व ही ११वीं शताब्दी में कश्मीर के दो कवि क्षेमेन्द्र (१०२०-१०६३ ईस्वी) और सोमदेव सूरि (१०२३—१०६४ ईस्वी) ने उसके संस्कृत रूपान्तर बृहत्कथा मंजरी तथा कथासरित्सागर नाम से कर दिए थे जो आज भी मिलते हैं। दोनों में

---

१. प्राकृत गाथा का संस्कृत रूपः
संवाहन सुखरस तोषितेन ददता तव करे लक्षम्।
चरणेन विक्रमादित्य चरित मनु शिक्षितं तस्याः॥

२. अर्ली हिस्टरी ऑफ इण्डिया ६०० बी० सी० टु मुहम्मडन कौन क्वेस्ट, पृष्ठ २२० पर फुटनोट।

३. समुद्दीपितकन्दर्पा कृत गौरीप्रसाधना। हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा। ह० च० १ उच्छ्वास श्लो० १७।

ही विक्रमादित्य की कथा विस्तार से दी गई है। उनकी एक कथा के अनुसार विक्रमादित्य के पिता का नाम महेन्द्रादित्य तथा माता का सौम्यदर्शना था। पुत्र की इच्छा से महेन्द्रादित्य ने शिव की आराधना की। उन्हीं दिनों पृथ्वी को म्लेच्छा क्रान्त देख कर देवताओं ने उसकी रक्षा के लिए शिवजी से प्रार्थना की। उन्होंने अपने एक गण माल्यवान् को आदेश दिया कि वह उज्जयिनी-नाथ महेन्द्रादित्य के यहाँ पुत्र रूप मे जन्म लेकर दुष्टों का सहार करे और उन्होंने स्वप्न मे राजा को दर्शन देकर कहा कि तुम्हारे यहाँ जो पुत्र उत्पन्न हो तुम उसका नाम विक्रमादित्य रखना तथा उसने वैसा ही किया। प्रतीत होता है कि पौराणिक शैली का अनुसरण करते हुए कवि ने ऐतिहासिक गण-राज्य को महादेव का गण तथा 'मालव' को माल्यवान् बना दिया। इससे ज्ञात होता है कि कथा सरित्सागर के मूल स्रोत बृहत्कथा के निर्माण से (लगभग ७८ ईस्वी पश्चात्) पूर्व वह विक्रमादित्य हो चुका था जिसने म्लेच्छों का उच्छेद किया तथा अपना सवत् चलाया।

ऊपर अनुश्रुति, पुरोहितो तथा ज्योतिषियों के व्यवहार, और गाथा सप्तशती तथा बृहत्कथा के आधार पर विक्रमादित्य के कालनिर्णय के विषय मे कुछ विचार किया गया है। अब इस मत को पुष्ट करने वाला एक सीधा प्रमाण भी उपस्थित किया जाता है :—

१७. (ङ) हरिस्वामी की साक्षी

वाराणसी के सस्कृत विश्वविद्यालय के पुस्तकालय सरस्वती भवन में हरिस्वामी कृत शतपथ भाष्य की सवत् १८४९ अर्थात् १७९२ ई० मे लिखी गई, एक प्रति विद्यमान है जिसके अन्त में निम्नलिखित पाँच पद्य पाये जाते है :—

"नाग स्वामी तत्र (याजी) श्री गुह स्वामिनन्दन"। तत्र याजी प्रमाणज्ञ आढ्यो-लक्ष्म्या समेधित। तन्नन्दनो हरिस्वामी प्रस्फुरद्वेदवेदिमान्। त्रयीव्याख्यान धौरेयोऽधीतमत्रोगुरोमुखात्, य सम्राट् कृतवान् सप्तसोम संस्था स्तथर्क श्रुतिम्। व्याख्या कृत्वाऽध्याप यन्मांस्कन्दस्वाम्यस्तिमेगुरुः। श्री मतोऽवतिनाथस्य विक्रमस्य क्षितीशितुः। धर्माध्यक्षो हरिस्वामी व्याख्या कुर्वेयथामति ॥४॥

(यदा दीना) यदाब्दानाकलेर्जग्मु: सप्तत्रिंशच्छतानिवै। चत्वारिंशत्समा-श्चा यास्तदाभाष्यमिदकृतम् ॥५॥

इन श्लोकों से पता चलता है कि भाष्यकार हरिस्वामी के पितामह का नाम गुह स्वामी तथा पिता का नाम नाग स्वामी था। वे यज्ञ याग करने वाले तथा प्रचुर धन धान्य से सपन्न थे। नागस्वामी के पुत्र हरिस्वामी हुए और

उन्होंने वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् स्कन्द स्वामी से ऋग्वेद का अध्ययन किया। वे वेदों की व्याख्या करने में कुशल थे। उनके कुल में वेदों के पठन पाठन की गद्दी (वेदी) प्रतिष्ठित थी और वे अवन्ति नाथ विक्रमादित्य के धर्माधिकारी थे। उन्होंने कलि संवत् प्रारम्भ होने के ३०४७ वें वर्ष में अपना शतपथ भाष्य रचा।

कलि सवत् का प्रारम्भ[1] विक्रम से ३०४४ तथा ईसा से लगभग ३१०२ वर्ष पूर्व माना जाता है। और हरिस्वामी ने अपने ग्रन्थ की रचना विक्रमादित्य के धर्माधिकारी पद पर रहते समय विक्रम सवत् ३, अर्थात् ईसा से ५५ वर्ष पूर्व की। इससे सिद्ध होता है कि उज्जयिनी नाथ विक्रमादित्य ईसा से ५८ वर्ष पूर्व विद्यमान थे।

१७ (च) स्कन्द पुराण का साक्ष्य

स्कन्द पुराण[2] मे भी विक्रमादित्य का उल्लेख है। उसमें लिखा है कि कलियुग के ३००० वर्ष व्यतीत हो चुकने पर अर्थात् ईसा से लगभग १०० वर्ष पूर्व विक्रमादित्य का जन्म हुआ। अत. विक्रम सवत् का प्रारम्भ इसके लगभग ४०-५० वर्ष बाद हुआ होगा।

१७. (छ) जैन अनुश्रुतियाँ

जैन अनुश्रुति—जैन साहित्य के अनुसार कालकाचार्य नाम वाले चार आचार्य हो चुके है। इनमें से दूसरे आचार्य का ही सम्बन्ध शको के आक्रमण तथा विक्रमादित्य द्वारा उनकी पराजय की घटना से है जिनका समय वीरनिर्वाण सवत् ४५३ के आसपास माना जाता है। कालकाचार्य की कथा[3] अत्यन्त प्रसिद्ध है अतः यहा उसका निर्देश अत्यन्त सक्षेप से किया जाता है।

---

१. विक्रम सवत् का प्रारम्भ कलि सवत् के ३०४४ वर्ष बाद हुआ। इसमे से ५७ घटाने से ईसवी सन् और १३५ घटाने से शक संवत् आ जाता है। (विक्रम स्मृति ग्रन्थ पृ० ६५)

२. ततस्त्रिषु सहस्रेषु विशत्या अधिकेषु च भविष्यं विक्रमादित्य राज्यं सोऽथ प्रलप्स्यते। सिद्धि प्रसादाद् दुर्गाणा दीनान्योद्य द्धरिष्यति॥
(स्कन्द पुराण कौमारिका खण्ड अध्याय ४० के ५२, ५३ पद्य)

३. इस कथा में मालवा पर शकों के आक्रमण की चर्चा है। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि उक्त कथा को कितना ऐतिहासिक महत्व दिया जा सकता है तथा उन दिनों अर्थात् ईसा की प्रथम शताब्दी के कुछ पूर्व मालवा पर शकों का कोई आक्रमण हुआ भी था या नही। उसका उत्तर देते हुए स्टेनकोनो महोदय ने अपने ग्रन्थ खरोष्ट्री इन्सक्रिप्शंन्स की भूमिका में पृष्ठ ३६ पर लिखा है कि 'भारत के प्रथम शक साम्राज्य के

कालकाचार्य धारावास के राजा वज्रसिंह के पुत्र थे। वे बड़े विद्वान् तथा तपस्वी थे। वे जब उज्जयिनी में निवास कर रहे थे तब एक दिन वहाँ के राजा गर्दभिल्ल की कुदृष्टि उनकी छोटी बहिन साध्वी सरस्वती पर पड़ गई। राजा ने बलपूर्वक उसका अपहरण कर लिया। कालकाचार्य ने उसे छुड़ाने के लिए अनेक उपाय किए परन्तु वे सब व्यर्थ हुए। निराश होकर आचार्य विदेशियों से सहायता प्राप्त करने के लिए सिन्धु नद को पार कर शकों के देश में जा पहुँचे और वहाँ के ९६ शक सरदारों को उज्जयिनी पर चढ़ाई करने के लिए उभारा। उन्हीं दिनों उनके अपने देश पर पड़ौसी राजा चढ़ाई करने की धमकी दे रहा था। उस संकट

इतिहास का पुनर्निर्माण इस प्रकार किया जा सकता है कि ८८ ईस्वी पूर्व मे द्वितीय मित्रदित की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् ही सीस्तान के शकों ने अपने आपको पथिया की आधीनता से मुक्त कर लिया और वे विजययात्रा करते हुए सिन्धु देश तक पहुँच गए। ··· उन्होंने ६० ई० पूर्व तक अपना राज्य (कालकाचार्य की कथा मे वर्णित) हिन्दुग देश तक फैला लिया। उसके पश्चात् वे काठियावाड़ तथा मालवे की ओर बढ़े जहाँ उन्होंने संभवतः अपना संवत् भी चलाया, जो हमे उसके प्रायः ७० वर्ष पश्चात् मथुरा मे प्रयोग किया गया मिलता है।' (विक्रमस्मारक ग्रन्थ पृ० १६४)

कालकाचार्य की कथा की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में स्टैन कोनो महोदय अपनी उसी भूमिका के पृष्ठ २७ पर लिखते हैं कि मुझे तो कोई भी ऐसा कारण नही प्रतीत होता जिसके आधार पर, औरों की तरह मै भी इस कथा को असत्य मान लू। कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया के प्रथम भाग के पृष्ठ ५३२ पर रैप्सन महोदय ने भी इस कथा को विश्वसनीय स्वीकार किया है। नार्मन ब्राउन ने भी अपनी कालकाचार्य कथानक की भूमिका में इसकी ऐतिहासिकता को माना है। (स्टोरी ऑफ कालक पृ० ३) (विक्रम स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ १६४)

शारपेन्तियर महोदय की भी यही सम्मति है कि कालकाचार्य कथानक को जो कि ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी या विक्रम संवत् की स्थापना से ठीक पूर्व और पश्चिम भारत के प्रदेश मे हुई किसी विशेष घटना की ओर निर्देश करने वाला समझा जाता है, सर्वथा निराधार नहीं माना जा सकता। (कैम्ब्रिज हिस्टरी ऑफ इण्डिया, जि०द० १, पृ० १६७) (विक्रम स्मृति पृ० ३१)

से बचने के लिए उन्होंने अपना देश त्याग कर हिन्दुग देश (वर्त्तमान मालवा) पर आक्रमण कर दिया। प्रजा भी गर्दभिल्ल से असंतुष्ट थी अतः किसी ने उसकी सहायता न की। शकों ने उज्जयनी जीत ली तथा उनका मुखिया वहाँ राज्य करने लगा। कुछ समय पश्चात् गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने बिखरी हुई शक्ति को एकत्र कर शकों का नाश कर दिया। विक्रमादित्य अद्वितीय वीर था। उसने अपने बल से शत्रुओं का दमन किया और अपार धन राशि का दान कर प्रजा को ऋण से मुक्त कर दिया तथा अपना संवत् चलाया। (वि० स्मृ० ग्र० पृ० १६५ पर श्री हरिहर निवास के लेख के आधार पर)

१७. (ज) मेरुतुंगाचार्य का साक्ष्य

जैन विद्वान मेरुतुगाचार्य रचित पटावली में, विक्रमादित्य द्वारा शकों की पराजय का समय वीर निर्वाण संवत् ४७० (अर्थात् ५० ईस्वी पूर्व, अथवा विक्रम संवत् के प्रारम्भ से ७ वर्ष पूर्व) बतलाया है। (वि० स्मृति ग्र० पृ० १६४)

१७. (झ) प्रबन्ध कोष का साक्ष्य

प्रबन्ध कोष में भी विक्रम के संवत् प्रवर्तन की यही तिथि (अर्थात् वीर-निर्वाण सवत् ४७०) बतलाई है। धनेश्वर सूरि रचित शत्रुंजय माहात्म्य में विक्रमादित्य के प्रादुर्भाव का काल वीर सवत् ४६६ कहा गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण जैन अनुश्रुतियाँ भी विक्रम की विजय घटना तथा उसके इस काल (ईसा पूर्व लगभग ५७ वर्ष) का समर्थन करती हैं। (वि० स्मृ० ग्र० पृ० १६४)

वीरनिर्वाण काल तथा विक्रम संवत् की गणना में कुछ वर्षों का अन्तर देखा जाता है। उसका कारण यह है कि प्रबन्ध चिन्तामणि में विक्रम संवत का प्रारम्भ उसकी मृत्यु के दिन से माना गया है, सिंहासन बत्तीसी में पृथ्वी को ऋण निर्मुक्त करने के दिन से तथा कालकाचार्य कथा में शकों को पराजित करने के दिन से। (विक्रम स्मृति ग्रन्थ पृ० १८२) विंसेण्ट स्मिथ की अर्ली हिस्टरी ऑफ इण्डिया के पृष्ठ ४९ पर लिखा है कि वीरनिर्वाण की विभिन्न तिथियों का अध्ययन करने पर समस्या उलझती ही जाती है।······कई तर्क सिद्ध करते है कि वीर निर्वाण काल ४६७ ई० पूर्व होना चाहिए। शारपेन्तियर महोदय का भी यही मत है। चन्द्रगुप्त मौर्य के समसामयिक, तथा नन्द के प्रधान मन्त्री भद्रबाहु के काल के सम्बन्ध में परम्परानुमोदित तिथि के साथ भी इसका मेल बैठ जाता है। महावीर निर्वाण की बहु सम्मत तिथियो में से एक ५२७-

२८ ई० पूर्व भी है और खारवेल के शिला लेख से भी इसकी पुष्टि हो जाती है। इसकी पादटिप्पणी मे उसी पृष्ठ पर फिर लिखा है कि हार्नल महाशय ने जैनियों मे प्रचलित इन परस्पर विरोधी तिथियो पर विचार किया है और उसका कथन है कि दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों ही जैन संप्रदाय वीर निर्वाण का काल विक्रम से ४७० वर्ष पूर्व मानते है जिसने अपना संवत् ५८ ईस्वी पूर्व चलाया था किन्तु दिगम्बर जैन विक्रम सवत् का प्रारम्भ उस राजा के जन्म दिन से तथा श्वेताम्बर जैन उसकी मृत्यु के दिन से गिनते हैं। और अन्त मे लिखा है कि जैनियों के अनुसार वीर निर्वाण तिथि विक्रम से ५५१, ५४३ तथा ५२७ पूर्व—तीनों ही मानी जाती है।

१७ (ञ) इसके विरुद्ध जेम्स फर्गूसन का मत और उसकी अमान्यता

इस पर जेम्स फर्गूसन[1] का कथन है कि विक्रम संवत् का प्रयोग ५४४ ई० से पूर्व किसी सिक्के, ताम्रपत्र या शिला लेख पर नही पाया जाता। इससे सिद्ध होता है कि उससे पहले यह सवत् था ही नहीं, अन्यथा इसका प्रयोग कही तो मिलता। अत उक्त विद्वान का अनुमान है कि ५४४ ई० मे मालवा के एक प्रतापी राजा यशोधर्मा[2] ने, मुलतान के निकट कोरूर नामक स्थान पर हूण राजा मिहिरगुल[3] को परास्त कर अपनी इस विजय के उपलक्ष्य मे एक संवत् चलाया और उसे प्राचीनता की झलक देने के लिए, उसका प्रारम्भ तब से ६०० वर्ष पूर्व अर्थात् ५६ ई० पू० घोषित किया। मैक्समूलर ने भी इस पक्ष का समर्थन किया किन्तु इसके कुछ समय पश्चात् ही ऐसे लेख[4] उपलब्ध हो गए जो ५४४ ईस्वी सन् से पूर्व के थे और जिन पर मालव संवत् अंकित था। यह भी सर्व विदित है कि यशोधर्मा की किसी प्रशस्ति पर उसकी उपाधि विक्रमादित्य नही पाई जाती तथा उसने अपने संवत् ५८९ (५३१ ईस्वी) वाले लेख मे स्पष्ट ही मालव गण संवत् का प्रयोग किया है।

---

१. जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी १८७०, पृ० ८१।
२. यशोधर्मा ने मिहिरगुल को परास्त किया ५२८ ई० (विक्रम सवत् ५८५-८६ के लगभग। विसेंट स्मिथ की अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृ० ३४६।
३ मिहिर गुल का काल ५०२-५४२ ई० (५६०-६०० विक्रमी)
४. संवत् ४३० का कावी अभिलेख तथा सवत् ५२९ का मन्दसौर वाला अभिलेख। (वि० स्मृ० ग्र० पृ० ५५ पर डा० राजवली पाण्डेय का लेख)

१७. (ट) कृत शब्द का प्रयोग

यह ठीक है कि संवत् ४६१ से पहले के लेखों पर संवत् के अंक के साथ कृत शब्द का प्रयोग हुआ है। संवत् ४६१ के, "मन्दसौर" में पाये गये नरवर्मा के लेख में तथा सवत् ४८१ के उदयपुर राज्यान्तर्गत 'नगरी' नामक स्थान पर पाये गये दो वणिक् बन्धुओं के एक लेख में कृत एवं मालव—इन दोनों शब्दों का प्रयोग साथ-साथ हुआ है। उसके पश्चात् सवत् ७९५ तक केवल मालव गण, मालव वंश या मालवेश आदि शब्दों का ही व्यवहार देखा जाता है और सवत् ८९८ के, धौलपुर में पाये गये चण्डमहासेन के लेख मे ही सर्वप्रथम विक्रम नाम का उल्लेख हुआ है।

इससे ज्ञात होता है कि संवत् ४६१ से पहले कई शताब्दियों तक संवत् के साथ कृत शब्द का प्रयोग चलता था। सवत् ४६१ से ४८१ तक वह सन्धिकाल रहा जिसमें कृत के साथ मालव शब्द का प्रयोग प्रारभ हो गया। फिर संवत् ४९३ से सवत् ७९५ तक केवल मालव आदि शब्दों का व्यवहार हुआ। सवत् ८९८ से ये शब्द भी हट गए और इनका स्थान विक्रमादित्य या विक्रम ने ले लिया।

१७. (ठ) कृत, मालव तथा विक्रम संवत् एक ही हैं इसका प्रमाण दशपुर के बुनकरों का लेख।

यहा यह शंका हो सकती है कि इन—कृत, मालव तथा विक्रम नाम वाले तीनों सवतो को अलग-अलग न मान कर एक ही क्यो स्वीकार किया जाए? इसका उत्तर यह है कि नरवर्मा तथा दो वणिक् बन्धुओं के लेखों मे तो कृत तथा मालव—दोनो नामो का प्रयोग साथ-साथ हुआ है इससे सिद्ध है कि ये दोनों नाम एक ही सवत् का सकेत करते है। अब यह प्रश्न शेष रह जाता है कि मालव संवत् तथा विक्रम संवत् भी एक ही क्यों हैं? इसका उत्तर यह है कि गुप्तवंशी सम्राट् कुमार गुप्त का समय इतिहास मे निश्चित है (सवत् ४७०-५१२) अर्थात् ४१३-४५५ ईस्वी। गवालियर राज्यान्तर्गत दशपुर (वर्तमान मन्दसौर) मे रहने वाले बुनकरों के सघ का एक लेख पाया गया है जिसमें ४९३[1] मालवगण स्थिति काल का उल्लेख है। यह लेख गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त के

१. मालवानां गण स्थित्या याते शतचतुष्टये। त्रिनवत्यधिकेऽब्दाना मृतौसेव्य घनस्वने। सहस्य मास शुक्लस्य प्रशस्ये ऽन्हित्रयोदशे। (एपिग्राफिया इण्डिका भाग १९-२३ का परिशिष्ट 'क' विक्रम स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ ५०-५३)

स्थानीय गवर्नर बन्धुवर्मा के समय का है। गणना से सिद्ध होता है कि यह संवत् विक्रम-संवत् ही हो सकता है।

एक ही संवत् के नाम समय समय पर क्यों बदलते चले गए यह प्रश्न भी विचारणीय है और इसका ठीक निर्णय तभी संभव है जब इन लेखो के मिलने के क्षेत्र, उनके काल तथा उनके लेखक शासकों के विषय मे गंभीर अध्ययन तात्कालिक भारत के इतिहास के साथ मिलाकर किया जाए।

१७. (ड) कुछ लेखों पर संवत् का नाम नहीं किंतु वे विक्रम संवत् के ही हैं।

इस प्रसग को समाप्त करने से पहले यह भी लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि कुछ लेख[1] ऐसे भी पाए गए है जिन पर वर्ष सख्या तो अकित है किन्तु संवत् का नाम-निर्देश नही है। कुछ ऐतिहासिकों का मत है कि वे वर्ष भी विक्रम सवत् के ही हैं। वर्ष सख्या के साथ सवत् का नाम न होना अधिक स्वाभाविक है न कि उसका होना। आज कल भी दैनिक व्यवहार में तथा सरकारी कागजो मे दिन मास तथा वर्ष का उल्लेख तो सब करते है किन्तु उसके साथ ईस्वी सन् विक्रमीय या शक आदि शब्दो का प्रयोग प्राय नही किया जाता, जहा जो सवत् प्रचलित होता है सब जानते हैं कि अमुक वर्ष-सख्या उसी सवत् की है अतः उसका उल्लेख अनावश्यक समझ कर छोड दिया जाता है, इसी प्रकार का एक लेख पेशावर के पास तख्ते बाही नामक स्थान से पर्थियन राजा गुडुफर्स के समय का प्राप्त हुआ है। यह राजा भारत के उत्तर पश्चिम भाग का स्वामी था। इस लेख में वर्षांक १०३ है पर उसके साथ किसी संवत् का नाम-निर्देश नही है। श्री आर० डी० बैनर्जी इस १०३ अक को शक सवत् (अर्थात् १८३ ईस्वी) मानते है किन्तु विसेण्ट स्मिथ महोदय अपनी पुस्तक अर्ली हिस्ट्री आफ

१. (क) तक्षशिला का ताम्रपत्र जिस पर १३६ वर्ष अकित है।
(ख) यूसुफ जई प्रदेश के पंजतर स्थान के समीप प्राप्त शिला लेख पर १२२ वर्ष श्रावण प्रतिपदा का उल्लेख है।
(ग) पेशावर जिले में तख्तेवाही स्थान पर जो लेख मिला है वह राजा गुडुफर्स के राज्य के २६ वे वर्ष का है और उस पर वैशाख पंचमी १०३ खुदा हुआ है। इसके विषय मे रेप्सन कहता है कि इसमें सन्देह नही कि यह वर्ष विक्रम संवत् का है जिसका प्रारम्भ ५८ ई० पूर्व हो चुका था (कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया जिल्द १ पृ० ५७६।) विक्रम स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ २४।

इण्डिया के पृष्ठ २४८ पर इससे असहमति प्रकट करते हैं। वे कहते हैं कि बैनर्जी महोदय का यह मत ठीक नहीं क्योंकि गुडुफर्स का काल कडफिसस प्रथम (२ ईस्वी पूर्व से ७८ ईस्वी पश्चात्) से पहले ही हो सकता है, पीछे नही। (देखो अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया वि० स्मथ पृ० २६०)। इससे सिद्ध होता है कि तख्ते बाही के लेख का उक्त वर्ष १०३, विक्रम संवत् का ही है जिसका प्रयोग, ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी के पूर्व ही न केवल मालवा में किन्तु सुदूर पेशावर तक होने लगा था।

इस पर सरजान[1] मार्शल कहते हैं कि तक्षशिला वाले उक्त ताम्रपत्र के लेख में जिस १३६ वर्ष का प्रयोग हुआ है वह उसी विक्रम संवत् का है जो ईसा से ५७-५८ वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ था, पर इसका प्रारंभ करने वाला विक्रमादित्य नहीं किन्तु भारत के उत्तर पश्चिम प्रदेश का पर्थियन राजा अजेस=अयस प्रथम था। इसका उत्तर देते हुए फ्रैंकलिन एजर्टन[2] महोदय लिखते हैं कि "इसमें तो सन्देह नही कि

१७. (ह) इस पर जान मार्शल की आपत्ति और उसका उत्तर

अजेस प्रथम का शासन काल ५८ ईस्वी पूर्व के लगभग है, परन्तु उसके द्वारा किसी संवत् का प्रवर्त्तन हुआ था इसे स्वीकार करने के लिए कोई अधिक दृढ़ प्रमाण आवश्यक है। मार्शल महाशय द्वारा प्रकाशित, तक्षशिला वाले लेख पर पाये गये केवल 'अयस' शब्द के आधार पर ही इसे स्वीकार नही किया जा सकता। क्योंकि इस समय से पूर्व के भी कुछ ऐसे लेख पाये गये हैं जिन पर अंकित वर्ष विक्रम संवत् ही है और इसकी पुष्टि करने वाली भारतीय परम्परा विद्यमान है। यदि १३६ अंक वाले तक्षशिला के लेख तथा मालव सवत् वाले ४२८ संवत् के विजयगढ स्तम्भ लेख के बीच के समय का कोई और लेख अयस के सवत् से अकित मिल जाता तो हमें इस मत को मान लेना आसान हो जाता। ··· अतः मार्शल महाशय का मत हमें युक्ति संगत प्रतीत नही होता।" (विक्रम एडवेंचर्स० एच० ओ० ऐस० जिल्द २६, इण्ट्रोडक्शन (LXIII-IV)। देखो—विक्रम स्मृति ग्र० पृ० २९-३२।

---

१. जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी १९१४ पी० पी० ९७३ एफ० एफ० १९१५ पी. पी. १९१ एफ. एफ. (विक्रम स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ २५-२६)

२. (विक्रम एडवेंचर्स) एच० ओ० एस० जिल्द २६० इन्ट्रोडक्शन (LXIII—IV)

यह भी विचारणीय है कि उक्त संवत् यदि विदेशी राजा अजेस या अयस द्वारा स्थापित किया हुआ होता तो उसमें महीनों तथा तिथियों के नाम भी ईस्वी सन् के जनवरी फरवरी आदि की तरह विदेशी होते। किन्तु इसके विपरीत तक्षशिला के ताम्रपत्र मे आषाढ मास पचमी तिथि का, यूसुफ जई के पजतर वाले लेख में श्रावण मास प्रतिपदा का तथा गुडु फर्स के तख्ते वाही वाले लेख में वैशाख मास पंचमी का निर्देश है। इससे सिद्ध होता है कि भारत के उत्तर पश्चिम के प्रदेशो मे भी पाये जाने वाले इन लेखो में विक्रम सवत् का ही प्रयोग हुआ है, किसी अन्य का नही। (वि० स्मृति ग्रन्थ पृ० २५,२६)

१७ (ण) मैक्समूलर का मत और उसकी शिथिलता।

ऊपर प्रसग से जेम्स फर्गूसन महोदय के उस मत की कुछ चर्चा की जा चुकी है जिसके अनुसार उज्जैन के राजा यशोधर्मा द्वारा ५४४ ईस्वी मे शकों पर विजय पाने के उपलक्ष्य मे विक्रमादित्य उपाधि धारण करने तथा अपने नाम से विक्रम संवत् चलाने की कल्पना की गई थी और जिसके आधार पर ही प्रो० मैक्समूलर[1] महोदय ने अपने, छठी शताब्दी के मध्य मे सस्कृत साहित्य के पुनरुज्जीवन सम्बन्धी मत की स्थापना कर कालिदास को भी उसका समसामयिक ठहराने की चेष्टा की थी। वे कहते थे कि बौद्ध शासन के दीर्घ काल में वैदिक धर्म तथा सस्कृत साहित्य का प्रायः लोप सा हो गया था। सस्कृत न राज भाषा रह गई थी न लोक भाषा। इस अवस्था की समाप्ति गुप्त शासन काल मे सस्कृत के पुनरुत्थान से हुई।

किन्तु इसके कुछ समय पश्चात् ही ऐसी सामग्री[2] उपलब्ध हो गई जिसने

---

१. हिस्टरी आफ संस्कृत लिटरेचर (—ए. मैकडानल) तीसरा संस्करण पृ ३२३

२. (क) बौद्ध कवि अश्व घोष ने कनिष्क के समय लगभग १२५ ई० पू० मे अपने काव्य तथा ग्रन्थ सस्कृत भाषा में लिखे। उससे भी पूर्व शुग काल में पतंजलि ने अपने महाभाष्य में कुछ सस्कृत काव्यों तथा नाटकों का उल्लेख किया है।

(ख) मालव संवत् ५२९ में वत्स भट्टि द्वारा लिखा गया मन्दसौरवाला शिलालेख संस्कृत में है। (फ्लीट द्वारा प्रकाशित गुप्तलेख संख्या १८। तथा विक्रम संवत् ४३० का कावी-अभिलेख (इण्डियन

यह सिद्ध कर दिया कि छठी शताब्दी के मध्य से पूर्व भी संस्कृत मे काव्य रचना होती थी और शिलालेख आदि भी लिखे जाते थे। आज कोई भी विद्वान् इस मत का समर्थन नही करता, अतः इस पर कुछ लिखना अनावश्यक ही प्रतीत होता है।

मैकडानल[1] ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ दि संस्कृत लिटरेचर' मे कालिदास को गुप्तवंशी सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) का सम सामयिक माना है। और डा० भण्डारकर[2] महोदय भी इसी मत के समर्थक है। म० म० वासुदेव विष्णु मिराशी ने भी अपनी पुस्तक 'कालिदास'[3] के पृष्ठ ४३ पर इसी मत की पुष्टि की है। कालिदास की तिथि के सम्बन्ध मे उन्होंने अन्य मतो का खण्डन करके यह स्थापना की है कि कालिदास चन्द्रगुप्त द्वितीय के आश्रित थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय का शासन-काल ३७५–४१३ ईस्वी था। अन्य भी अनेक भारतीय तथा विदेशी विद्वान् इसी मत को स्वीकार करते है। उनका कथन है कि—

१८. गुप्तवंशी सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय वाला पक्ष

अश्वघोष का समय ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी माना जाता है क्योंकि प्रसिद्ध है कि वे पेशावर के राजा कनिष्क[4] के

एण्टिक्वेरी वर्ष १८७६ पृ० १८२) दोनों के लिए देखो वि० स्मृ. ग्र. पृ० ५५

(ग) मालव संवत् ४६१ का नर वर्मा वाला मन्दसौर मे प्राप्त संस्कृत मे लिखा लेख।

(घ) मालव संवत् ४९३ का बन्धु वर्मा वाला मन्दसौर में प्राप्त संस्कृत शिलालेख। वि० ४९ पृ–५०

(ङ) मालव संवत् ५२४ का प्रभाकर वाला मन्दसौर—मे मिला लेख।

१. हिस्टरी आफ संस्कृत लिटरेचर तृतीय संस्करण पृ० ३२१
२. जर्नल आफ दी बाम्बे ब्राच आफ दि एशियाटिक सोसा० पृष्ठ ३९८ (वि० स्मृति ग्र० पृ० ३७)
३. वि० स्मृति ग्र० पृ० ४३
४. कनिष्क का काल ७८-११८ ईस्वी या १२०–१६० ईस्वी। देखो अर्ली हिस्टरी आफ इण्डिया (वि० स्मृति ग्र० पृ० २७२)

१८. (क) विक्रम चन्द्रगुप्त द्वितीय ही हैं । तथा कालिदास उसी के समय में हुए क्योंकि वे अश्वघोष के पश्चातवर्त्ती थे।

दरबार मे रहते थे, और उसका समय ७८–११८ ईस्वी या १२०–१६० ईस्वी समझा जाता है। कालिदास अनेक भावो के लिए अश्वघोष के ऋणी[1] है, कालिदास की रचनाए अश्वघोष की रचनाओं की अपेक्षा अधिक परिमार्जित तथा अधिक विकसित काव्यकला की परिचायक है, रघुवश आदि में पाणिनि-व्याकरण के नियमों का पालन बुद्ध चरित आदि की अपेक्षा अधिक तत्परता से किया गया है तथा कालिदास की प्राकृत भाषा अश्वघोष

---

१. (क) **कालिदास**—त वीक्ष्य वेपथु मती सरसाङ्ग यष्टि
निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती ।
मार्गा चलव्यति कराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराज तनया नययौ न तस्थौ ॥ कुमार स० ५ का ८५

(ख) तासा मुखैरासव गन्धगर्भैर्व्याप्तान्तरा सान्द्रकुतूहलानाम् ।
विलोलनेत्रभ्रमरै गवाक्षा सहस्रपत्राभरणा इवासन् ॥
(र० वं ७-११)

(ग) परस्परेण स्पृहणीय शोभं न चेदिद द्वन्द्व मयोजयिष्यत् ।
अस्मिन् द्वयेरूप विधान यत्नः पत्युः प्रजाना विफलोऽभविष्यत् ॥
रघु ॥ ७।१४॥

(घ) लाक्षारागं चरण कमल न्यास योग्य च यस्या-
मेक सूते सकलमबला मण्डनं कल्पवृक्षः ॥

अश्वघोष--(क) त गौरवं बुद्धगतं चकर्ष भार्यानुरागः पुनराचकर्ष ।
सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ तरँस्तरगेष्विव राजहंस ॥
सौ० न० ॥४।४२॥

(ख) कासाञ्चिदासा वदनानि रेजुर्वनान्तरेभ्यश्चल कुण्डलानि ।
व्याविद्धपर्णेभ्य इवाकरेभ्यः पद्मानि कादम्ब विघट्टितानि ॥

(ग) ता सुन्दरी चेन्नलभेत नन्दः सा वा निषेवेत न त नतभ्रूः ॥ इत्यादि
॥सौ० न०॥

(घ) हारान्मणीनुत्तम कुण्डलानि केयूरवर्णाण्यथ नूपुराणि ।
एवं विधान्याभरणानि यत्र स्वर्गानुरूपाणि फलन्ति वृक्षाः ॥

की प्राकृत भाषा की अपेक्षा अर्वाचीन है अतः कालिदास उसके पीछे के हैं।

१८.(ख) कालिदास के काव्यों में गुप्तों के संकेत।

कालिदास के काव्यों में गुप्त वश,[1] उसके राजा समुद्रगुप्त,[2] चन्द्रगुप्त[3], और कुमारगुप्त[4] की ओर संकेत है। यह भी संभव है कि कुमार संभव की रचना कवि ने कुमारगुप्त के जन्म के अवसर पर राजा को भेंट करने के लिए की हो।

१८.(ग) रघु की दिग्विजय द्वारा चन्द्रगुप्त की विजय का गुणगान।

रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में रघु की दिग्विजय का वर्णन करने के लिए कवि को, संभवतः समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय की विजय यात्राओं से प्रेरणा मिली हो।

१८. (घ) दिलीप का अश्वमेध चन्द्रगुप्त का ही अश्वमेध है।

रघुवंश के तीसरे सर्ग मे वर्णित दिलीप का अश्वमेध यज्ञ संभवतः चन्द्रगुप्त द्वितीय के अश्वमेध यज्ञ की ओर संकेत कर रहा है।

१८. (ङ) विक्रमोर्वशीय का विक्रम चन्द्रगुप्त द्वितीय ही है

विक्रमोर्वशीय नाटक संभवतः चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा विक्रमादित्य उपाधि धारण करने के अवसर पर खेला गया हो।

---

१. (क) स्ववीर्य गुप्ता हि मनोः प्रसूतिः। रघुवंश ॥३।४॥
   (ख) सगुप्तमूल प्रत्यन्तः····॥ रघुवंश सर्ग ४ का २६ ॥

२. आसमुद्रक्षितीशानाम् ॥ रघु० सर्ग १ का ५॥

३. (क) यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा ॥रघु० ४-१२॥ इत्यादि
   (ख) रघु० ४ का १८।

४. (क) हरेः कुमारोपि कुमार विक्रम.०··· ॥ रघु० सर्ग २ का ॥
   (ख) ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम् ॥
   ॥रघु० सर्ग ५ का ३६॥
   (ग) इत्युद्गताः पौरवधूमुखेभ्यः श्रृण्वन् कथाः श्रोत्र सुखाः कुमारः।
   ॥रघु० सर्ग ७ का १६॥

१८. (च) कालिदास ने मेघदूत के पूर्व मेघ (पद्य ४७,४८,४९) मे शिव के पुत्र स्कन्द की पूजा[1] के लिए मेघ से अनुरोध किया है। रघुवश में भी मयूर पृष्ठ पर आरुढ स्कन्द[2] का वर्णन प्रसंग से आ गया है। कुमार सभव का विषय ही कुमार (स्कन्द) से सम्बन्ध रखता है। गुप्त युग में स्कन्द की पूजा को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था। इससे भी प्रतीत होता है कि कालिदास का काल गुप्त युग ही हो सकता है।

कीथ भी उसी का समर्थन करता है

इसी पक्ष का समर्थन करते हुए कीथ महोदय भी अपने ग्रन्थ 'संस्कृत साहित्य का इतिहास'[3] के पृष्ठ ९८ पर लिखते हैं "तो भी कालिदास को गुप्त शक्ति के उत्कर्ष काल से पृथक् करना कठिन है। वे अश्वघोष और नाटककार भास के परवर्त्ती थे; वे ग्रीक शब्दो से परिचित थे, जैसा कि उनके जामित्र शब्द के प्रयोग से सिद्ध होता है, उनके नाटको की प्राकृत निश्चित रूप से अश्वघोष तथा भास की प्राकृत[4] से बाद की है, और उनको गुप्तों के समय से पूर्व नही रखा जा सकता। उनका, ब्राह्मण धर्म के विधान को पूर्णतया स्वीकार करना, सपत्ति तथा शक्ति के वातावरण मे रहने की भावना, मालविकाग्निमित्र मे अश्वमेध याग का उल्लेख, रघुवश मे रघु की विजय— इस सबको एक महान् गुप्त शासक का समाश्रय पाने के आनन्द के परिणाम के रूप मे ही ठीक तरह से समझा जा सकता है, और हमे ध्यान रखना चाहिए कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी, जिसके साथ (भारतीय) परपरा बराबर कालिदास का सम्बन्ध जोडती आई है। और कुमार

१ तत्र स्कन्द नियत वसतिपुष्पमेघी कृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योम गंगा जलार्द्रैः। इत्यादि

२ परार्घ्य वर्णास्तरणोपन्नमासेदिवान् रत्न वदासन सः। ·
भूयिष्ठमासीदुपमेय कान्तिर्मयूर पृष्ठा श्रयिणा गुहेन ॥ रघु सर्ग ६ का ४।

३ प्रो० कीथ के ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर का हिन्दी भाषान्तर डा० मगलदेव शास्त्री द्वारा कृत। सन् १९६०। पृ० ९८।

४ अनेक विद्वानो ने सामान्यरूप से इस बात पर बल दिया है कि कालिदास के नाटकों की प्राकृत अश्वघोष के नाटको की प्राकृत से अर्वाचीन है किन्तु अपने इस कथन की पुष्टि मे उन्होंने भाषा के उन परिवर्तनो तथा उनके उदाहरणो को उपस्थित करने का कष्ट नही किया जिनके आधार पर उनकी उस स्थापना पर दूसरे विद्वान् भी विचार कर सके।

संभव इस नाम मे युवराज कुमारगुप्त का संकेत देखना अथवा विक्रमोर्वशीय इस नाम मे विक्रमादित्य इस उपाधि का उल्लेख देखना भी असंगत नहीं है। हूणों को हराने वाले यशोधर्मन् को (भारतीय) अनुश्रुति का विक्रमादित्य बना कर छठी शताब्दी मे कालिदास का निर्देश करने का प्रयत्न किया गया है परन्तु अब इस मत को कोई नही मानता।"

उक्त मत की समीक्षा

कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय का समसामयिक मानने वालो के पक्ष की स्थापना प्राय: निर्बल कल्पनाओं तथा सभावनाओं की नीव पर ही की गई है अत: उनमें विशेष बल नहीं। अश्वघोष तथा कालिदास की रचनाओं में भावसाम्य के आधार पर कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। भावों, वाक्य खण्डों, मुहावरों तथा उपमा रूपक आदि में समानता का आधार दोनों लेखकों से पूर्ववर्ती कोई साहित्य भी हो सकता है जो आज उपलब्ध नहीं। यदि कालिदास को अश्वघोष का पूर्ववर्ती न माना जाए, तो सस्कृत भाषा में वे कौन से काव्य थे जिन्होंने अश्वघोष को प्रेरणा दी कि वह बुद्ध की शिक्षाओं को जनता तक काव्य शैली[1] द्वारा पहुचाए? अत अश्वघोष से पूर्व किन्हीं काव्यो की कल्पना तो करनी ही पडती है उनमें ही कालिदास के काव्यों को भी क्यो न गिन लिया जाय? शिव ने कामदेव को जीत लिया था यह भाव पुराण साहित्य मे सामान्यतया पाया जाता है किन्तु इन्द्र की प्रेरणा से काम का शिव के तपोवन मे जाना और वहा जाकर शिव पर तीर[2] चलाना—इस चित्र के लिए अश्वघोष ही कालिदास का ऋणी है। अश्वघोष की अपेक्षा कालिदास की रचनाए अधिक परिमार्जित, विकसित तथा कृत्रिमता युक्त है अत: कालिदास परवर्त्ती होने चाहिए—यह कहना भी ठीक नहीं। एक ही शैली के लेखकों की रचनाओ मे भी वैयक्तिक रुचि, अभ्यास तथा प्रतिभा के भेद से अन्तर पड जाता है उस अन्तर की व्याख्या केवल पहले होने या पीछे होने के द्वारा नहीं की जा

१. इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थ गर्भा कृतिः
श्रोतॄणा ग्रहणार्थ मन्य मनसा काव्योपचारात्कृता।
यन्मोक्षात्कृतमन्यदत्र हि मया तत्काव्य धर्मात् कृतं
पातु तिक्तमिवौषधं मधुयुत हृद्यं कथं स्यादिति॥ सौन्दरानन्द १८ का ६३।

२. शैलेन्दपुत्री प्रति येन विद्धो देवोपि शभुश्चकितो बभूव।
न चिन्तयत्येष तमेव वाणं, किं स्यादचित्तो न शरः स एषः॥ बुद्धचरित १३ सर्ग का श्लोक १६। इसके साथ कुमार संभव के तृतीय सर्ग के ६६ तथा ७२ श्लोक के प्रकरण को मिला कर देखें।

सकती। कालिदास तथा भवभूति दोनों ही संस्कृत के श्रेष्ठ कवि हैं। भवभूति निश्चित ही बहुत पीछे के हैं किन्तु उनके नाटको में वाक्य रचना का वह सौष्ठव तथा वह परिमार्जन[1] नही पाया जाता जो कालिदास के नाटकों में या काव्यों में हैं। इसका कारण काल नहीं किन्तु शैली के प्रति भवभूति की वह उपेक्षा[2] है जो उन्होने उत्तर रामचरित मे स्वय प्रकट की है। कालिदास ने यदि रघुवंश के नवम सर्ग मे यमक[3] रचना द्वारा पाण्डित्य प्रदर्शन करना चाहा है तो अश्वघोष ने भी लुङ तथा यङन्त प्रयोगो की झडी लगा कर कृत्रिम शैली का आश्रय लिया है और पाण्डित्य प्रदर्शन किया है। पाणिनि-व्याकरण के

---

१. तटस्थं नैराश्याद पिच कलुषं विप्रियवशाद्

वियोगे दीर्घेऽस्मिन् झटिति घटनात्स्तम्भितमिव

(क) प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणै गढिकरुणम्।

द्रवीभूत प्रेम्णा तव हृदय मस्मिन्क्षणइव ॥ उ० च० ३ का १३

इसके चतुर्थ चरण का अन्वय यह है—तवहृदय मस्मिन् क्षणे प्रेम्णा द्रवीभूत मिव। इव यहाँ उन्त्प्रेक्षा का वाचक है। उत्प्रेक्षा का विषय यहाँ पर 'हृदय का द्रवीभूत हो जाना है न कि क्षण। किन्तु उत्प्रेक्षा वाचक इव निपात का प्रयोग क्षण के साथ हो गया है उसे क्षण से पृथक नही किया जा सकता क्योंकि इव के साथ नित्य समास होता है। 'इवेन नित्यसमासो विभक्त्यलोपश्च यह वार्तिक है।

(ख) आसीदिय दशरथस्य गृहे यथा श्री. श्री रेववा किमुपमान पदेन सैषा। कष्टंवताऽन्यदिव दैववशेनजाता, दु खात्मक किमपिभूतमहो विकार।

॥ उ० च० ४ का पद्य ६ ॥

इसके उत्तरार्ध का अन्वय सभवत. यह होना चाहिए "बतकष्ट, (इयं) दैववशेन अन्यदिवजाता, (इयं) दुःखात्मकं किमपिभूतम्। अहोविकारः। अर्थात् कैसे दुःख की बात है कि यह दैववश कुछ और ही बन गई है। प्रतीत होता है कि मानो यह दुख की मूर्ति कोई भूत प्रेत है। अहो यह परिवर्तन भी कैसा है?

२. सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतोह्यवचनीयता। यथा स्त्रीणा तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ॥ उ० च० अंक १, पद्य ५ ॥

३. पितुरनन्तरमुत्तर कोसला न्समधि गम्य समाधिजितेन्द्रियः।
दशरथः प्रशशास महारथो यमवतामवता च धुरिस्थितः ॥ रघु० सर्ग ९ का पद्य १।

नियमों की उपेक्षा कालिदास की रचनाओं मे भी अश्वघोष की रचनाओं से कुछ कम नही पायी जाती।

प्राकृत भाषा सम्बन्धी युक्ति का खण्डन

कालिदास को अश्वघोष का परवर्ती मानने वाले विचारकों की सबसे प्रबल युक्ति प्राकृत भाषा सम्बन्धी है। किन्तु हम समझते हैं कि उनकी यही युक्ति सबसे निर्बल है। पाली प्रथम प्राकृत समझी जाती है। अश्वघोष ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि महायानी बौद्ध होने पर भी उनका बहुत अधिक सम्पर्क हीनयानी प्राचीन बौद्ध साहित्य से रहता हो तथा उस साहित्य की भाषा का प्रभाव उनके नाटकों की प्राकृत पर पड गया हो। आज भी एक ही नगर मे रहने वाले एक शिक्षित हिन्दू तथा शिक्षित मुसलमान की हिन्दी भाषा मे स्पष्ट अन्तर देखा जाता है। कालिदास वैदिक धर्मी थे। उनकी प्राकृत पर पालि का वह प्रभाव नही पड़ सकता था जो अश्वघोष की प्राकृत पर पड गया। सत्य तो यह है कि दोनो की ही प्राकृत उस समय की जनता की बोलचाल की भाषा नही है किन्तु प्राकृत व्याकरण के नियमों के अनुसार ढाली हुई सस्कृत का रूपान्तर मात्र है। उदाहरण के लिए तुलसी के रामचरित की भाषा जायसी की भाषा की तरह, बोलचाल की अवधी नही है किन्तु साहित्यिक अवधी है। धर्म भेद के साथ-साथ स्थानीय भेद भी भाषाओं को बहुत प्रभावित किया करता है इसे भी ध्यान में रखना चाहिए। अत: ऐसे आधार पर कालिदास को अश्वघोष का परवर्ती ठहरा देना उचित प्रतीत नही होता।

इस प्रसंग मे यह भी विचारणीय है कि अश्वघोष के नाटक भारत में बौद्ध प्रभाव के घट जाने और अन्त मे बिलकुल समाप्त हो जाने पर—मंच पर खेले जाने की तो बात ही दूर—पठन पाठन से भी निकल गए, और अब सैकड़ों वर्ष पश्चात्, खण्डित रूप में, भारत से बाहर खोद कर निकाले गए। अत: वे उन परिणामों तथा परिवर्तनो से बच गए जो लिपि करने वालों की भूल चूक के कारण हस्त लेखों में हो जाया करते हैं या मंच पर खेलने वालों द्वारा समय समय पर तात्कालिक दर्शकों की सुबोधता के लिए जानबूझ कर कर लिए जाते हैं जबकि कालिदास के नाटक लोकप्रिय होने के कारण इस आपत्ति से न बच सके और उनकी भाषा में परवर्तिता की झलक आ गई। इसके उदाहरण रूप में अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रथम अंक मे वह परिवर्धन पेश किया जा सकता है जो उसके कलकत्ता संस्करण मे देखा जाता है। विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अंक में भी

रंगमंच पर मनोरंजकता को बढ़ाने के लिए इस प्रकार का परिवर्तन किया गया प्रतीत होता है।

कालिदास गुप्तवंशी राजा स्कंदगुप्त के समय हुए इसकी समीक्षा

स्कद[1] (स्कद गुप्त) का नाम कालिदास के काव्यों में कई बार आया है, स्कदगुप्त ने विक्रमादित्य[2] उपाधि धारण की थी, उसके पिता कुमार गुप्त की उपाधि महेन्द्रादित्य[3] (महेन्द्र) थी, स्कन्दगुप्त के समय हूणों[4] ने भारत पर आक्रमण किया जिसमे उन्हे हार खानी पडी। कुछ समय पश्चात् उनके दूसरे[5] आक्रमण का भय उपस्थित हो गया। इन तथ्यों के आधार पर कुछ विद्वान् कालिदास को स्कन्द गुप्त का समसामयिक स्वीकार करते हैं। किन्तु केवल स्कन्द तथा महेन्द्र शब्दों के २, ३ बार प्रयोग के आधार पर इतनी बडी स्थापना कर डालनी

---

१ (क) अथोपयन्त्रा सदृशेन युक्ता स्कन्देन साक्षादिवदेवसेनाम्। रघु सर्ग ७ का १२वा पद्य।

(ख) तत्र स्कन्द नियतवसति पुष्पमेघीकृतात्मा। पूर्वमेघ ४७।

२. प्राचीन भारत (सी० एम० श्री निवासा चारी तथा एम एम. रामस्वामी) का हिन्दी अनुवाद द्वितीय सस्करण, पृ० २००।

३ गुप्तवशीय राजा कुमार गुप्त के सिक्कों पर "परम भागवत महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्त महेन्द्रादित्य" लिखा मिलता है। विक्रमोर्वशीय मे महेन्द्र शब्द के विशेष प्रयोग के लिए देखिए कालिदास ग्रन्थावली प्रथम संस्करण पृ० १०८, पृ० १०९, पृ० ११० पर २ बार, पृ० १३४, पृ० १३५ पर पास पास ३ बार,

४ अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया (वि. स्मिथ) पृ० ३२६ (सन् ४५५ ईस्वी के लगभग)

५ अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया (वि० स्मिथ) पृ० ३२८ (सन् ४६५ ईस्वी के लगभग) इसके साथ विक्रमोर्वशीय के पृ० १८० पर नारद के इस वाक्य को देखिए। नारद—राजन् श्रूयता महेन्द्रस देशः।
राजा-अवहितोस्मि। नारद.—प्रभावदर्शी मघवा वनगमनाय कृतबुद्धि भवन्त मनुशास्ति। राजा—किमाज्ञापयति? नारद.—त्रिकाल दर्शिभिर्मुनिभि रादिष्टो महान् सुरासुरसगरो भावी। भवॉश्च सायुगीनः सहायो नः। तेन न त्वया शस्त्र सन्यस्त व्यम्। विक्रमोर्व० पाचवा अक १९ तथा २० वे पद्य के बीच मे।

उचित नहीं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि कालिदास ने हूणों का वर्णन भारत से बाहर किया[१] है। कुछ आश्चर्य नही कि हूण लोग भारत पर आक्रमण करने से काफी समय पूर्व ही उसके उत्तर पश्चिमीय भाग में आ बसे हों। सबसे बडी बात यह है कि स्कन्द गुप्त को अपने समस्त शासन-काल में आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं से घोर सघर्ष करना पड़ा। विक्रमोर्वशीय मे कवि ने जिस विक्रम या नायक का चित्र खीचा है वह वीर तो अवश्य है किन्तु कवि ने उसका चित्रण धोर ललित नायक के रूप में किया है जिस का कुछ भी मेल स्कद गुप्त के साथ नहीं बैठता।

कालिदास का रचना काल चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय से प्रारम्भ होकर स्कंदगुप्त के समय तक चलता रहा हो इस कल्पना के लिए कवि की आयु असाधारण रूप से लम्बी[२] माननी पडती है जो साधारणतया सभव नहीं। अतः इस पक्ष पर अधिक विचार की आवश्यकता ही प्रतीत नही होती।

यद्यपि विक्रमोर्वशीय नाटक में विक्रम नामक कोई पात्र नहीं तो भी इसका नाम विक्रमोर्वशीय है और इसमें कवि ने महेन्द्र,[३] विक्रम[४] तथा चन्द्र[५]

---

१. पारसीकास्ततो जेतु०, रघु वर्ग ४ या ६० । तत्र हूणवरोधानां० रघु सग ४ का ६८,

२. (क) चन्द्रगुप्त द्वितीय का काल ३७५—४१३ ईस्वी तथा स्कन्दगुप्त का शासन काल ४५५ ईस्वी से ४६७ ईस्वी तक,

   (ख) रघुवश में पाया जाने वाला यह शब्द (हूण) संभवतः प्रारभ में द्वितीय शताब्दी ई० पू० के ह्यूग-नू (Hiong-No) के लिए प्रयुक्त किया गया था। कीथ के संस्कृत साहित्य के इतिहास का हिन्दी अनुवाद पृ० ९९।

३. (क) या तपोविशेष शंकितस्य सुकुमारं प्रहरणं महेन्द्रस्य। अंक १, पृ० १०७

   (ख) उपस्थित सांपरायो महेन्द्रोऽपि मध्यम ··· । अंक १, पृ० १०९

   (ग) कि प्रभाव दर्शिना महेन्द्रेण ? अक १, पृ० ११०

   (घ) न महेन्द्रेण, महेन्द्र सदृशानुभावेन राजर्षिणा पुरुरवसा। अंक १, पृ० ११०

   (ङ) दिष्ट्या महेन्द्रोपकार पर्याप्तेन विक्रम महिम्ना वर्धते भवान्। अंक १, पृ ११३

(च) भोः अहल्या कामुकस्य महेन्द्रस्य वैद्यः सचिवः उर्वशीपर्युत्सुकस्य च भवतो ऽहं द्वावप्यत्रोन्मत्तौ । अंक १, पृ० १२२
(छ) महेन्द्र भवनं गच्छता भगवता ··· । अक २, पृष्ठ १३४
(ज) सा खलु शप्ता उपाध्यायेन, महेन्द्रेण पुन रनुगृहीता । अंक २, पृ० १३५
(झ) महेन्द्रेण पुन. प्रेक्षावसाने ···· । अंक २, पृ० १३५
(ञ) सदृश मेतत् प्रकर्षान्तरविदो महेन्द्रस्य । अंक २, पृ० १३५
(ट) इदानी महेन्द्र सकीर्तनेन स्मृत. समयो मम हृदयमायासयति । अंक ५, पृष्ठ १७७
(ठ) अहंपुरा महाराजगृहीतहृदया गुरुशाप समूढा महेन्द्रेण आज्ञापिता । अक ५, पृ० १७७
(ड) राजन् श्रूयता महेन्द्र सन्देश. । अक ५, पृ० १८०
(ढ) उपनीयता स्वय महेन्द्रेण सभृत कुमारस्यायुषो यौवराज्याभिषेक· । अक ५, पृ० १८०
(ण) अनुगृहीतोऽस्मि मघवता (महेन्द्रेण) अंक ५, पृ० १८२

४ (क) दिष्ट्या महेन्द्रोपकार पर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धतेभवान् । अक १, पृ० ११३
(ख) अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः । अक १, पृ० ११३

५. (क) सदृशमेतत्सोम वश सभवस्य । अंक १, पृ० १०८
(ख) राजर्षे सोमदत्तो रथो दृश्यते । अक १, पृ० १०९
(ग) अथवा चन्द्रादमृत मिति किमाश्चर्यम् ? अक १, पृ० १११
(घ) एता सुतनु मुख ते सख्य· पश्यन्ति हेम कूट गता· । अंक १, पृ० १११ उत्सुक नयना लोका श्चन्द्र मिवो पप्लवान्मुक्तम् । पद्य ११
(ङ) विशाखा सहित इव भगवान् सोम· समुपस्थितो राजर्षि. । अंक १, पृ० १११
(च) प्रथमोदित इव चन्द्रः कौमुदीमिव त्वा प्रतीच्छति । अक २, पृ० १२४
(छ) मणि हर्म्य पृष्ठे सुदर्शनश्चन्द्र· । अक ३, पृ० १३७
(ज) भो. प्रत्यासन्नेन चन्द्रोदयेन भवितव्यम् । अक ३, पृ० १३७
(झ) एष उदितो राजा द्विजातीनाम् । अंक ३, पृ० १३७
(ञ) (प्राजलि. प्रणम्य) भगवन् क्षपानाथ, रविमावसते· ··हर चूडा-

या उसके पर्यायवाचक शब्दों का प्रयोग जिस ढंग से किया है उससे वे किसी ऐतिहासिक तथ्य की ओर सकेत करते प्रतीत होते हैं। इतिहास के कतिपय विद्वान कालिदास के ग्रथों में आए 'चन्द्र' शब्द से गुप्तवंशीय सम्राट चन्द्र गुप्त द्वितीय का मतलब निकालते है किन्तु इस पक्ष को स्वीकार करने में कठिनाई यह आ जाती है कि विक्रमोर्वशीय के इन प्रकरणों में चन्द्र की अपेक्षा कोई महेन्द्र अधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है। जबकि गुप्त वश में महेन्द्रादित्य उपाधिधारी कुमारगुप्त तो चन्द्रगुप्त द्वितीय का पुत्र है न कि पिता या स्वामी।

मल्लिनाथ का मत तथा उसका खण्डन

मल्लिनाथ ने मेघदूत के १४वें पद्य "स्थानादस्मात् सरस निचुलात्" इत्यादि पद्य की व्याख्या में 'दिङ्नाग' शब्द पर एक टिप्पणी लिख दी कि कालिदास ने यहाँ पर अपने काव्यों मे दोष दिखलाने वाले प्रतिस्पर्धी **बौद्ध** पण्डित दिङ्नाग का तथा अपने सुहृद कवि निचुल का व्यंग्य से संकेत किया है। दिङ्नाग का समय[1] ३४५—४२५ ईस्वी

निहितात्मने नमस्ते। अंक ३ पृ० १३८

(ट) नन्वेतेऽमृत गर्भा. सेव्यन्ता चन्द्रपादाः। अंक ३, पृ० १४०

(ठ) एष रोहिणी सयोगेनाधिकं शोभते भगवान् मृगलाछन.। अंक ३, पृ० १४१

(ड) यावत् मणि हर्म्य पृष्ठ गता श्चन्द्रपादानर्चयामि। अंक ३, पृ० १४३

(ढ) (नाट्येन गंन्ध पुष्पादिभिश्चन्द्रपादानभ्यर्च्य)। अक ३, पृ० १४३

(ण) एषाऽहं देवता मिथुन रोहिणी मृग लाछन साक्षी कृत्य आर्य पुत्र मनु प्रसादयामि। अक ३, पृ० १४४

(त) भो. सेविताः प्रदोष रमणीयाश्चन्द्रपादा.। अक ३, पृ० १४७

(थ) सोम वश विस्तारयिता भव। अंक ५, पृ० १७३

१. मेघदूत निर्णयसागर दशम संस्करण सन् १०१८। पृ० १२
अत्रेदमपि अर्थान्तिर ध्वनयति रसिको निचुल नामा महाकविः कालिदासस्य सहाध्यायी परापादिताना कालिदास प्रबन्ध दूषणानां परिहर्त्ता यस्मिन् स्थाने तस्मात् उदङ्मुखो निर्दोषत्वादुन्नत मुखः सन् पथि सारस्वत मार्गे दिङ्नागाना (पूजायां बहुवचनम्।) दिङ्नागाचार्यस्य कालिदास प्रतिपक्षस्य हस्तावलेपान् हस्त विन्यास पूर्वकाणि दूषणानि परि हरन्० इत्यादि।

के लगभग है । अत. कालिदास का समय भी इसके आस-पास ही होना चाहिए।

किन्तु इस सम्बन्ध मे मल्लिनाथ की यह उद्भावना नितान्त भ्रमपूर्ण है । उनसे पहले टीका कारो ने दिङ्नाग शब्द से ऐसी ध्वनि नही निकाली । फिर दिङ्नाग दार्शनिक था कवि नही। एक दार्शनिक की कवि के साथ कैसी प्रतिस्पर्धा ? दिङ्नाग का जन्म दक्षिण भारत में काँची के निकट हुआ । ये अधिकतर उड़ीसा मे रहते थे। कालिदास सभवत मध्य प्रदेश मे और मगध मे रहे अत इनमे परस्पर सघर्ष की भावना प्रतीत नही होती । दिङ्नाग के जीवन वृतान्त के लिए डा० सतीश चन्द्र विद्या भूषण के हिस्टरी आफ इण्डियन लाजिक के पृ० २७२—७४ को देखना चाहिए।

मेघदूत मे एक और साक्ष्य।

पूर्व मेघ के ३०वे पद्य मे कवि ने लिखा है कि गाँव के बडे बूढे जहाँ उदयन कथाओ म कुशल है उस अवन्ति प्रदेश मे पहुँच कर तुम पूर्ववर्णित विशाल वैभव सम्पन्न उज्जयिनी भी जाना। वह उज्जयिनी ऐसी है कि पुण्यों के फलो के क्षीण हो जाने पर जब स्वर्ग गए लोग लौट कर पुन पृथ्वी पर आये. तब अपने बचे हुए पुण्यो के प्रताप से मानो स्वर्ग का ही कोई जगमगाता भाग भी साथ ले आए। यहाँ यह विचारणीय है कि कालिदास किसी विक्रम से परिचित अवश्य है । अब, दो विक्रम विशेष प्रसिद्ध है। ईस्वी सन् से पहले के शकारि विक्रम तथा गुप्तवशी चन्द्रगुप्त द्वितीय। यदि कवि गुप्त वश के समय हुआ होता ता उज्जयिनी के प्रसग मे अति प्राचीन उदयन के साथ सैकडो भारतीय कथाओ के नायक शकारि विक्रम का भी उल्लेख अवश्य करता। ऐसा उसने नही किया इसका कारण यही प्रतीत होता कि शकारि विक्रम उन दिनो जीवित था अत. कवि ने उसका सीधा निर्देश उचित नही समझा।

महाकवि कालिदास : काल-निर्णय का सार

कालिदास के काल के विषय में किए गए विचार का सार यह है :

१—भारतीय अनुश्रुतियों के आधार पर कालिदास का सम्बन्ध किसी विक्रमादित्य से अवश्य रहा है।

२—उसके बनाए विक्रमोर्वशीय नाटक का नाम भी यही सिद्ध करता

है कि कवि ने किसी विक्रम की विजय के उपलक्ष में ही उक्त नाटक की रचना की थी क्योंकि नाटक के किसी पात्र का नाम विक्रम नहीं है।

३. इसी नाटक के प्रथम अक मे २, ३ स्थानों पर विक्रम शब्द का प्रयोग इस प्रकार से किया गया है कि उससे किसी विक्रम व्यक्ति की व्यजना निकलती प्रतीत होती है।

४. अभिज्ञान शाकुन्तल की श्री जीवानन्द प्रकाशित प्रति की प्रस्तावना में कालिदास ने विक्रमादित्य को स्मरण किया है।

५ काशी विश्वविद्यालय के उपाध्याय श्री केशव मित्र के पास विद्यमान अभिज्ञान शाकुन्तल की हस्तलिखित प्रति की प्रस्तावना में राजा का नाम विक्रमादित्य तथा उसकी उपाधि साहसाङ्क दी गई है। अतः विक्रमादित्य का समय ही कालिदास का समय होना चाहिए।

६ कालिदास ने रघुवश के छठे सर्ग के ५९-६० पद्यो मे पाण्ड्यो की राजधानी उरग पुर लिखो है किन्तु ईसा की प्रथम शताब्दी के पश्चात् पाण्ड्यों की राजधानी उरग पुर कभी नहीं रही।

७. कालिदास ने मेघदूत मे विदिशा को दिशाओ मे प्रसिद्ध तथा राजधानी लिखा है। ईस्वी सन् के प्रथम शतक के पश्चात् विदिशा का महत्त्व कभी ऐसा नही रहा। अत कालिदास का जन्म इससे पूर्व ही होना चाहिए।

८. भारत के पुरातत्त्व विभाग की सन् १९०९-१० की सर्वे की रिपोर्ट मे भीटा स्थान से प्राप्त एक मण्डलक का उल्लेख है उस पर अकित चित्र मे अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रथम अक का दृश्य अकित है इससे इकार नही किया जा सकता।

९ मालविकाग्निमित्र नाटक मे कालिदास ने शुंग राज्य के सस्थापक पुष्यमित्र और उसके पुत्र अग्निमित्र के समय की कुछ ऐसी बाते लिखी हैं जिनसे सिद्ध होता है कि कवि उनके समय या उनसे कुछ ही समय पश्चात् हुआ होगा।

१०. कालिदास का विक्रमादित्य से सम्बन्ध सिद्ध किया जा चुका है अतः उसका समय वही होना चाहिए जो विक्रमादित्य का था। आन्ध्रवशी राज हाल की सप्तशती का समय ईसा की प्रथम शताब्दी माना जाता है उसमे विक्रमादित्य की दानशीलता का उल्लेख है। अत. कोई विक्रमादित्य ईस्वी सन् से पूर्व हो चुका था।

११. हाल के समसामयिक गुणाढ्य ने बृहत्कथा मे विक्रमादित्य सम्बन्धी कथाएँ लिखी है।

१२. बहुत प्राचीन काल से हिन्दू घरों मे जन्म पत्री बनाने तथा मागलिक कार्यों के अवसर पर सकल्प पाठ की परम्परा है। इनमें विक्रमादित्य के सम्वत् के उस वर्ष का उल्लेख रहता है जिस वर्ष वह कार्य किया जा रहा है शिलालेखो तथा राजा भोज आदि के दान पत्रों में भी इसी विक्रम सवत् का उल्लेख मिलता है।

१३. शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार हरिस्वामी ने लिखा है कि उसने अपना भाष्य विक्रमादित्य के समय तथा उज्जयिनी मे रहते हुए, कलि संवत् ३०४७ अर्थात् ईसा से लगभग ५५ वर्ष पूर्व लिखा। इससे भी सिद्ध होता है कि कोई विक्रमादित्य ईसा से लगभग ५०, ६० वर्ष पूर्व उज्जयिनी मे शासन करता था।

१४ जैन अनुश्रुतिया तथा कालकाचार्य की कथा भी उसकी पुष्टि करती हैं।

१५. कृत मालव तथा विक्रम सवत् एक ही है और इनका प्रयोग बहुत प्राचीन समय से होता आ रहा था। किन्ही ऐतिहासिक कारणो से नाम बदलते चले गए किन्तु संवत् वही रहा।

१६. तक्षशिला, यूसुफजई आदि सुदूर पश्चिमोत्तर प्रान्त मे लिखे गए लेखो तथा सिक्को पर भी इसी सवत् का प्रयोग हुआ है यद्यपि उनमे संवत् का नाम नही दिया गया।

१७. जेम्स फर्गुसन तथा मैक्समुलर महोदय के मत अब मान्य नही रहे।

१८ गुप्तवश के समय वाला पक्ष—मैकडानल भण्डारकर, वासुदेव मीराशी आदि विद्वान् कालिदास को अश्वघोष का परवर्ती अत. गुप्त कालीन स्वीकार करते हैं। इसका आधार दोनो कवियो की प्राकृत भाषा, तथा शैली आदि है,

१९. कालिदास के काव्यों मे गुप्त वशी राजाओ के नाम तथा उनकी विजय आदि का उल्लेख है अत. उसका समय लगभग ३८५ से ४१५ ईस्वी के लगभग होना चाहिए।

२०. कीथ भी कालिदास को गुप्त कालीन मानते हैं उनका आधार भी प्राकृत तथा शैली आदि ही है।

२१. किन्तु प्राकृत भाषा तथा शैली के आधार पर अन्तिम निर्णय नही

इस पक्ष की समीक्षा

किया जा सकता । बहुत संभव है कि रंग मंच पर अधिक खेले जाने के कारण कालिदास की भाषा मे समय-समय पर कुछ परिवर्तन करके उसे समयानुकूल बनाया जाता रहा। इसलिए उसकी प्राकृत कुछ अर्वाचीन प्रतीत होती है अश्वघोष की नहीं क्योंकि उसके नाटक चिरकाल से विस्मृति के गर्भ मे ही पड़े रहे। हिन्दु युग मे वे प्रायः उपेक्षित रहे और उनका अभिनय संभव न था।

२२. मेघदूत की टीका में मल्लिनाथ को भ्रम हुआ है।

२३. यदि कालिदास गुप्त वंश के समय हुवे होते तो बहुत संभव था कि मेघदूत में उदयन के साथ कवि विक्रम को भी स्मरण करता। अतः सिद्ध होता है कि कालिदास प्रथम विक्रम के समय ईसा से लगभग ५०, ६० वर्ष पूर्व ही हुआ।

कालिदास का जन्म स्थान

तैतिरीय उपनिषद में एक वाक्य[1] आता है कि उसने (ब्रह्म ने) सृष्टि का निर्माण किया और आप भी उस ही मे समा गया। अर्थात् उसकी बनाई सृष्टि के अतिरिक्त उसका कोई अन्य चिह्न दृष्टिगोचर नही होता। महाकवि कालिदास के सम्बन्ध मे भी यह उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती है। उसने अपने जन्म से किस देश तथा काल को गौरवान्वित किया इस प्रश्न का उत्तर देना अत्यन्त कठिन समस्या बना हुआ है क्योंकि कवि की रचनाओ के अस्पष्ट अन्त साक्ष्यो के अतिरिक्त कोई भी ऐसे निश्चयात्मक प्रमाण उपलब्ध नही होते जिनके आधार पर इन प्रश्नो का ठीक-ठीक निर्णय किया जा सके। कालिदास भारत के ही नही अपितु विश्व के मूर्धन्य कवियो मे विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनसे निकट सपर्क स्थापित करने की इच्छा किसके हृदय मे न होगी ? सभवत: यही कारण है कि भारत के विभिन्न प्रदेशो के विद्वान् अपनी अपनी भावना के अनुसार उन्हे अपने ही प्रदेश का निवासी समझते है। इसमे उनका विशेष दोष भी नही, क्योंकि कवि ने उन सभी प्रदेशों का ऐसा सजीव तथा भावुकता-पूर्ण वर्णन किया है कि पाठक यह अनुभव किए बिना नही रह सकता कि वैसा वर्णन वहाँ पर चिर काल तक निवास तथा उससे विशेष आत्मीयता के बिना सभव नही।

१. कवि ने अपने जन्म स्थान के विषय में स्वयं कुछ नहीं लिखा

कवि के जन्म स्थान के विषय मे चार मत प्रसिद्ध है। उनकी समीक्षा करके विद्वानो के विचारार्थ यहाँ अपने मन्तव्य को उनके समक्ष रखने का यत्न किया जाता है। आशा है पाठक निष्पक्षपात होकर सब मतों पर विचार करने की

२. चार पक्ष

---

१. तत्सृष्ट्वा तदनु प्राविशत्। तैत्तिरीय २–६।

कृपा करेंगे क्योंकि वे ही सत्यांसत्य का निर्णय करने की क्षमता रखते है। सोना खरा है या खोटा इसकी परीक्षा अग्नि मे ही होती है।[1]

३. रघुवंश की रचना में तीन प्रकार के तत्त्व
क. रोचक कथाएँ
ख. शिक्षा
ग. ऐतिहासिक निर्देश

कालिदास के काव्यों मे रघुवंश कवि की अन्तिम रचना है। इस काव्य मे कवि ने रघु के वंश का वर्णन किया है। पुराणों में सूर्य वंश की जो नामावली दी गई है कवि ने यत्किंचित् उलट फेर के साथ उसे ही स्वीकार कर लिया है। रघुवश में रामचरित का आधार बाल्मीकि रामायण है इसमे तो सन्देह ही नहीं। किन्तु दिलीप, रघु, अज तथा कुश और अग्नि वर्ण के चरित्र तथा उनमें वर्णित रोचक घटनाओं—संतान प्राप्ति के लिए दिलीप द्वारा गोसेवा, रघु का इन्द्र से युद्ध, रघु की दिग्विजय यात्रा, कौत्स को गुरु दक्षिणा का धन देने के लिए रघु का कुबेर पर आक्रमण करने का विचार तथा धन प्राप्ति, अज की प्रियंवद गन्धर्व से मित्रता तथा संमोहनास्त्र की प्राप्ति, इन्दुमती स्वयवर, विवाह का दृश्य, रघु का वानप्रस्थ होना, पारिजात के फूल की चोट से इन्दुमती की मृत्यु तथा अज का विलाप, कुश का स्वप्नदर्शन और अयोध्या का पुनरावासन, नागकन्या कुमुद्वती का कुश से विवाह, तथा अन्त में, अतिथि, सुदर्शन और अग्नि वर्ण के चरित—की सृष्टि कवि ने अपनी कल्पना से ही की है क्योंकि इनका कुछ भी निर्देश रामायण या पुराणो मे नही मिलता। इनमे से कुछ प्रसग तो पौराणिक शैली पर लिखे गए है और उनके लिखने में कवि का मुख्य उद्देश्य काव्य को मनोरंजक बनाना ही रहा होगा, गौण लक्ष्य भले ही कान्ता सम्मिततया उपदेश देना या किसी प्रिय सिद्धान्त अथवा मान्यता का निरूपण करना भी रहा हो। उदाहरणार्थ गोसेवा वाले प्रसंग का गौण लक्ष्य सभवत: गो भक्ति का महत्व तथा इन्द्र द्वारा अश्वमेध के घोड़े के न लौटाने के वर्णन का उद्देश्य यज्ञों मे पशुहिंसा के प्रति कवि की अरुचि, और अग्निवर्ण के चरित-वर्णन में उसका ध्येय विषयों मे अत्यधिक फँसने की हानि का प्रतिपादन करना रहा होगा। किन्तु कुछ प्रसंग तथा निर्देश अवश्य ही ऐसे है जिन्हें कवि ने या तो अपने समय की राजनीतिक अवस्थाओं से प्रभावित होकर सहज स्वभाव से ही लिख डाला है या खूब सोच समझ कर किसी विशेष उद्देश्य से ही उनका समावेश किया है। इस प्रकार के प्रसंगों या निर्देशों से कवि के देश काल आदि

---

१. तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद् व्यक्ति हेतवः।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपिवा। रघु० सर्ग १० श्लो०

के विषय मे बहुत प्रकाश पड़ता प्रतीत होता है। अतः यदि इनका अध्ययन दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से चतुर्थ शताब्दी ईसा के पश्चात् तक के भारतीय इतिहास के साथ मिला कर ध्यानपूर्वक किया जाए तो कवि के विषय मे बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकती है। मगध का निर्देश भी रघुवंश में कुछ ऐसा ही ऐतिहासिक महत्व रखता है।

४. मगध पक्ष

(क) रघुवंश का साक्ष्य

सुदक्षिणा मागधी थी—कवि लिखता है कि दिलीप का जन्म सूर्यवंश के प्रथम राजा वैवस्वतमनु[1] के कुल में हुआ और इसका समर्थन पुराणो से भी होता है। किन्तु उसकी पत्नी[2] का क्या नाम था और वह किस कुल की थी, इस विषय मे रामायण तथा पुराण चुप है। भारतीय परम्परा के अनुसार रामायण की घटना अत्यन्त प्राचीन है तथा उस समय मगध राज्य की सत्ता ही न थी। फिर भी कवि ने दिलीप की पत्नी को मगध वंश की राज कन्या लिखा और कहा कि, वह बड़ी उदार थी तथा इतनी दान दक्षिणाएँ दिया करती थी कि उसका नाम ही सुदक्षिणा प्रसिद्ध हो गया था। ऐसा लिखने मे कवि का कोई विशेष अभिप्राय अवश्य रहा होगा। यह नही माना जा सकता कि लिखते समय कवि के मन मे जो कुछ आ गया उसी के अनुसार उसने यह लिख मारा। रघुवंश के तीसरे सर्ग मे फिर दो बार[3]

---

१ वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।
आसीत् महीक्षिता माद्य प्रणवश्छन्दमामिव ॥ १– ॥

२ तदन्वये शुद्धि मति प्रसूतः शुद्धिमत्तर.।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दु. क्षीरनिधाविव ॥ रघु० सर्ग १ श्लोक १२ ॥
तस्य दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना मगध वंशजा।
पत्नी सुदक्षिणेत्यासी दध्वरस्येव दक्षिणा ॥ रघु० सर्ग १ श्लोक ३१ ॥

३. तयोर्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च मागधी।
तौगुरुर्गुरु पत्नी च प्रीत्या प्रति ननन्दतुः ॥ रघु सर्ग १ श्लोक ५७ ॥
न मे ह्रियार्शसति किं चिदीप्सित स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी।
इति स्म पृच्छत्यनु वेल मादृतः प्रिया सखी रुत्तर कोसलेश्वरः ॥
रघु० सर्ग ३ श्लोक ५ ॥
सुख श्रवा मगल तूर्य निस्वनैः प्रमोद नृत्यैः सह वारयोषिताम्।
न केवलं सदमनि मागधीपतेः पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि ॥
रघु० सर्ग ३ श्लोक १९ ॥

सुदक्षिणा का कीर्तन मागधी शब्द से तथा राजा दिलीप का स्मरण मागधीपति विशेषण के साथ किया गया है जिससे प्रतीत होता है कि मगध की राजकुमारी का पति होना, कवि की दृष्टि मे उत्तर कोसल देश के राजा के लिए सम्मान का कारण था। इससे भी कवि ने मगध का ही गौरव प्रकट किया।

(ख) सुमित्रा भी मागधी थी

रघुवंश के तृतीय सर्ग में दिलीप को तथा नवम सर्ग में दशरथ को उत्तर कोसल का राजा कहा गया है। इस प्रदेश की राजधानी अयोध्या थी। दशरथ का विवाह दक्षिण-कोसल की राजकुमारी कौसल्या से हुआ था जैसा कि 'कोसल्या' नाम से ही प्रकट है। दूसरी रानी केकयी केकय देश की राजकुमारी थी इसका साक्ष्य भी रानी का 'केकयी' नाम ही है। किन्तु तीसरी रानी सुमित्रा[१] कहा की राज कन्या थी यह उसके नाम से ज्ञात नही होता। यह भी असम्भव नही कि वह किसी राजवश की न हो और इसी लिए यज्ञ की वह खीर, जो पुत्रेष्टि यज्ञ मे अग्नि पुरुष से प्राप्त हुई थी, राजा दशरथ ने उसे सीधी न दे कर कौसल्या तथा केकयी द्वारा कृपा पूर्वक दिलवाई। सुमित्रा के कुल के विषय मे किसी लिखित प्रमाण के अभाव का लाभ कवि ने उठाया और उसे भी मगध की राजकन्या कह दिया। कवि के समय और भी कई राजवंश फल फूल रहे थे, तो भी उसने उक्त दोनों महारानियों का सम्बन्ध मगध से ही क्यों जोड़ा, यह विचारणीय अवश्य है।

४. (ग) रघु की दिग्विजय में मगधेश्वर की हार नहीं दिखाई गई

रघुवश के चौथे सर्ग में रघु की दिग्विजय का वर्णन किया गया है। वर्षा ऋतु समाप्त होते ही नदियों के जल उतरने लगे, दलदल सूख गए और मार्ग यात्रा के योग्य हो गए। राज्य की आन्तरिक रक्षा का समुचित प्रबन्ध करके रघु ने दिग्विजय के लिए कूच किया। नगर की नारियों ने उस पर मांगलिक लाज की वृष्टि को और उसकी

---

१. तमलभन्त पतिं पति देवताः शिखरिणामिव सागर मापगाः।
मगध कोसल केकयशासिनां दुहितरोऽहितरोपित मार्गणम्॥
रघु० सर्ग० ९ श्लोक ९॥

अर्चिता तस्य कोसल्या प्रिया केकय वंशजा।
अतः संभवितां ताभ्यां सुमित्रा मैच्छ दीश्वरः॥ सर्ग ९ श्लोक ५५
ते बहुज्ञस्यचित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः।
चरोरर्धार्ध भागाभ्यां तामयोजयतामुभे॥ रघु० सर्ग १० श्लोक ५६॥

विजय वाहिनी ने सर्वप्रथम[1] पूर्व की ओर कदम बढ़ाया। कोई भी राजा उसके सामने न टिक सका और वह पूर्वसागर[2] के तट तक जा पहुँचा।

भारत के मानचित्र को देखने से पता चलता है कि अयोध्या से पूर्व की ओर चलने पर रघु की मुठभेड सर्व प्रथम मगधेश्वर से होनी आवश्यक थी। किन्तु कवि ने इस विषय मे, न जाने क्यों, मौनावलम्बन ही उचित समझा। कोई कह सकता है कि कवि के या रघु के समय मगध राज्य की सत्ता न हो या वह इस योग्य न समझा गया हो कि कवि उसका निर्देश करे। किन्तु इसका खण्डन रघुवश के छठे सर्ग मे वर्णित इन्दुमती के स्वयंवर के प्रसंग से हो जाता है जहाँ कवि स्वयवर सभा मे सर्व प्रथम[3] स्थान मगधेश्वर को प्रदान करके इन्दुमती के प्रणाम[4] के बहाने अपनी भक्ति के पुष्प भी उसके चरणों मे चढ़ा देता है।

४. (घ) स्वयम्वर सभा में मगधेश्वर को प्रथम स्थान दिया गया

इसी प्रसग मे कवि ने मगधेश्वर को जो विशेषण दिए है वे भी विशेष अभिप्राय रखते है। उसे सर्व प्रथम शरणागतो का रक्षक[5] कहकर क्या कवि ने उस ही के आश्रय मे अपने निवास की सूचना तो नही दी? कवि के हृदय मे आदर्श राजा का प्रधान गुण प्रजानुरजन[5] है। इसी के कारण उसने राजा के 'राजा' इस शब्द की सार्थकता स्वीकार की है। मगधेश्वर को भी उसने प्रजानुरजन के कारण यशस्वी कहा है। उसने अनेक बडे-बड़े यज्ञ[6] किए हैं और यद्यपि पृथ्वी मे

---

१. स ययौ प्रथमं प्राची तुल्य प्राचीन र्बाहिषा। रघु० सर्ग १, श्लोक २८

२. पौरस्त्यानेवमाक्रामंस्ता स्तान् जनपदान्जयी।
प्राप तालीवनश्याम मुपकण्ठ महोदधे:। रघु० सर्ग १ पद्य ३४।

३. ततो नृपाणा श्रुत वश वृत्ता पुंवत्प्रगल्भा प्रतिहाररक्षी।
प्राक्सन्निकर्षमगधेश्वरस्य नीत्वा कुमारी मवदत्सुनदा॥
रघु० सर्ग ६ श्लोक २०

४. एव तयोक्ते तमवेक्ष्य किंचिद्विस्रसिदूर्वाङ्क मधूकमाला।
ऋजुप्रणाम क्रिययैव तन्वी प्रत्यादिदेशैन मभाषमाणा॥ २६ ॥

५. असौशरण्य: शरणोन्मुखाना मगाधसत्वो मगध प्रतिष्ठ:।
राजा प्रजारजन-लब्धवर्ण: परंतपो नाम यथार्थनामा॥ २१ ॥

७. क्रिया प्रबन्धादय मध्वराणा मजस्र माहूत न सहस्र नेत्र:।
शच्याश्चिर पाण्डु कपोललंबान् मदार शून्या नलकांश्चकार॥
सर्ग ६, श्लोक २३

राजा तो सैकड़ों हैं किन्तु वह राजन्वती[8] केवल मगधेश्वर के कारण ही कहलाती है जैसे कि हजारों तारों के रहते भी केवल चन्द्रमा के कारण ही रात चाँदनी होती है।

रघुवंश से उद्धृत मगध सम्बन्धी उपर्युक्त निर्देशो से सिद्ध है कि किसी मगधेश्वर से कविका विशेष सम्बन्ध अवश्य है और वह उसकी कृपाओं के लिए उसका ऋणी है। कवि के हृदय में उसके प्रति असाधारण श्रद्धा तथा भक्ति विद्यमान है। संभव है कि मगधेश्वर की महारानी भी उसे समय-समय पर दक्षिणाओं और पुरस्कारों से सम्मानित किया करती होंगी। यह सब होने पर भी उस देश तथा वहाँ के निवासियों और उनके जीवन के प्रति वैसा अनुराग या आकर्षण कवि के हृदय मे प्रतीत नही होता जैसा कि उज्जयिनी के वर्णन मे पाया जाता है। राजाश्रित होने के कारण, कवि को कर्त्तव्यवश, मगध के राजदरबार मे तथा कभी-कभी अन्य स्थानों पर भी रहना पड़ता होगा। कुछ आश्चर्य नहीं कि वर्षों रहने के पश्चात् भी उसके जीवन का ताल-मेल वहाँ के जीवन से न बैठा हो।

४. (ङ) मगध से कवि का सम्बन्ध अवश्य है मगर वह उसका जन्म स्थान नहीं है

रावण का वध कर, लंका से अयोध्या को लौटते हुए श्री राम ने अपनी जन्म भूमि तथा उससे लगकर बहती हुई सरयू का अभिनन्दन जिन स्नेहसने शब्दों से किया है वे देखने योग्य है वे कहते है कि इस सरयू का उद्गम उस मानसरोवर से हुआ है जिसके सुनहरे सरोजों के पराग से यक्ष-

४. (च) मगध पक्ष का उपसंहार

---

८. कामंनृपाः संतु सहस्रशोऽन्ये राजन्वती माहुरनेनभूमिम्।
नक्षत्र तारा ग्रह संकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः।

रघु सर्ग ६ श्लोक २२।

१. पयोधरैः पुण्यजनाङ्गनानां निर्विष्ट हेमाम्बुज रेणु यस्याः।
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाऽव्यक्त मुदाहरन्ति ॥
जलानि या तीर निखातयूपा वहत्ययोध्यामनु राजधानीम्।
तुरंगमेधावभृथावतीर्णै रिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि ॥
यां सैकतोत्संग सुखोचिताना प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम्।
सामान्यधात्रीमिवमानसं मे संभावयत्युत्तर कोसलानाम् ॥ रघु० सर्ग १३ श्लोक ६०, ६१, ६२

वनिताओं के स्तन अलंकृत हुआ करते हैं। इसके तट पर मेरे पूर्वजों ने समय-समय पर अनेक यज्ञ किए थे जिनके यूप आज भी वहाँ गड़े हुए हैं। अश्वमेध यज्ञ करके वे इसी के जल में स्नान किया करते थे जिससे वह पवित्र हो गया है। और उन्ही जलों को यह सरयू अयोध्या के लिए ला रही है। उत्तर कोसल के निवासी इसी के बलुए मैदान रूपी गोद में खेल-खेल कर पलते और इसी के जल रूपी दूध का पान कर पुष्टि प्राप्त किया करते है। मैं तो इसे उनके लिए उस धाय के समान मानता हूँ जो अपना दूध पिला कर बच्चे को पाला करती है। स्वर्गवासी पिता दशरथ से बिछुडी हुई मेरी माता कौसल्या की तरह ही यह भी शीतल पवन वाले अपने तरंगरूपी हाथों को फैलाकर दूर से ही, मानो मुझे गले लगा लेना चाहती[1] है। कवि को भी अपनी जन्मभूमि तथा वहाँ की वस्तुओ से ऐसा ही स्नेह अवश्य रहा होगा और उसने, कही न कही उसे प्रकट भी किया होगा। देखना यह है कि वह कौनसा धन्य प्रदेश है जिसे ऐसे श्रेष्ठ कवि को अपनी गोद में खिलाने का अवसर प्राप्त हुआ। अब तक की विवेचना के आधार पर यह बात बलपूर्वक कही जा सकती है कि वह प्रदेश मगध नही हो सकता।

५. उज्जयिनी पक्ष
(क) ऋतु संहार की साक्ष्य

यह जन श्रुति प्रसिद्ध है कि कवि कालिदास विक्रमादित्य की राजसभा के नवरत्नों मे प्रधान थे, और विक्रमादित्य उज्जयिनी के राजा थे। यदि यह जनश्रुति कुछ भी साधार हो तो निश्चय ही कालिदास का भी कुछ सम्बन्ध उज्जयिनी से अवश्य रहा होगा। इसकी पुष्टि कवि के ग्रन्थो के अन्तः साक्ष्य से भी हो जाती है। ऋतु संहार कवि की प्रथम रचना है उसमे वह प्रौढता तथा कल्पना की उड़ान देखने को नही मिलती जो उसके दूसरे काव्यों तथा नाटकों मे पायी जाती है। जान पडता है कि कवि अपने जीवन के नव-प्रभात मे ही जीविका की खोज में जन्म स्थान से निकल पडा और अनेक प्रदेशो का परिभ्रमण करता हुआ उज्जयिनी पहुँच गया। वहाँ उसे अपना मनचाहा राजाश्रय तथा अनुकूल सहृदय समाज मिल गया और उसके दिन सुख से कटने लगे। ऋतु संहार को देखने से प्रतीत होता है कि उसकी रचना करते समय कवि का निवास स्थान

---

१. सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयू वियुक्ता।
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां तरङ्ग हस्तै रूप गूहतीव ॥ रघु० सर्ग १३ श्लोक ६३

मध्य भारत के अन्तर्गत विन्ध्य के आस-पास का ही कोई प्रदेश रहा होगा क्योंकि उसमे ग्रीष्म, वर्षा, शरद आदि ऋतुओं के जिस रूप का वर्णन किया गया है वह मध्य भारत के जलवायु के सर्वथा अनुरूप है। वहाँ ग्रीष्म में उग्र सूर्य की धूप बड़ी तीव्र है। शीतल जलों मे स्नान सुहावने लगने लगते हैं। सायंकाल सब ओर शान्ति फैल[1] जाती है, कामदेव का आवेग विलासिजनों में भी मन्द पड जाता है और रात्रियाँ चन्द्रिका से सुखद हो जाती हैं। परदेश में पड़े जिन प्रेमियों के हृदय अपनी प्रेयसियो की विरहाग्नियो से जल रहे हैं वे सूर्य की प्रचण्ड धूप से झुलम रही और आँधी के भयंकर बवडरों से उड़ी धूल से व्याप्त पृथ्वी की ओर देख नही सकते[2]। भानु के तीव्र आतप से सताए हुए मृगों के तालु घाम के मारे सूख गए हैं। घुटे हुए सुरमे की तरह श्याम आकाश को दूर से वे पानी समझ उसकी ओर भाग[3] जा रहे हैं। वन के एक कोने मे सुलगा दावानल पवन के वेग से भडक कर पहाड़ की घाटियों में फैलता जा रहा है, सूखे हुए बाँसो के जंगलों मे चड़-चड करता हुआ जल रहा है और घास-फूस के ढेरों को पल भर मे भस्म करता हुआ पशु पक्षियों को व्याकुल कर रहा[4] है। फिर वहा कामीजनो का प्यारा पावस किसी घमण्डी राजा की तरह आ पहुँचता है वह पानी बरसाते मेघ रूपी मस्त हाथी पर सवार है, उसकी बिजली रूपी पताकाएँ आकाश में फहरा रही है और बादलों की गड़गडाहट ही उसके नगाडे की ध्वनि है[5]। वर्षा लगते ही वहाँ कदम्बों के वन पुलकित हो जाते हैं, अर्जुन खिलने लगते हैं और केतकी के उपवनों की महक से पवन भर

---

१. प्रचण्ड सूर्यः स्पृहणीय चन्द्रमाः सदावगाह् क्षमवारि सचयः।
दिनान्त रम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाघ कालः समुपागतः प्रिये ॥
ऋतु० १–१ ॥

२. असह्य वातोद्धत रेणुमण्डला प्रचण्ड सूर्यातप तापिता मही।
न शक्यते द्रष्टु मपि प्रवासिभिः प्रिया वियोगानलदग्ध मानसैः ॥ऋतु १-१०॥

३. मृगा. प्रचण्डा तपतापिता भृशं तृषा महत्या परिशुष्कतालवः।
वनान्तरे तोयमिति प्रधाविता निरीक्ष्य भिन्नाजन संनिभं नभः ॥ऋतु १–११।

४. ज्वलति पवन वृद्धः पर्वतानां दरीषु,
स्फुटति पटु निनादः शुष्क वशस्थलीषु।
प्रसरति तृण मध्ये लब्धवृद्धिः क्षणेन,
ग्लपयति मृग वर्गं प्रान्तलग्नो दवाग्निः ॥ ऋतु १–२५ ॥

५. ससीकराम्भोधरमत्त कुंजर स्तडित्पताकोऽशनि शब्द मर्दलः।
समागतो राजवदुद्धतद्युति र्घनागमः कामिजन प्रियः प्रिये ॥ ऋतु २–१ ।

जाता है। महिलाएँ मौलसरी, मालती और जूही की फूल मालाओं से अपने जूड़ों को सँवारने लगती हैं[1]। फिर काश कसुम के शुभ्र वस्त्र धारण किए, विकसित कमल रूपी मुखवाली, शरद ऋतु उस नव वधू के समान वहाँ आ जाती है जिस के चरणों मे रुनझुन बजते नूपुरों की तरह राजहंस मधुर ध्वनि किया करते हैं और धान के पके हुए लहलहाते खेत रूपी जिसकी कमर बल खा जाया करती है[2]। मोर नाचना भूल जाते है और उनकी मस्ती मधुरस्वर वाले हंस ले लेते हैं। पुष्पो की शोभा कदम्ब, कुटज, अर्जुन और साल के वृक्षों[3] से हटकर सप्तवर्णों मे पहुँच जाती है। आकाश बारीक पिसे हुए सुरमे के समान श्याम हो जाता है। पृथ्वी जहाँ तहाँ खिले गुलदुपहरी के फूलों से लाल हो जाती है और पहाड़ों के पठार पके हुए धान के खेतो से लहलहा उठते है यह देखकर किस नवयुवक का हृदय उत्कण्ठित नही हो जाता[4]। स्त्रियाँ अपनी घनी घुघरीली काली लटो को चमेली के फूलों और सुवर्ण कुण्डल वाले कानों को नील कमलों से सजाने[5] लगती है। उन्होने प्रसन्न होकर अपनी छाती पर चन्दन का लेप कर लिया है और उस पर मोतियों के हार धारण कर लिए है। उनकी

१. (क) कदम्ब सर्जार्जुन केतकीवनं विकम्पय स्तत्कुसुमाधिवासित. ।
सशीकरा म्भोधरसंग शीतल· समीरण· कं न करोति सोत्सुकम् ।।
(ख) शिरसि बकुल माला मालतीभि· समेतां,
विकसित नव पुष्पैर्यूथिकाकुडमलैश्च ।
विकच नवकदम्बै· कर्णपूरं वधूना,
रचयति जलदौघ· कान्तवत्कालएषः ।। ऋतु २–१७, २५ ।।

२. काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्ता, सोन्माद हंसरवनूपुर नादरम्या।
आपक्वशालि चिरा नतगात्रयष्टि. प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या ।।
ऋतु ३–१ ।

३. नृत्य प्रयोग रहितान् शिखिनो विहाय हंसानुपैति मदनो मधुर प्रगीतान् ।
मुक्त्वा कदम्बकुटजार्जुनसर्जनीपान् सप्तच्छदानुपगता कुसुमोद्गमश्रीः ।।
३–१३ ।

४. भिन्नांजन प्रचय कान्ति नभो मनोज्ञं बन्धूक पुष्परजसाऽरुणिता च भूमिः ।
वप्राश्च पक्व कलमावृतभूमि भागाः प्रोत्कण्ठयन्ति न मनो भुवि कस्य यूनः ।।
ऋतु ३ श्लोक ५

५. केशान्नितान्त घननील विकुंचिताग्रानापूरयन्ति वनिता नव मालतीभिः ।
कर्णेषु च प्रवर कांचनकुण्डलेषु नीलोत्पलानि विविधानि निवेशयन्ति ।।
ऋतु ३ श्लोक १९ ।।

कमर में करधनी और पैरों में मधुर ध्वनि करने वाले नूपुर[1] बजते हैं। ऋतु-संहार के हेमन्त तथा शिशिर के वर्णनों में भी कुंकुम[2] तथा कालागुरू[3] के लेप, तेल मालिश,[4] मोटे कपड़े,[5] बन्द झरोखे,[6] अंगीठी[7], धूप[8] सेकने, गन्ने[9], चावल[10], गुड़[11] तथा मदिरा[12] की चर्चा बार-बार हुई है। शीतल पवन[13] के चलने, और ओस[14] टपकने का भी जिकर किया गया है किन्तु पहाड़ों के बरफ से ढँक जाने, जगह-जगह पानियों के जम जाने और खेतो में केसर के फलों के खिलने का कहीं नाम मात्र को भी निर्देश नहीं। इसके पश्चात् कवि ने वसन्त का वर्णन करते हुए ऋतु संहार में फिर लिखा है कि स्त्रियों के कानों में लगे पीले कनेर के फूलों, और काली लटों में गुँथे अशोक और चमेली के फलों ने उनके सौन्दर्य को चार चाँद लगा दिए। वापियों के जलों, मणि-निर्मित मेखलाओं, चाँद की चाँदनी, कामिनियों तथा मंजरी के बोझ से झुके आम के वृक्षों को वसन्त ने उनका खोया सौभाग्य पुनः प्रदान कर दिया[15]।

---

१. हारैः स चन्दनरसैः स्तनमण्डलानि श्रोणीतटं सुविपुलं रसना कलापैः। पादाम्बुजानि कलनूपुर शेखरैश्च नार्यः प्रहृष्ट मनसोऽद्यविभूषयन्ति ॥ ऋतु ३ श्लोक २०

२. पयोधरैः कुंकुम राग पिंजरैः। ऋतु ५ श्लोक ९।

३. गात्राणि कालेयक चर्चितानि। ऋतु. ४ श्लोक ५॥

४. अभ्यंजनं विदधति प्रमदाः सुशोभाः ॥ ऋतु ४ श्लोक १८।

५. गुरुणि वासांस्यबलाः सयौवनाः ॥ ऋतु ५ श्लोक २।

६. निरुद्धवातायन मन्दिरोदरं। ऋतु० ५ श्लो० २।

७. हुताशनो ···। ऋतु० ५ का २।

८. भानु मतो गभस्तयः॥ ऋतु ५ श्लोक २॥

९. १० ११. प्रचुरगुड विकारः स्वादु शालीक्षुरम्यः,
प्रबल सुरत केलिर्जात कन्दर्प दर्पः।
प्रियजन रहितानां चित्त संतापहेतुः,
शिशिर समय एषश्रेय से वोस्तु नित्यम् ॥ ऋतु ५ श्लोक १६॥

१२. निशासु हृष्टाः सहकामिभिः स्त्रियः पिबन्ति मद्यं मदनीय मुत्तमम्।
ऋतु० ५ श्लोक १०।

१३. १४. शरदिकुमुद संगा द्वायवो वान्ति शीताः॥ ३ का २१। १६
तृणाग्रलग्नैं स्तुहिनैः पतद्भिः। ऋतु ४ का ७।

१५. वापी जलनां मणि मेखलानां। ६–४।

सुनहरे कमल के समान सुन्दर, और चन्दन-कुंकुम आदि के रस से चित्रित कामिनियों के कपोलों पर आई पसीने की बूंदे नाना प्रकार के रत्नों के बीच जडे हुए मोतियों[१] की तरह दिखने लगी। अशोक वृक्षों मे नीचे से ऊपर तक मूंगे के रंग के लाल-लाल फूल खिल उठे और उन्हे देखकर विरहिणी नव-यौवनाओं के हृदय शोक[२] से व्याकुल होने लगे। वसन्तागमन के कारण जलती हुई आग की लपटो जसे लाल-लाल फूलो के बोझ से झुके जा रहे और हवा से हिलते हुए इन किंशुक वृक्षों के कारण वन-भूमि लाल साडी पहने नई दुलहिन[३] सी दीख रही है। वसन्त का यह चैत्र मास कामिनियो के मन में काम-वेदना उत्पन्न करने के लिए, उन्हे मधु से मदमाते भौरो और कोकिलों की ध्वनि से गूंजते हुए आम तथा कनेर के पुष्परूपी अपने तीक्ष्ण तीरो से बीध[४] रहा है।

५.(ख) ऋतु संहार के साक्ष्य का उपसंहार

ऋतु संहार मे किया गया ६ ऋतुओं का यह वर्णन मध्यभारत तथा विन्ध्य के आसपास के प्रदेशो के ही अनुरूप है, गढ़वाल, कुमाऊं या कश्मीर के अनुरूप नही। कवि ने स्वय भी २, ३ स्थलों[५] पर विन्ध्य का नाम लेकर इसमे सन्देह का अवसर नही रहने दिया। अपना प्रथम नाटक

---

१. सत्र लेखेषु विलासिनीना मुखेषु हेमाम्बुरुहो पमेषु।
रत्नान्तरे मौक्तिक संगरम्य. स्वेदागमो विस्तरतामुपति॥ ऋतु ६ का ८॥

२. आमूलतो विद्रुम राग ताम्रा. सपल्लवाः पुष्पचय दधाना।
कुर्वन्त्यशोका हृदयं सशोक निरीक्ष्यमाणा नव यौवनानाम्। ऋतु ६ १८.

३. आदीप्त वह्नि सदृशैर्मरुतावधूतं सर्वत्रकिंशुक वनै कुसुमावनम्रैः।
सद्यो वसन्त समयेन समाचितेय रक्तांशुका नववधूरिव भाति भूमिः॥
ऋतु ६ का २१।

४. समद मधुकराणा कोकिलाना च नादै, कुसुमित सहकारैः कर्णि कारैश्च रम्यैः
इषुभिरिव सुतीक्ष्णैर्मानसं मानिनीना तुदति कुसुम मासो मन्मथो द्दीपनाय॥
ऋतु ६ का २९॥

५. (क) तृणोत्करैरुद्गत कोमलाकुरैश्चितानि नीलैर्हरिणी मुखक्षतैः।
वनानि वैन्ध्यानि हरन्ति मानसं विभूषितान्युद्गत पल्लवैर्मुखैः॥
ऋतु २ का ८

(ख) जलभर नमितानामाश्रयोस्माकमुच्चै,
र्यमिति जलसेकैस्तोयदा स्तोयनम्राः।
अतिशय परुषाभिर्ग्रीष्म वन्हे शिखाभिः
समुपजनितताप ह्लादयन्तीव विन्ध्यम्॥ ऋतु २ का २८।

मालविकाग्निमित्र भी कवि ने संभवतः उज्जयिनी में रहते समय ही लिखा है उसमें एक स्थान पर विन्ध्य का निर्देश उपमान[1] के रूप में किया गया है। सभी पर्वतों पर बिजली चमकती है और पानी बरसता है पर कवि ने रघुवंश में भी एक स्थान पर उपमान के रूप में विन्ध्य का ही निर्देश किया है। उसने लिखा है कि अभिषेक के समय तीर्थों के जल श्रीराम पर इस प्रकार गिर रहे थे जैसे मेघों के जल विन्ध्य[2] पर गिरा करते हैं। उपमा आदि में कवि प्रायः ऐसे ही पदार्थों को उपमान के रूप मे रक्खा करते है जो प्रसिद्ध होने के साथ कवि के सामने प्रायः रहते हैं या जिनका गहरा प्रभाव उसके हृदय पर पड़ा रहता है।

५. मेघदूत का साक्ष्य (ग) मेघदूत का यक्ष प्रवास के दिन विन्ध्य की घाटियों में काटता है

मध्यभारत तथा विन्ध्य के साथ कवि की जिस घनिष्ठता की झलक ऋतुसंहार में देखी जाती है मेघदूत उसी पर और अधिक प्रकाश डालता है और उसकी पुष्टि करता है। देखिए अलकापुरी का निवासी कोई यक्ष अपनी नव-विवाहिता पत्नी के प्रेम मे पड़कर प्रमाद करने लगा। इस पर कुपित होकर राजराज कुबेर ने उसे एक वर्ष के लिए निर्वासित कर उसकी पत्नी से अलग कर दिया। निर्वासित होकर उसे रामगिरि पर्वत के घनी छाया वाले उन आश्रमो में निवास करना पड़ा जहाँ वनवास के दिनों मे श्रीराम रहे थे और जहाँ के जलों को सीता जी ने अपने स्नान से पवित्र किया था[3]। पत्नी वियोगी उस प्रेमी यक्ष के कुछ महीने तो वहाँ किसी तरह कट गए पर विरह-वेदना से वह ऐसा दुबला-पतला हो गया कि उसका सोने का कड़ा ढीला होकर

---

१. वाष्पा सारा हेमकांची गुणेन श्रोणी बिम्बा दप्युपेक्षाच्युतेन।
चण्डी चण्डं हन्तु मभ्युद्यता मां विद्युद्दाम्ना मेघ राजीव विन्ध्यम्॥
मालविका० ३ अंक २१ श्लोक।

२. सरित्समुद्रान् सरसीश्चगत्वा रक्षः कपीन्द्रै रुप पादितानि।
तस्या पतन्मूर्ध्निजलानि जिष्णो विन्ध्यस्य मेघ प्रभवा इवापः॥
रघु० सर्ग १४ श्लो० ८॥

३. कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकार प्रमत्तः
शापेनास्त गमित महिमा वर्षभोग्येन भर्तुः,
यक्षश्चक्रे जनक तनयास्नान पुण्योदकेषु
स्निग्धच्छाया तरुषुवसतिं रामगिर्याश्रमेषु॥ पूर्व मेघ १॥

एक दिन उसके हाथ से खिसक गया। तभी आषाढ के पहले दिन, उसने पहाड की चोटी पर धीरे-धीरे चले जा रहे एक मेघ को देखा, वह उस मस्त हाथी की तरह था जो अपने दाँतों की चोट से टीलों को ढहाने का खेल कर रहा हो[1]। विरहियों के हृदय मे टीस पैदा करने वाले उसे देखते ही राजराज-कुबेर के अनुचर यक्ष की आंखों में आँसू छलछला आए, उन्हें रोककर वह उसके सामने खडा-खड़ा कुछ देर तक सोचता रहा, क्योंकि मेघदर्शन से तो सब तरह से सुखी जनों का हृदय भी बेचैन हो जाता है, फिर उसके तो कहने ही क्या जो गले लगाने को उत्सुक अपनी प्यारी से बिछुड़ कर बहुत दूर जा पडा है[2]। आषाढ़ तो लग चुका है, अब श्रावण को भी कुछ देर नहीं। वर्षा के उन दिनों अपनी प्राण प्यारी के जीवन की रक्षा के लिए चिंतित हो, उसने अपना कुशल समाचार मेघ द्वारा भेजने का विचार किया और तुरंत के खिले कुटज के फूलों का पूजोपहार निवेदन कर बडे मधुर शब्दो मे उसने मेघ का स्वागत करते हुए कहा[3]—

'जगतप्रसिद्ध पुष्कर और आवर्त्तक नामक मेघो के कुल मे तुम्हारा जन्म हुआ है। मै यह भी जानता हूँ कि तुम मन चाहा रूप धारण कर सकते हो और देवराज इन्द्र की सरकार के तुम प्रमुख अधिकारी हो। मै **विधिवश** अपने बन्धु जनो से बिछुड़ गया हूँ और तुम्हारे सामने हाथ पसार रहा हूँ क्योंकि भले मानस के द्वार से खाली हाथ लौटना भी उतना बुरा नही जितना नीच

---

१. तस्मिन्नद्रौ कति चिदबला विप्रयुक्त, सकामी
नीत्वा मासान् कनकवलय भ्रंशरिक्त प्रकोष्ठः।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघ माश्लिष्ट सानुं
वप्रक्रीडा परिणतगज प्रेक्षणीयददर्श॥ पूर्वमेघ २॥

२. तस्यस्थित्वा कथमपिपुरः कौतुकाधान हेतो-
रन्तर्वाष्पश्चिर मनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
मेघा लोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृत्तिचेत·
कण्ठाश्लेष प्रणयिनिजने किं पुनर्दूर सस्थे॥ पूर्व मेघ ३॥

३. प्रत्यासन्ने नभसि दयिता जीविता लम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशल मयी हारयिष्यन्प्रवृत्तिम्।
स प्रत्यग्रैः कुटज कुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याज हार॥ पूर्वमेघ ४॥

के हाथों इच्छा पूरी हो जाना।[1] हे मेघ, तुम संतप्त प्राणियों के प्राणों को शीतलता प्रदान करते हो। मैं **धनपति** कुबेर जी के क्रोध का पात्र बन कर अपने बन्धु से बिछुड़ गया हूँ । तुम मेरा संदेश उस तक पहुँचा दो । इसके लिए तुम्हे यक्षेश्वरों की नगरी उस अलका तक जाना पड़ेगा जिसके बड़े-बड़े भवन बाहर के उद्यान मे विराजमान शिवजी के सिर की चन्द्रकला के प्रकाश से सदा जगमगाया[2] करते है । पवन के रथ पर सवार होकर, आकाश मार्ग से जाते हुए तुम्हे, जब परदेसियों की प्यारियाँ, आँखों पर बिखरी लटों को हटा कर देखेगी तो उन्हे बड़ा ढारस मिलेगा कि उनके प्यारे अवश्य ही घर लौट रहे होगे क्योकि तुम्हे उमडते देखकर, भला कौन ऐसा निठुर होगा जो **पराधीन न होता हुआ** भी मेरी तरह अपनी विरहिणी प्रेयसी की उपेक्षा कर सके[3] ।

५. (घ) मेघदूत का यक्ष कवि का प्रतिनिधित्व करता है

मेघदूत के इन प्रारभिक पद्यो मे आए राजराज (पूर्व मेघ ३) विधि वश (पूर्व मेघ ६) धनपति क्रोध (पूर्व मेघ ७) पराधीन वृत्ति (पूर्व मेघ ८) तथा उत्तर मेघ के वैरी विधि (उत्तर मेघ ३९) शब्द अवश्य ही विशेष अभिप्राय रखते हैं। प्रसगानुसार राजराज शब्द का अर्थ राजाधिराज अर्थात् कवि का आश्रयदाता सम्राट् भी होना चाहिए। धनपति का अर्थ कुबेर तो है ही किन्तु यहाँ उसका व्यंग्यार्थ वेतन देने वाला भी प्रतीत होता है । पराधीन वृत्ति शब्द से कवि ने राजा की

---

१. जात वंशे भुवनविदिते पुष्करा वर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृति पुरुष कामरूप मघोनः ।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ पूर्वमेघः ६

२. संतप्तानां त्वमसि शरण तत्पयोद प्रियाया:
सन्देशं मे हर धनपति क्रोध विश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणा
वाह्योद्यान स्थित हरशिरश्चन्द्रिका धौतहर्म्या ॥ पूर्वमेघ ७ ॥

३. त्वामारूढंपवन पदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिक वनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ।
कः सन्नद्धे विरह विधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्याद न्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीन वृत्तिः ॥ पूर्वमेघ ८ ॥

इच्छा के सामने अपनी पराधीनता प्रकट की है। विधि के भी दो अर्थ हैं दैव तथा आदेश या राजाज्ञा, (विधिर्विधाने दैवे च—अमर कोष)।

ऋतु संहार मे ऋतुओ तथा प्रकृति का वर्णन प्रायः विषय प्रधान है। उसे पढ़ने से उसके प्रति कवि की भावना का अनुमान कर सकना कठिन है। किन्तु मेघदूत विषयी प्रधान रचना है और वह आद्योपान्त कवि की भावना से ओत प्रोत है। उसमे किसी विशेष घटना का वर्णन नही है। जान पड़ता है कि राजाश्रय प्राप्त करने के पश्चात् कवि को प्राय. अपने जन्म स्थान से दूर तथा अपने बन्ध-बान्धवो से अलग राजधानी मे ही रहना पड़ता होगा। उन दिनों यात्रा के लिए वे सुविधाएँ सर्वसुलभ न थी जो आज रेलगाड़ी, बस और हवाई जहाज आदि के कारण प्राप्त है। अतः प्रवासी जन कभी बहुत भारी आवश्यकता आ पड़ने पर ही यात्रा करते होगे। और

५. (ङ) विन्ध्य के इन प्रदेशों के प्रति कवि की विशेष आत्मीयता है और मेघदूत की रचना के लिए कवि को अपने जीवन की किसी घटना से प्रेरणा मिली

वह यात्रा उन्हे वर्षा प्रारम्भ होने, उससे नदियों के उमड़ने तथा मार्गों के बन्द हो जाने से पूर्व ही करनी पडती[1] होगी। अनुमान है कि किसी ऐसे ही अवसर पर जब कवि घर जाने के लिए अपना मन बना चुका था और उसकी बहुत कुछ तय्यारी भी हो चुकी थी, तभी किसी आकस्मिक राज-कार्य से विवश होकर उसे रुक जाना पड़ा। मगध के पक्ष को पढ़ने से पता चलता है कि तब तक कवि मगधेश्वर के आश्रय में पहुँच चुका था। सभव है कि उन दिनों कवि मगध मे, अथवा उससे भी कुछ दक्षिण को, मध्यभारत के किसी प्रदेश मे प्रवास कर रहा था। तभी अकस्मात् राजाज्ञा ने उसके सुख स्वप्न को भग कर दिया। उसने इस कटु सत्य को तीव्रतापूर्वक अनुभव किया कि आर्थिक तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से राजसेवा कितनी ही स्पृहणीय क्यों न हो, किन्तु है तो परतन्त्रता ही। जञ्जीर सोने की हो या लोहे की—बाँधती दोनो ही हैं। उसने देखा कि समाज उसका कितना भी आदर करे, किन्तु राजाधिराज के लिए तो वह एक तुच्छ[2] अनुचर ही है। और

१. भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धिमामम्बुवाहं
तत्सन्देशैर्हृदय निहितैरागतं त्वत्समीपम्।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलवेणि मोक्षोत्सुकानि॥ उत्तर मेघ ३६॥

२. अन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ। पूर्व मेघ २ श्लोक ३।

धनपति अर्थात् वेतनदाता की अप्रसन्नता उसे उसके पारिवारिक[1] जीवन के सुख से भी वंचित कर सकती है। कवि हृदय की इस अनुभूति की प्रसववेदना ने मेघदूत को जन्म दे दिया।

मेघदूत के पूर्व मेघ में ६३ पद्य है। इन पद्यों मे कुल मिलाकर इकत्तीस[2]

---

१. सन्देश मे हर धनपनि क्रोधविश्लेषितस्य ॥ पूर्व मेघ श्लोक ७ ॥

२. क. रामगिरि आश्रम (पूर्वमेघ श्लो० १) ख. अलका (पूर्वमेघ श्लो० ७) ग. मानस (पूर्वमेघ श्लो० ११) घ. मालक्षेत्र (पूर्वमेघ श्लो० १६) ङ. आम्रकूट पर्वत पर आमो के वन (पूर्वमेघ श्लोक १७) च. विन्ध्य के टीलों मे अनेक पतली पतली धाराओ मे बट कर बहती हुई नर्मदा, वहाँ पर जामुन तथा कदम्बो के वन और उनमे चातक तथा मोर (पूर्वमेघ श्लो० १९, २०, २१, २२) छ. दशार्ण देश, उसमे उपवनो के चारों तरफ केवड़े कीबाड़े और जामुनो का पकना (पूर्वमेघ श्लो० २३) ज. दूर दूर तक सब दिशाओ मे प्रसिद्ध राजधानी विदिशा (पूर्वमेघ श्लो० २४) झ. विदिशा के साथ लगकर बहती वेत्रवती नदी (पूर्वमेघ श्लो० २४) ञ. नीच नामक पहाडी पर कदम्बो का फूलना तथा वहाँ पर कुंजवनो मे विलासी नागरिको ओर वेश्याओ का स्वच्छन्द विहार (पूर्वमेघ श्लो० ३५) ट. पश्चिम की तरफ घूमकर उज्जयिनी को जाना (पूर्वमेघ श्लो० २७) ठ. मार्ग मे निर्विन्ध्या नदी (पूर्वमेघ श्लो० २८) ड. अवन्ति प्रदेश में उज्जयिनी की प्रशंसा (पूर्वमेघ श्लो० ३०) ढ. सिप्रा नदी, उसमे कमलों का विकास, सारसों की क्रीड़ा तथा स्त्रियों का विहार (पूर्वमेघ श्लो० ३१) ण. उज्जयिनी के भवनों तथा महाकाल के मन्दिर का वर्णन (पूर्वमेघ श्लो० ३२–३८ तक) त. गभीरा नदी और उसमें वानीरों का वर्णन तथा वहाँ के प्रति कवि के हृदय का विशेष आकर्षण (पूर्वमेघ श्लो० ४०, ४१) थ. देवगिरि पर्वत पर गूलरों का पकना (पूर्वमेघ श्लोक ४२) थ. देवगिरि मे स्कंद का विशाल मन्दिर (पूर्वमेघ श्लो० ४३, ४४, ४५) द. दशपुर के राजा रन्तिदेव की कीर्ति तुल्य चंबल नदी का वर्णन तथा चंबल की पतली जल धारा पर जल पीते हुए काले मेघ की उपमा मोतियों की लड़ी मे पिरोए बड़े नीलम से देना (पूर्वमेघ श्लोक ४५, ४६) ध. चंबल को पार कर दशपुर की तरफ प्रस्थान (पूर्वमेघ श्लो० ४७) न. ब्रह्मावर्त्त (पूर्वमेघ श्लो० ४८) प. कुरुक्षेत्र (पूर्वमेघ श्लो० ४८) फ. सरस्वती नदी (पूर्वमेघ श्लो० ४९) ब. कनखल

५. (च) विन्ध्य के इस प्रदेश के इंच-इंच से कवि का घनिष्ठ परिचय

विशेष वस्तुओं का वर्णन कवि ने किया है। इन इकत्तीस मे से सत्रह[1] वर्णन मध्य भारत से सम्बन्ध रखते हैं। मध्य भारत के पश्चात् कवि मेघ को एक लम्बी छलांग लगा कर ब्रह्मावर्त्त[2] और कुरुक्षेत्र[3] होते हुए कनखल[4] के मार्ग से अलका[5] की तरफ बढ़ जाने को कहता है। इन सत्रह वस्तुओं मे कुछ ऐसे मैदान[6], टीले[7], नदियाँ[8] तथा प्राकृतिक[9] दृश्य हैं जिन्हे उस प्रदेश मे दीर्घकाल तक रहने वाला व्यक्ति ही

तथा गगा (पूर्वमेघ श्लो० ४९, ५०) भ. हिमाच्छन्न हिमालय के उस प्रदेश का वर्णन जहाँ से गगा निकली है और वहाँ कस्तूरीमृगो का विचरना (पूर्वमेघ श्लो० ५२) म. देवदारु के वन और उनमे दावानल तथा चमरी गाय का वर्णन (पूर्वमेघ श्लो० ५३) य. वहाँ पर्वत पर शिव के चरणो के चिह्न और उनकी पूजा तथा उससे शिव लोक की प्राप्ति (पूर्वमेघ श्लो० ५५) र. वहाँ बांसो के वन और उनमे किन्नरियो द्वारा शिव की त्रिपुर विजय के गीत गाना। ल. उससे उत्तर की तरफ क्रौंचरन्ध्र नामक पहाड़ी दर्रा (पूर्वमेघ श्लो० ५७) व. कैलास (पूर्वमेघ श्लो० ५८, ५९, ६०) श. मानसरोवर और उसमे स्वर्ण कमलो का खिलना (पूर्वमेघ श्लो० ६२) ष. कैलास की गोद मे अलका पुरी और उससे कुछ दूर पर गंगा (पूर्वमेघ श्लो० ६३)।

१. सत्रह वर्णन—क, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, , ड, ढ, ण, त, थ, द, ध=कुल १७।
२. ब्रह्मावर्त्त जनपद मधः (पूर्वमेघ श्लो० ४८
४. वही " " "
५. तस्माद्गच्छे रनुकनखल० (पूर्वमेघ श्लो०५०)
६. तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्त (पूर्वमेघ श्लो० ६३)
७. माल क्षेत्र आदि।
८. टीले—विन्ध्य के पाद (श्लो० १९) नीचै नामक पर्वत, श्लोक २५।
९. निर्विन्ध्य आदि।
१०. जीवन, भौगोलिक विशेषता तथा दृश्यादि (श्लो० १४, १८, १९, २१, २३, २५, २६, २७, २८, २९, ३५, ३६, ३७, ४१, ४२, ४६ इत्यादि)

जान सकता है। पूर्वमेघ के चौदहवे पद्य में उस स्थान पर सरसनिचुलों[1] का वर्णन, अठारहवें पद्य में पके हुए पीले आमो से लदे हुए आम्र कूट पर्वत की चोटी पर बैठे श्याम मेघ के कारण उसकी तुलना पृथिवी रूपिणी नायिका के स्तन से करना,[2] उन्नीसवे पद्य मे विन्ध्य की घाटियो में पतली पतली अनेक धाराओं में बिखरी हुई नर्मदा को काले हाथी के शरीर पर की गई चित्रकारी की श्वेत रेखाओं[3] से उपमा देना, नीच नामक पर्वत पर पहुँच कर वहाँ के निवासी नागरिकों का स्वच्छन्द[4] विहार और २७ से २८ तक बारह पद्यों मे उज्जयिनी का भावनापूर्ण वर्णन, मार्ग टेढ़ा[5] होने पर भी वहां अवश्य जाने तथा वहा की अनुराग रसिक नगर नारियो के चंचल कटाक्षो के अवलोकन से अपने नेत्रों को सफल करने का आग्रह नि.सन्दिग्ध रूप से यह प्रकट कर रहे हैं कि सामान्य परिचय के अतिरिक्त कुछ अन्य सम्बन्ध भी, कवि का उन प्रदेशों से अवश्य है। कवि की अ.तरात्मा वहां पहुँचने और वहा के जीवन का आनन्द लाभ करने के लिए तड़पती प्रतीत होती है। मगधेश्वर के प्रति कृतज्ञता तथा

---

१. स्थानादस्मात् सरस निचुला दुत्पतोदङ्मुख खं
   दिङ्नागाना पथि परिहरन् स्थूल हस्तावलेपान् ॥ पूर्वमेघ श्लो० १७ ॥

२. छन्नोपान्त परिणतफलद्योतिमि काननाम्रै
   स्त्वय्यारूढे शिखर मचलः स्निग्ध वेणी सवर्णे।
   नूनं यास्यत्यमर मिथुन प्रेक्षणीयामवस्था
   मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेष विस्तार पाण्डुः ॥

३. स्थित्वा तस्मिन् वनचर वधू भुक्तकुंजे मुहूर्त्तं
   तोयोत्सर्गं द्रुततर गतिस्तत्परं वर्त्मतीर्णः।
   रेवा द्रक्ष्यस्युपल विषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
   भक्तिच्छेदैरिव विरचिता भूतिमङ्गे गजस्य ॥

४. नीचै राख्य गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो
   स्त्वत्संपर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।
   यः पण्य स्त्री रतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा
   मुद्दामनि प्रथयति शिला वेश्मभिर्यौवनानि ॥ २५

५. वक्रः पन्थाः यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
   सौधोत्सगप्रणय विमुखो मास्मभूरुज्जयिन्याः।
   विद्युद्दामस्फुरित चकितैस्तत्रपौरागनाना
   लोला पाङ्गैर्यदिन रमसे लोचनैर्वंचितोसि ॥२७॥

भक्ति का उद्रेक रहते भी मगध देश तथा उसके नागरिक जीवन के प्रति जो उदासीनता कवि ने प्रकट की है उसका अणुमात्र भी आभास उज्जयिनी वर्णन मे नही पाया जाता। वह उसे स्वर्ग के उस खण्ड के समान[1] मानता है जिसे पुण्यात्माजन स्वर्ग में अपने अधिकाश पुण्यो का उपभोग पूरा हो चुकने पर, अपने शेष पुण्यों के भोग के लिए मर्त्यलोक मे साथ ही उतार लाए हैं। कमलो के पराग से सुरभित वहा का प्रात. कालिक पवन भी उसे उस चोंचले बाज प्रेमी सा प्रतीत होता है जो विहार के अनन्तर अपनी प्यारी की थकान को दूर कर देता[2] है। वह मेघ को उज्जयिनी के धनी मानी पुरुषो के उन भवनों की शोभा को देखने और वहा विश्राम करने के लिए प्रेरित करता है जो फूलों की सुगन्ध से महक रहे है और जिनके फर्श उनमे रहने वाली लावण्यवती ललनाओ के चरणों की महावर की छाप से अकित[3] हो रहे है। उसे यह भी याद आता है कि किस प्रकार उन महलो के झरोखों से अगुरुका वह धूंआ निकला करता है जिससे वे ललनाए अपने केशो को सुगन्धित बनाया करती है और किस प्रकार गन्धवती नदी में नहा रही युवतियों के स्तनों से छुटे चंदन कुकुम आदि की गन्ध वाले जलकणो से शीतल पवनों से वहा के उद्यान झूमा[4]

---

१. प्राप्यावन्तीनु दयनकथा कोविद ग्राम वृद्धान्
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पूरी श्री विशाला विशालाम् ॥
स्वल्पीभूते सुचरित फले स्वर्गिणागा गताना
शेषै पुण्यैर्हृतमिव दिव.कान्तिमत् खण्डमेकम् ॥ ३० ॥

२. दीर्घीकुर्वन् पटुमदकल कूजित सारसाना
प्रत्युषेषु स्फुटित कमलामोद मैत्री कषायः।
पण्य स्त्रीणा हरति सुरत ग्लानि मगानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतमइव प्रार्थना चाटुकारः ॥ पू० मे० ३१ ॥

३. जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केश सस्कार धूपै
बन्धुप्रीत्या भवन शिखिभिर्दत्त- नृत्योपहारः॥
हर्म्येष्वस्या कुसुम सुरभिष्वध्वखेदंनयेथा
लक्ष्मी पश्यंल्ललितवनिता पादरागांकितेषु ॥ ३२ ॥

४ भर्तु.कण्ठच्छविरितिगणैः सादर वीक्ष्यमाणः
पुण्य यायास्त्रि भुवन गुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।
धूतोद्यानं कुवलय रजो गन्धिभिर्गन्धवत्या
स्तोयक्रीडानिरत युवति-स्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥ ३३ ॥

करते हैं। ताल के अनुसार पड रहे पैरों की ठुमक के साथ रुनझुन करती करधनियो वाली, हीरे जड़ी चूड़ियों की झाई से जगमगाती मूठ वाले चामरों के साथ महाकाल के मन्दिर में नाच रही और वर्षा की सुखद फुहारों के पड़ने से प्रसन्न वेश्याओं[४] के तीखे श्याम कटाक्षों की मोहिनी का प्रभाव अब भी उसके हृदय पर अधिकार जमाए है। अँधेरी रातों में अपने प्रियतमों से मिलने के लिए चली जा रही अभिसारिकाएं[५] बिजली की कौंध और वर्षाओं की धाराओं से व्याकुल न हो जाए यह चिन्ता भी उसके सवेदन शील हृदय को सता रही है पर वहा उसे अपने सहचर के विरह से विकल चकवी[६] की तरह व्याकुल और पाले से कुमलाई कमलिनी जैसी म्लानमुखी, बिखरे बालो वाली, और देहली पर प्रतिदिन एक एक फूल रख कर उन द्वारा विरह की अवधि[१] के दिन गिनती किसी पति-परायणा पत्नी के दर्शन की चाह नहो है।

पूर्व मेघ के इन प्रकरणों के पढ़ने से जान पडता है कि कवि ने मध्यभारत के इन प्रदेशों मे दीर्घ काल तक निवास किया था। कहा खडे होकर, किस नदी, किस पर्वत, किस स्थान का दृश्य, किस ऋतु मे कैसा दिखता है—इसका स्पष्ट तथा जीता जागता यथार्थ चित्र उसके हृदय पर अङ्कित था और कवि

५ (छ) श्री हरप्रसाद शास्त्री का भ्रम और उसका कारण

---

४. पादन्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीला वधूतै
रत्नच्छाया खचित वलिभि श्चामरै. क्लान्तहस्ता: ।
वेश्यास्त्वत्तो नखपद सुखान् प्राप्यवर्षाग्रबिन्दू
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकर श्रेणि दीर्घान् कटाक्षान्॥ ३५ ॥

५. गच्छन्तीना रमण वसतिं योषिता तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यै स्तमोभिः ।
सौदामिन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वी
तोयोत्सर्गस्तनित विमुखो मास्मभूर्विक्लवास्ताः ॥ ३७ ॥

६. तांजानीयाः परिमित कथा जीवित मे द्वितीय
दूरी भूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवकाम् ।
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सुबालां
जातांमन्ये शिशिर मथिता पद्मिनी वान्यरूपाम् ॥ उ० मे० २० ॥

१. शेषान् मासान् विरह दिवसस्थापितस्या वधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुविगणनया देहली दत्त पुष्पैः ।
मत्सगंवा हृदय निहितारभ मास्वादयन्ती,
प्रायेणैते रमण विरहेष्वगनाना विनोदाः । उत्तर मेघ २४॥

कल्पना ने उसके साथ मिलकर, इस मेघदूत मे मणिकांचन संयोग कर दिया है। किसी यात्रा के अवसर किए सामान्य अवलोकन के आधार पर या केवल कल्पनाके बल से ऐसा सूक्ष्म तथा भावुकतापूर्ण वर्णन सभव नही। यह भी प्रतीत होता है कि कवि ने अपने जीवन वसन्त के उन स्वर्णिम क्षणो को वहा व्यतीत किया है जिनमे हृदय में जगमगाने वाले प्रेमप्रदीप की प्रभा से संसार के सभी पदार्थ कमनीय हो उठा करते है। तभी तो ग्रीष्म ऋतु मे, नटतरुओ के सूखकर झड़ गए पीले पत्तो से ढकी क्षीण निर्विन्ध्या[१] नदी भी उसे प्रियतम के विरह मे सूखी जा रही और पीली पड़ गई प्रेमिका सी प्रतीत हुई। यही कारण है कि म० म० श्री हरप्रसाद[२] शास्त्री जैसे विचार शील विद्वान् भी इन प्रदेशो को ही कवि की जन्म भूमि समझ बैठे।

मेघ के मार्ग का ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उसके द्वारा कवि ने क्रमश अपने तात्कालिक निवास स्थान, जवानी के दिनो के अस्थायी निवास के कुछ प्रिय प्रदेश तथा अपने अभिजन अर्थात् जन्मस्थान का केवल दिशा निर्देश किया है। रामगिरि से कवि का अभिप्राय केवल इतना ही है कि उक्त खण्ड काव्य के निर्माण काल मे वह किसी ऐसे प्रदेश मे रह रहा था जिसकी स्थिति मध्य भारत मे वर्तमान रामटेक के आसपास थी। इसी प्रकार अलका से भी उसका अभिप्राय यही है कि उसकी पत्नी उत्तर भारत के किसी ऐसे स्थान पर निवास करती है जहां गंगा तथा हिमालय की स्थिति साथ साथ है और जहा मेघ ने सदेश पहुँचाना है। मेघ की यात्रा का उपक्रम मध्य भारत से हो कर उसका उपसहार गढ़वाल मे होता है, अतः

५. (ज) उज्जयिनी कवि का जन्म स्थान नहीं

१. वेणी भूतप्रतनु सलिलाऽसावतीतस्यसिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुह तरु भ्रशिभिर्जीर्णपर्णैः।
सौभाग्य ते सुभग विरहावस्थया व्यंजयन्ती,
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः॥ पूर्व मेघ २९॥

२. "कालिदास को पश्चिम मालवा के छोटे छोटे नदी नालों एवं अन्य बातो काअत्यन्तसूक्ष्म तथा साक्षात् परिचय है, जिससे प्रतीत होता है कि वह मन्दसौर (दशपुर) या उसके किसी अत्यन्त निकट वर्ती प्रदेश का निवासी था और इसीलिए उज्जैन के राज दरबार और वहाँ के नागरिक जीवन मे उनका घुल मिल जाना स्वाभाविक था (अर्ली हिस्ट्री आफ़ इण्डिया वि० स्मिथ पृष्ठ ३२१)

उज्जयिनी उसका लक्ष्य नहीं है। उसका महत्त्व तो, भिक्षा मांग कर लौटते हुए गाय को भी साथ हाँक लाने के बराबर है। इस प्रकार मेघदूत के अन्तः साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि कवि की जन्म भूमि उज्जयिनी नहीं है।

उज्जयिनी के क्रीडा-काननों, गिप्रातटों, गृहमन्दिरों, प्रेमी-प्रेमिकाओं, उत्सव आमोदों के प्रति कवि के हृदय में असाधारण आकर्षण है, उनसे वंचित हो जाने की कसक है, उनमे पुनः पहुँचने की साध है इसका कोई विशेष कारण होना ही चाहिए। किन्तु इनके आधार पर उसे कवि की जन्मभूमि नही ठहराया जा सकता। इस पक्ष को स्वीकार किया जा सकता था यदि उसका इससे भी अधिक अनुराग तथा भक्ति हम गगायुक्त हिमालय के प्रदेश के प्रति न देखते।

६. (क) श्री प्रो० लक्ष्मीधर कल्ला का कश्मीर पक्ष—मेघ उत्तर दिशा को जाता है और कश्मीर भारत के उत्तर में है अतः कवि का जन्म स्थान कश्मीर है।

कतिपय विद्वानों ने मेघ दूत में कवि के द्वारा मेघ को उत्तर[1] दिशा में जाने की प्रेरणा से यह अनुमान कर लिया कि उस उत्तर दिशा का लक्ष्य कश्मीर है और इस लिए कश्मीर ही कालिदास का जन्म स्थान होना चाहिए। इस पक्ष के प्रधान पोषक दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय लक्ष्मीधर[2] कल्ला थे जिनकी युक्तियों की संक्षिप्त समीक्षा आगे की जा रही है। इस कश्मीर-पक्ष के सम्बन्ध मे कीथ[3] महोदय अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास के प्राक्कथन में लिखते हैं "..... उसके निवास को कश्मीर में नियत करने का, और उसकी कविता में वही के प्रत्यभिज्ञा शास्त्र के—ईश्वरीय प्रेम की

---

१. वक्रः पन्थाः यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सग प्रणय विमुखो मास्म भूरुज्जयिन्या ॥ पूर्वमेघ श्लो० २७ ॥

२. (देहली युनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स नं० १) बर्थ प्लेस आफ कालिदास, बाई लक्ष्मीधर कल्ला सन् १९२६।

३. डाक्टर मंगल देव जी कृत, कीथका हिस्टरी आफ संस्कृत लिटरेचर का हिन्दी अनुवाद (सन् १९६०) पृ० ६, ७।

एकता के-सिद्धान्त की छाया को ढूढने का यत्न करना केवल खींचातानी है। क्योंकि ऐसी स्थिति मे तो कालिदास (उस) ध्वनि के सिद्धहस्त लेखक बनजाएगे, जिस ध्वनि का काव्य के आत्मा के रूप मे, आगे चलकर कश्मीर में निश्चित रूप से विकास ध्वनिकार ने किया था । ऐसा सुझाव भी दिया गया है कि कालिदास ने पद्म पुराण का उपयोग किया था, परन्तु यह ग्राह्य नही। वाकाटको के साथ उसके संभावित सम्बन्ध के विषय मे अनुसन्धान किया गया है, और क्षेमेन्द्र द्वारा किसी 'कुन्तलेश्वर' दौत्य' को उसकी कृति बतलाने का भी उपयोग किया गया है, परन्तु यह सब कोरी स्थापना (कल्पना) ही है।"[1]

६ (ख) प्रो कल्ला की स्थापना

प्रोफेसर कल्ला ने अपने निबन्ध के पृष्ठ ६ पर लिखा है 'यदि हम अपने कवि (कालिदास) के जन्मस्थान के विषय मे, उसके ग्रन्थो के आधार पर अनुसन्धान करना चाहे और देखे कि कवि ने, उनमें, इसके सम्बन्ध मे कुछ नही लिखा है तो हमारे पास, इसके सिवाय कोई उपाय नही रह जाता कि हम उसके ग्रन्थो से यह पता लगाने का यत्न करे कि (भारत के) किस प्रदेश का ज्ञान उसे अन्यों की अपेक्षा अत्यधिक है, और ऐसा करते समय, भ्रम से बचने के लिए, हमे यह भी देखना होगा कि कवि का किया हुआ उस स्थान का वर्णन केवल किसी दर्शक के किए हुए वर्णन सा है या उस स्थान के प्रति विशेष लगाव रखने वाले वहा के निवासी के किये वर्णन सा। इतना ही नही, हमें यह भी जानने का यत्न करना होगा कि वह कौन सा विशेष स्थान है जिसके (मधुर) सम्बन्धों ने उसके हृदय को सर्वाधिक प्रभावित किया है और वे अनायास ही, बारबार, उसकी अन्तश्चक्षु के सम्मुख उपस्थित हो जाते है, तथा वह कही भी चला जाए, उसका हृदय अनजाने हो रह रह कर, वहा की (मधुर) स्मृतियो मे निमग्न हो जाया करता है। किन्तु, इतना ही पर्याप्त नहीं। हमे यह भी जानना चाहिए कि किस प्रदेश के दृश्यो और कहा के व्यवहारों का उसे ठीक ठीक तथा घनिष्ठ परिचय है, और कहा के रीति-रिवाजों, परम्पराओं तथा इसी प्रकार की अन्य विशेष बातों का वर्णन उसने अपने स्थायी अनुभवों के आधार पर किया है न कि पढे, सुने या अपने ही अस्थायी निवास के अनुभवों के आधार पर, और उसके धर्म

---

१. विक्रम स्मृति ग्रन्थ मे पृ० ३०७ से ३४० तक श्री चन्द्रबलि पाण्डेय का लेख 'कालिदास का दूत कर्म।'

तथा विश्वास भी उस प्रदेश के धर्म तथा विश्वास के साथ मेल खाते हैं या नहीं क्योंकि मनुष्य साधारणतया उसी धर्म का अनयायी बन जाया करता है जो उसके परिवार या प्रदेश में चल रहा होता है। अन्त में हमें यह भी न भूलना चाहिए कि कवि ने अपने ग्रन्थों में कोई ऐसे निर्देश तो नहीं रख दिए जो उसके जन्म स्थान की ओर सकेत करते हों क्योंकि कालिदास, विशेष रूपसे, अपने काव्य में व्यंग्यार्थ की ध्वनि के लिए प्रसिद्ध हैं। कालिदास के जन्मस्थान के प्रश्न पर इस दृष्टि से विचार करने पर हमारा ध्यान निम्नलिखित पाच बातों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट होता है :

I कालिदास के ग्रन्थों मे हिमालय के, विशेषतया कश्मीर के उत्तरीय प्रदेश के भौतिक तथा प्राकृतिक दृश्यों का अधिक विस्तार के साथ तथा सूक्ष्म वर्णन मिलता है।

II. कश्मीर के प्रति उसने विशेष अनुराग तथा भक्ति का प्रदर्शन किया है।

III. उसके ग्रन्थों मे कश्मीर के दृश्यों, स्थानों तथा लोक गाथाओं का वर्णन या निर्देश अन-जाने तथा अनायास हुआ है।

IV. कश्मीर के व्यवहारों, सामाजिक रीति रिवाजों और ऐसी ही अनेक बातों का वर्णन कवि ने किया है जिनका ज्ञान साधारणतया किसी कश्मीरी को ही संभव है ।

V. कालिदास शैवधर्म के उस प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सिद्धान्तों का अनुयायी था जो उस समय केवल कश्मीर मे प्रचलित था ।

VI. मेघदूत मे ऐसे अनेक सकेत पाये जाते हैं जो कश्मीर को ही कालिदास की जन्म भूमि सिद्ध करते हैं, इत्यादि।

प्रो० कल्ला के पक्ष की समीक्षा

प्रोफेसर कल्ला महोदय के दिखाए प्रकार से यदि कालिदास के ग्रंथों का अनुशीलन किया जाए तो उससे उनकी अपनी स्थापना ही सबसे पहले ढहती दीखती है। क. कालिदास के काव्यों व नाटकों में कश्मीर का नाम तक कहीं देखने को नहीं मिलता, उसके प्रति विशेष अनुराग व भक्ति की तो बात

अभिज्ञान शाकुन्तल का आधार महाभारत है न कि नीलमत पुराण।

ही क्या ? ख. रघुवंश या शाकुन्तल के जिन स्थानों— नदियों, पर्वतों, तीर्थों आदि की स्थिति वे नील मत पुराण आदि के आधार पर कश्मीर में सिद्ध करना चाहते हैं वे वस्तुत: वहाँ के नही हो सकते। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल का आधार महाभारत के आदिपर्व का शाकुन्तलोपाख्यान है। और महाभारत में वर्णित मालिनी गंगा, शचीतीर्थ शक्रावतार, कण्वाश्रम आदि स्थान गढवाल तथा उसके आस पास ही माने जाने उचित है। रघुवश का वशिष्ठाश्रम तथा गौरीगुरु की (हिमालय) घाटी भी कही अयोध्या के आस पास ही अधिक जँचते है न कि कश्मीर में। मेघदूत की अलका कश्मीर मे नही किन्तु गढवाल मे ही हो सकती है क्योकि वहाँ जाने के लिए मेघ को कुरुक्षेत्र से कनखल होते हुए गंगा द्वार का मार्ग लेना पडा है। यह कनखल भी कश्मीर का नहीं किन्तु हरद्वार का निकटवर्ती वर्त्तमान कनखल ही होना चाहिए। कुमारसभव के औषधिप्रस्थ, गौरीशिखर तथा कोशी प्रपात की खोज भी गढवाल के पर्वतों में ही करनी उचित है न कि कश्मीर मे। रघुवश के १३ वें सर्ग मे सरयू का वर्णन करते हुए कवि ने उसका निर्गमनस्थान ब्रह्मसर बतलाया है। कल्ला महोदय ने इसका सम्बन्ध भी नीलमत पुराण के ब्रह्मसर से जोड़ दिया। अयोध्या के साथ बहने वाली सरयू का निर्गम हिमालय के ब्रह्मसर से हुआ है इसमें सन्देह नही किन्तु उस ब्रह्मसर की स्थिति कश्मीर मे केन्द्रित नही की जा सकती। इसी प्रकार मेघदूतकी मालवान्तर्गत सिन्धु तथा रघुवश की सिंधु की एकता कश्मीर की किसी सिन्धु से करना भी खीचातानी ही समझनी चाहिए। विवाह के अवसर पर अक्षत चावलो के तिलक तथा नाटक देखने की प्रथा को भी कश्मीर के क्षेत्र मे ही सीमित कर देना उचित नही। उनके निबंध मे इन तथा इसी प्रकार के और और भौगोलिक स्थानों के सम्बन्ध में उनकी युक्तियों के जानने के लिए देखिए। बर्थ प्लेस आफ कालिदास—देहली यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स नं १ के पृ० १२, १६, १७, १८, १९)

रीति रिवाज

कालिदास के नाटकों तथा काव्यो में जिन व्यवहारों तथा रीतिरिवाजों के वर्णन द्वारा श्री कल्ला महोदय ने उसे कश्मीरी पण्डित सिद्ध करने का यत्न किया है वे प्राय: सारे भारत में उसी प्रकार पाये जाते हैं अतः उनसे कुछ परिणाम नही निकाला जा सकता। (बर्थ प्लेस आफ कालिदास पृ० १९–२२ तक)

उदाहरणार्थ--रघुवश में, (क) स्वयंवर के दृश्य में, इन्दुमती ने वरमाला अज के गले में स्वयं न पहना कर अपनी धात्री सुनन्दा द्वारा पहनवाई है। किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि वह अवसर विवाह का न था। अतः स्वयंवर के व्यवहार के आधार पर विवाह के सम्बन्ध में कोई परिणाम निकाल लेना ठीक नहीं। (ख) विवाह के पश्चात् पलगचार आदि की विधि के अवसर पर प्रायः सर्वत्र ही वरवधू के मस्तक पर अक्षततिलक लगाया जाता है केवल कश्मीर मे ही नही। (ग) विवाह के पश्चात् नाटक देखने का वर्णन कालिदास ने कुमारसंभव में तो किया है रघुवश मे नही। अतः यह नही कहा जा सकता कि क्योंकि उसने शिव पार्वती के नाटक देखने का वर्णन किया है अत वह कश्मीर का ही था। कवि का तात्पर्य उक्त वर्णन से सभवत यह है कि शिव स्वयं महानट हैं और नाट्य के परमाचार्य है, अतः उनके विवाह के अवसर पर इन्द्रादि ने अप्सराओं द्वारा नृत्य का आयोजन किया। विक्रमोर्वशीय नाटक मे भी कवि ने मुनिभरत द्वारा अप्सराओं से खेले गए नाटक का वर्णन किया है। तथा मालविकाग्निमित्र मे कहा है कि नाट्य तो देवताओं के नेत्रों को तर्पण करने वाला एक यज्ञ है। स्वय शिवजी ने पार्वती जी से विवाह करके उस सयुक्त नृत्य का आविष्कार किया था जिसके ताण्डव तथा लास्य—ये दो भेद प्रसिद्ध है इत्यादि। घ मृत्यु के बाद दसवे दिन शुद्धि का वर्णन तो मनु आदि के धर्म-शास्त्र में ही प्रतिपादित है। (मनु स्मृति अध्याय ५ का श्लोक ५९)। १. मनुस्मृति मे मछुवे को निषाद कहा है (मनु अध्याय १० का श्लो० ८ तथा ४८) और उसका जन्म ब्राह्मण पिता से शूद्रस्त्री मे माना है। इस प्रकार के सभी सकरो से उत्पन्न होने वालो को धर्मशास्त्रों मे घृणा की दृष्टि से देखा गया है। अत शाकुन्तल मे आए मछुवे के दृश्य से हम कोई निर्णायक परिणाम नही निकाल सकते।

केसर तथा चावल आदि की युक्ति पर विचार

कल्ला महोदय ने केसर, धान तथा सूर्य की पूजा के आधार पर भी कालिदास को कश्मीर निवासी सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसमे सन्देह नही कि कवि को केसर की खेती का पता है। रघुवंश के चतुर्थ सर्ग के ६७वे पद्य मे सिन्धु या वक्षु के तट पर रघु की सेना के घोडों द्वारा केसर के खेतों मे लोटने का वर्णन है। केसर कश्मीर में उत्पन्न होता है यह तथ्य उसके पर्यायवाचक शब्द 'कश्मीरज' से ही प्रकट है। कालिदास यह जानता था सारे भारत में, तथा उससे बाहर भी, क्या विशेष पदार्थ कहा

उत्पन्न होता है। किन्तु इस ज्ञान के आधार पर उसे उन सब प्रदेशो का निवासी नही ठहराया जा सकता। कवि ने अपनी रचनाओ मे, जगह जगह, अंगराग आदि के लिए केसर का वर्णन किया है, खेतो मे खिल रहे केसर के फूल का नही।" कालिदास को केसर पर वह गर्व नही जो कश्मीरी कवि बिह्लण[1] को है जिसने यहाँ तक लिख दिया कि 'मै तो समझता हूँ कि कवि-प्रतिभा के विलास भी केसर सरीखे ही होते है क्योकि मैने उसे—(केसर को) शारदा (अर्थात् सरस्वती) के देश कश्मीर से अन्यत्र तथा कवि प्रतिभा के विलास को शारदाऽऽदेश (सरस्वती की कृपा) के बिना अकुरित होते नही देखा। मेघदूत मे यक्ष के भवन में जिस केसर[2] का वर्णन हुआ है वह मौलसरी है न कि कुकुम, क्योकि कवि ने उसे नायिका की मुखमदिरा[3] का लोभी कहा है। केसर के पौधे का मुखमदिरा से कोई सम्बन्ध नही है।

कालिदास ने ऋतु सहार मे जगह जगह तथा अन्यत्र भी धान के खेतों का वर्णन किया है। किन्तु धान तो सारे ही भारत मे उत्पन्न होता है, अतः प्रो० कल्ला को धान की खेती के साथ केसर की खेती को मिलाना पडा। उनकी युक्ति है कि कवि का निवास स्थान वह प्रदेश होना चाहिए जहाँ ये दोनो वस्तुएँ उत्पन्न होती है और ऐसा प्रदेश कश्मीर ही है अत कालिदास वही

---

१ सहोदरा कुकुम केसराणा भवन्ति नून कविता विलासा'।
न शारदा देश मपास्य दृष्टस्तेषातदन्यत्र मया प्ररोहः॥
विक्रमाक देव चरित, सर्ग १ का श्लोक २१

२. रक्ताशोकश्चल किसलयः केसरश्चात्र कान्त'
प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवी मण्डपस्य।

३ एक. सख्यास्तव सह मया वाम पादाभिलाषी,
काक्षत्यन्यो वदनमदिरा दोहदच्छद्मनाऽस्या.॥

उत्तरमेघ: १८ श्लोक

पादा हत प्रमदया विकसत्यशोक: शोक जहाति बकुलो मुखसीधुसिक्तः।
आलोकित' कुरबक कु ते विकास मालोडित स्तिलक उत्कलिको विभाति॥
कुमार सभव के सर्ग ३ के २६वे श्लोक की टीका मे मल्लिनाथ।

का निवासी था। इसका उत्तर पहले ही दिया जा चुका है कि कालिदास ने केवल एक स्थान पर केसर की खेती का वर्णन किया है और वह भी भारत से बाहर।

सूर्य की पूजा

कालिदास ने विक्रमोर्वशीय मे सूर्य पूजा[1] का विशेष वर्णन किया है तथा सूर्य की पूजा विशेषतया कश्मीर[2] में ही होती थी। यह युक्ति भी प्रो० कल्ला महोदय के पक्ष की पुष्टि नही कर सकती। ऋग्वेद[3] के अनेक सूक्तो में सूर्य की स्तुति की गई है। वह प्रसिद्ध गायत्री[4] मन्त्र, जिसका जप प्रत्येक द्विजाति हिन्दू के लिए आवश्यक है तथा जो चारों वेदों के मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है सूर्य देवता[5] का ही है। उपनिषदों में सूर्य की वन्दना के मन्त्र हैं। सिकन्दर के आक्रमण के दिनों में भी भारत मे सूर्य की उपासना का पता चलता है। उसके साथ आए ग्रीक लेखकों ने उसकी विजय यात्रा के जो विवरण दिए है उनके अनुसार उसने पजाब मे व्यास नदी के तटपर अपने स्मारक के रूप में जो बारह सुविशाल वेदियाँ बनवाई थी, उन पर ग्रीक देवी देवताओं के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन के साथ साथ भारतीय देवता सूर्य[6] का भी अभिनन्दन किया गया था। सर्य देवता की पूजा भारत के विस्तृत भू-भाग पर प्रचलित थी, केवल कश्मीर में ही सीमित न थी। कई ऐतिहासिक मानते हैं कि मगध के

---

१. (क) विक्रमोर्वशीय प्रथम अक मे प्रस्तावना के तुरन्त पश्चात् राजा की उक्ति। कालिदास ग्रन्थावलि पृ० १०७

(ख) विक्रमोर्वशीय तृतीय अक मे १७ व श्लोक के आगे चित्रलेखा की उक्ति। (कालिदास ग्रन्थावली पृ० १४६)

२. बर्थ प्लेस आफ कालिदास—लक्ष्मीधर कल्ला पृ० २५।

३ ऋग्वेद प्रथम मण्डल, सूक्त ५० तथा ११५

४. भूर्भुव. स्वः तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
ऋ० मण्डल ३, सूक्त ६२ मन्त्र १०

५. मैकडानल कृत हिस्टरी आफ सस्कृत लिटरेचर तृतीय संस्करण पृ० ७९। तथा प्रश्नोपनिषद् प्रथम वल्ली ८ मन्त्र।

६. वि० स्मिथ अर्ली हिस्टरी आफ इण्डिया पृ० ८१

शासक शुंग राजा भी सूर्य के उपासक थे। इसलिए कल्ला महोदय को स्वयं ही अपनी इस युक्ति पर सन्तोष न हुआ और उन्होंने प्रश्न उठाया कि सूर्य के मन्दिर तो मुल्तान तथा दशपुर (वर्तमान मालवा मे मन्दसौर) में भी थे तब केवल सूर्यपूजा के आधार पर कवि को कश्मीरी ही क्यों माना जाए। और उन्होंने इसका समाधान किया कि सूर्य पूजा के साथ-साथ कालिदास का परिचय कश्यप ऋषि से भी है और कश्यप ऋषि का आश्रम कश्मीर में ही था अतः इन दोनों बातो को मिला कर देखने से कालिदास कश्मीर निवासी सिद्ध होते हैं। दुःख का विषय है कि कल्ला महोदय ने यहा भी यह स्वत: सिद्ध मान लिया कि अभिज्ञान शाकुन्तल मे वर्णित कश्यप-आश्रम कश्मीर मे ही था और फिर इस स्वीकृति के आधार पर अपनी कल्पना को खडा कर लिया।

प्रत्यभिज्ञा शास्त्र तथा शिवपूजा की युक्ति पर विचार

ऊपर लिखा जा चुका है कि कालिदास के ग्रन्थों में प्रत्यभिज्ञा शास्त्र के सिद्धान्तो की छाया ढूँढ़ना केवल खींचातानी है। इसके साथ ही उसके शैव होने के कारण भी उसे कश्मीर निवासी नहीं ठहराया जा सकता। शिव तथा विष्णु की पूजा बहुत प्राचीन काल से भारत मे दूर-दूर तक फैल चुकी थी। मैकडानल महोदय ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास के पृ० १८१ पंक्ति ३२, मे लिखा है कि यजुर्वेद का रुद्र बहुत पहले से पौराणिक शिव का रूप ग्रहण करने लगा था। महाभारत[2] मे अनेक स्थानो पर शिव की पूजा का निर्देश है। कृष्ण के रूप मे विष्णु की पूजा तो महाभारत मे सर्वत्र व्याप्त है ही।

प्रोफेसर कल्ला महोदय का अन्तिम आधार मेघदूत रह जाता है। उस पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नही। क्योंकि

---

१. प्राचीन भारत—सी० एम० श्री निवासाचारी तथा एम० ऐस० रामस्वामी आयंगर, अनुवादक गोरखनाथ चौबे, प्रकाशक रामनारायण लाल। द्वितीय संस्करण पृ० १२५।

२. (क) महा भारत वनपर्व, १०८ अध्याय २४ श्लोक
(ख) ,, ,, ,, ३६ अध्याय ३१ श्लोक
(ग) ,, ,, ,, द्रोणपर्व ८० अध्याय

मेघदूत पर विचार

उसमें ऐसी साक्षी का प्रायः सर्वथा अभाव है जिससे उनके पक्ष का समर्थन हो सके। प्रो० कल्ला कहते हैं कि इस खण्ड काव्य मे कवि ने यक्ष को निमित्त बनाकर अपनी उन भावनाओं और अनुभूतियों को व्यक्त किया है जिन्हे वह सीधे कह कर प्रकट नहीं कर चाहता था। यदि करता तो उसमें वह सजीवता न आती जो अब आ गई है क्योंकि वह राज सेवक था और सेवक को यह अधिकार नही कि वह अपने उचित असतोष या रोष को भी खुलकर प्रकट कर सके। इसलिए उसने जो कुछ कहा वह यक्ष की आड़ में होकर कहा। कल्ला महोदय ने यह प्रश्न भी उठाया है कि कवि ने यहाँ अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए यक्ष को ही क्यो चुना। जबकि साहित्य में यक्ष प्रशंसा के पात्र नही है। इस प्रश्न का समाधान करते हुए वे कहते हैं कि कश्मीर मे यह प्रसिद्धि है कि वहाँ पहले यक्षों का निवास था। अनेक परिवार वहाँ अब भी यच्छ (यक्ष) कहलाते हैं क्योकि कश्मीरी जनता यक्ष को देवयोनि अर्थात् अतिमानव या प्रेत आदि नहीं मानती। वहाँ के किस्से कहानियो में यच्छबाबा जिस प्रकार ओतप्रोत है वैसा भारत मे अन्यत्र नही। मेघदूत का यक्ष भी हमारी तरह का मानव मात्र है। कश्मीरी साहित्य मे किसी यक्ष के दण्डित होकर निर्वासित होने का भी उल्लेख है। इस पृष्ठ भूमि को देखते हुए यह बिलकुल स्वाभाविक प्रतीत होता है कि कालिदास को कश्मीर निवासी ही स्वीकार किया जाए।

किन्तु मेघदूत को ध्यानपूर्वक पढने से उसके नायक यक्ष की वह पृष्ठ-भूमि नही प्रतीत होती, जो प्रो० कल्ला महोदय ने दिखाई है। कवि ने दो तीन स्थानों पर धनपति, धनद, राजराज आदि शब्दों से उस व्यक्ति का निर्देश किया है जिसके कारण उसे अपनी पत्नी से मिलन का अवसर नहीं मिल सका तथा उसने अपना निर्देश 'गुह्यक' शब्द से किया। इसका अर्थ है गोपनीय व्यक्तित्व वाला (गुह्यः=गोपनीयः, कः=आत्मा-स्वरूपं यस्य। 'को ब्रह्मण्यात्मनि रवौ मयूरेऽग्नौ यमेऽनिले।' हेमचन्द्रः) पहले लिखा जा चुका है कि धनपति, तथा राजराज और धनद आदि शब्दों से कवि संभवतः यही सूचित करना चाहता है कि उसका आश्रयदाता धनवान् है राजाधिराज है तथा उसे धन अर्थात् वेतन और पुरस्कार आदि देता है। स्वामी कितना ही सहृदय, न्याय परायण तथा उदार हो तो भी शासक के लिए ऐसे अवसर तो प्रायः आते ही रहते हैं जब कर्त्तव्यवश उसे ऐसे आदेश भी देने पड़ते हैं जो उसके

अधिकारियो तथा सेवको को रुचिकर नही होते । अभिमानी तथा उद्धत राजाओ का तो कहना ही क्या, और वह भी राजतन्त्र शासन में । कवि ने ऋतु संहार मे वर्षाकाल को राजा की तरह उद्धत कहा है जबकि राजा का वहाँ कोई प्रसग न था । जान पड़ता है कि कवि ने राजा तथा उद्धतपन को प्रायः साथ-साथ देखा होगा अत. वर्षाकाल के उद्धतपन को देखते ही राजा का विचार भी उसकी कल्पना मे उपस्थित हो गया ।

मेघदूत का मेघ कश्मीर की तरफ नहीं और जाता अलका के वृक्ष तथा ऋतु भी कश्मीर के अनु-रूप नहीं ।

कालिदास मेघ को कुरुक्षेत्र से पजाब होकर कश्मीर जाने को नहीं प्रत्युत कनखल होते हुए, मार्ग मे हिमालय की शिला पर अकित सिद्धगणो से अर्चित शिव जी के चरण चिह्न (हरकी पैडी) की भक्तिपूर्वक परिक्रमा करके अलका की ओर और बढ़ जाने को कहता है। पूर्व मेघ का ६१वा पद्य भी ध्यान देने योग्य है । उसमे कवि मेघ से कहता है 'हे सखे, उस अलका नगरी मे मनचली सुर ललनाएँ अपनी चूडियों मे जडे हीरो की नोक से छेद-छेद कर तुम्हे उस धारा गृह सा बना लेगी जिसमे चारो तरफ़ फुहारे छूटा करते है और वहाँ बैठकर वे गर्मी मे भी ठड का आनन्द लूटेगी । यदि वे तुम्हे किसी तरह भी छोड़ने को तय्यार न हो तो तुम अचानक भयानक गर्जना करके उन्हे डरा देना ।' यद्यपि गर्मियो मे कश्मीर बहुत ठढा नही रहता, तो भी कोई सहृदय कवि उन दिनो वहाँ शीतल धारा गृहो मे चल रहे फुआरो में भीगने की कल्पना को सुखद नही समझ सकता । उत्तर मेघ के पन्द्रहवे तथा सोलहवे श्लोको मे यक्ष अपने भवन का वर्णन करता हुआ कहता है कि उसके आगन मे रक्ताशोक तथा मौलसरी के दो वृक्ष पास-पास खड़े हैं, उन पर मरकत मणियो से जडी सोने की एक छड़ लगी है, जिस पर रात के समय पालतू मोर बसेरा लिया करता है। रक्ताशोक और मौलसरी के वृक्ष कश्मीर मे स्वभाव से नही उत्पन्न होते और जाड़ों की रातो मे उन पर पालतू मोर का रहना भी सभव नही । उत्तर मेघ के अन्त मे, ४७वें पद्य मे, यक्ष अपनी पत्नी को भेजे सन्देश की समाप्ति पर कहता है 'हे प्यारी, अगली कार्तिक शुक्ला एकादशी को जब भगवान् विष्णु निद्रा त्याग कर शेष शय्या से उठेंगे तभी हमारा शाप भी समाप्त हो जाएगा। इसलिए इन बचे हुए चार

महीनों को तुम आँख मूँद कर किसी प्रकार निकाल दो। फिर तो, हम दोनो विछोह के इन दिनों में पूरी न होने से बढी हुई मन की साध को, शरद के दिनों की सुहावनी चाँदनी रातों मे पूरी कर लेगे।' इससे सिद्ध होता है कि यक्ष की पत्नी किसी ऐसे प्रदेश मे रहती है जहाँ शरद की चाँदनी रातें भी अत्यन्त सुखद होती हैं। और वह स्थान कश्मीर नही हो सकता। प्रो० कल्ला महोदय स्वय ही नील मत पुराण का साक्ष्य उद्धृत करते हुए लिखते है--'कश्मीर का निर्माण हो चुकने पर कश्यप ऋषि वही रहने लगे। नागो तथा देवताओ को भी रहने के लिए वहाँ अलग-अलग स्थान मिल गए। ऋषि ने जब मानवों को भी वहाँ बसाना चाहा तो नागो ने इस पर आपत्ति की। कुपित होकर ऋषि ने उन्हे शाप दे दिया कि तुम्हे पिशाचो के साथ निवास करना पडेगा। तब नील नामक नाग ने प्रार्थना कर ऋषि को कुछ शान्त किया और उन्होंने शाप की कठोरता को कम करते हुए कहा कि देश मे (कश्मीर मे) पिशाचो का निवास सदा न होकर, वर्ष मे केवल ६ महीने आश्विन से चैत्र तक हुआ करेगा।' सब जानते है कि कश्मीर मे अक्तूबर मे ही काफ़ी ठड पड़ने लगती है फिर कार्त्तिक के अन्त अर्थात् नवम्बर का तो कहना ही क्या। इसलिए मेघदूत कश्मीर पक्ष की पुष्टि नहीं करता।

कालिदास के किसी भी ग्रन्थ में कश्मीर के दृश्य तथा वृक्ष वनस्पतियों का वर्णन नहीं, कश्मीर से उसका परिचय अवश्य है किन्तु उससे कुछ सिद्ध नहीं होता

ऋतु सहार मे विभिन्न ऋतुओ, उनमे विलासी जनों के विनोदों तथा वृक्ष वनस्पति आदि का जो चित्र खीचा गया है, कुमार सभव मे हिमालय के जिस भूभाग का वर्णन है, अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और रघुवश मे भी जिस हिमालय का निर्देश है उसका कश्मीर के साथ मेल नही बैठता। कश्मीर के हिमपात, हिमाच्छादित पर्वत मालाएँ, अगीठियाँ, बड़ी-बड़ी झीलें, चश्मे, चनार तथा सफेदा के वृक्ष, और अगूर आदि फलो का वर्णन कालिदास के काव्यों तथा नाटको मे नही मिलता। अतः उसका जन्म स्थान कश्मीर सिद्ध नहीं होता।

७. बगाल पक्ष

कवि ने धान के खेतो, उनमे कमलों के खिलने तथा धान के पौधों को एक स्थान से उखाड़ कर दूसरे स्थान पर लगाने की प्रक्रिया का निर्देश रघुवश में किया है। इस पर कुछ विद्वानों का विचार है कि कालिदास अवश्य ही बंगाली रहे होंगे

क्योंकि उपर्युक्त दृश्य प्रायः बंगाल में ही देखने को मिलता है। इसका उत्तर रघुवंश के उसी प्रकरण में रक्खा हुआ है और उसके लिये कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं। कई बार लिखा जा चुका है कि कालिदास दूर-दूर तक बहुत घूमे थे और उनकी निरीक्षण शक्ति भी असाधारण थी। उनकी सर्व-ग्राहिणी दृष्टि से क्या बच सका होगा—नहीं कहा जा सकता। यह स्पष्ट है कि उन्होंने अपने अत्यन्त संक्षिप्त वर्णनों में भी वहाँ-वहाँ के प्रतिनिधि विशेष पदार्थों तथा व्यवहारों का चित्र खींच दिया है। बंगाल भी उनकी उस दृष्टि से कैसे बच सकता था? यदि कालिदास बंगाली होते तो वे यह कभी न लिखते कि नेता रघु ने उन बंगाली प्रतिद्वन्द्वियों को चुटकियों में ही उखाड़ फेंका जो अपनी जल सेना सजा कर उससे लोहा लेने आए थे और गंगा सागर के प्रदेश में उसने अपनी विजय के झण्डे गाड़ दिये। पराजय स्वीकार कर लेने पर रघु ने उन्हें फिर से अपने राज्य में इस प्रकार प्रतिष्ठित कर दिया जैसे किसान धान के पौधों को एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगा देता है और वे राजा भी धान के उन पौधों की तरह ही उपहार रूपी फल भार लिए हुए आकर उसके चरण कमलों में झुक गए। रघु की इस दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में कवि ने मगध का पराजय नहीं दिखाया, वह चाहता तो बंगाल को भी इससे बचा सकता था क्योंकि रघु का दिग्विजय कोई ऐतिहासिक तथ्य तो था नहीं। फिर कालिदास तो केवल काव्य लिख रहा था न कि इतिहास। ऐसी निर्ममता से बंगाल के पराजय की घोषणा से सिद्ध होता है कि कवि के हृदय में उसके प्रति ममता नहीं है।

गंगा तथा हिमालय का प्रदेश—कालिदास के ग्रन्थों को पढ़ने से यदि किसी स्थान के प्रति उसका सर्वतोऽधिक प्रेम प्रकट होता है तो वह गंगायुक्त हिमालय का प्रदेश ही है। इस प्रदेश के प्रति कवि के हृदय में आदर है, भक्ति है, वहाँ निवास के दिनों का उल्लास तथा वहाँ से प्रवास के समय की उत्कण्ठा है। विरहावस्था में, आषाढ़ के प्रथम दिन[1] पूर्व की ओर से उठकर, गिरिशिखरों पर वप्रक्रीड़ा करते गज के समान सुन्दर मेघ को देखकर कण्ठाश्लेष-प्रणयिजन

मेघदूत का साक्ष्य

१. आषाढस्य प्रथम दिवसे मेघमाश्लिष्ट सानुम्,
वप्रक्रीड़ा परिणत गज प्रेक्षणीय ददर्श ॥ पूर्वमेघ, श्लोक २ ॥

की स्मृति से कवि व्याकुल हो जाता है। उसके नेत्रों में आँसू छलछला आते[1] हैं हृदय हाथ से निकल जाता है, विवेक जाता रहता है, वह चेतनाचेतन[2] का भी विचार न करता हुआ, उसे ही अपना सन्देशहर बना लेता है। वह उसे मार्ग में आम्रकूट, दशार्ण की राजधानी विदिशा, उज्जयिनी, देवगिरि, दशपुर, ब्रह्मावर्त्त और कुरुक्षेत्र की सैर कराता हुआ कनखल पहुँचा देता है। कनखल वह स्थान है जहाँ पर्वतों से निकलकर गंगा सर्वप्रथम समभूतल पर प्रवाहित होती है। कनखल[3] से आगे वह अपने दूत को गंगोत्तरी और हंसद्वार से गुजरकर कैलाश जाने के लिए कहता है, जिसके अक मे प्रणयी के बाहुपाश में आबद्ध कामिनी की तरह अलकापुरी[4] सुशोभित है। इस अलका का वर्णन करते समय कवि के हृदय की समस्त भावना उसकी लेखनी के अग्रभाग पर केन्द्रित हो गई प्रतीत होती है। मेघ को देखकर उसकी सौदामिनी सी कामिनियो, उसके इन्द्रधनुष से चित्रपटों, उसके गम्भीर घोषसी ध्वनिवाले मृदगो से युक्त अलका के मणिजटित प्रासाद उसकी आँखों के आगे नाचने लगते[5] हैं। उपवन कुसुमों के आभूषणों से अलकृत ललनाओं की नर्म-क्रीडाएँ, उसे विह्वल कर डालती है। मधुर कण्ठ से कुबेर का गुणगान करते हुए किन्नरों से युक्त वैभ्राज नामक वाह्योद्यान में

---

१. मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेष प्रणयिनि जने किं पुन दूरसंस्थे ॥ पूर्वमेघ, श्लोक ३ ॥

२. कामार्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतना चेतनेषु । पूर्वमेघ । श्लोक ५ ॥

३. तस्माद्गच्छेरनु कनखल शैलराजावतीर्णाम्,
जह्नोः कन्या सगरतनयस्वर्ग सोपान पक्तिम् ॥ पूर्वमेघ, श्लोक ५० ॥

४. तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्रस्त गंगादुकूला-
न त्व दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ॥
पूर्वमेघ, श्लोक ६३ ॥

५. विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापंसचित्राः,
सगीताय प्रहृतमुरजाः स्निग्धगंभीर घोषम् ॥
अन्तः स्तोयं मणिमय भुवस्तुंगमभ्रलिहाग्राः
प्रासादास्त्वा तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥
उत्तरमेघ, श्लोक १ ॥

वार्तालाप करते हुवे युगलप्रेमियों को देख वह मन मसोस कर रह जाता[1] है।

वहाँ उमका अपना घर, उसके आगे मन्दारतरु[2], स्वर्ण कमलो से अलंकृत वापिका[3], क्रीडाशैल, बकुल तथा अशोक-वृक्ष[4] और इन सबके बीच मे कलामात्र शेष हिमाशु लेखासी उसकी विरहक्षामा[5] पत्नी--इन सबको स्मरण कर उसके नेत्रो से अश्रुधारा बहने लगती है।

८. (ख) कुमार संभव का साक्ष्य

किन्तु यही पर हम एक अत्यावश्यक बात कह देना चाहते हैं, वह यह कि पुराणो मे वर्णित इस अलका से कवि का कोई सम्बन्ध नही है; जिस प्रकार मेघदूत के प्रारम्भ मे कवि ने यक्ष को रामगिरि पर्वत पर खड़ा करके अपने प्रवास स्थान की केवल दिशा ही दिखाई है, वास्तविक स्थान नही, उसी प्रकार यहाँ भी उसने अपने अभिजन को दिशा ही बतलाई है,

---

१. अक्षय्यान्तर्भवन निधय प्रत्यह रक्तकण्ठ
रुद्गायद्भिर्धनपति यश किन्नरै. यत्र सार्धम्,
वैभ्राजाख्य विबुधनिता वारमुख्यासहाया,
बद्धालापा बहिरुपवन कामिनो निर्विशन्ति ॥

उत्तरमेघ, श्लोक ८ ॥

२ यस्योपान्ते कृतक तनय कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दार वृक्ष ॥

उत्तरमेघ, श्लोक १२ ॥

३. वापीचास्मिन् मरकत शिला बद्धसोपान मार्गा
हैमैश्छन्ना विकच कमलै स्निग्ध वैदूर्य नालै ॥

उत्तरमेघ, श्लोक १३ ॥

४. रक्ताशोकश्चल किसलय: केसरश्चात्र कान्त:
प्रत्यासन्नौ कुरबकवृते माधवी मण्डपस्य ॥

उत्तरमेघ, श्लोक १५ ॥

५. अधिक्षामा विरहशयने सनिषण्णैकपार्श्वाम्
प्राचीमूले तनुमिवकलामात्र शेषा हिमाशो. । उत्तरमेघ, श्लोक २६ ॥

उसका सीधा निर्देश नहीं किया । कवि का यह आशय सर्वथा नहीं कि वह अलका का ही निवासी है। उसके पास के ही किसी अन्य स्थान को वह उससे भी अधिक मानता है, यह कुमारसम्भव के चतुर्थ सर्ग से स्पष्ट हो जाता है । वहाँ लि ा है कि वे सप्तर्षि-गण कैलाशवासी शिव के स्थान से चलकर, हिमालय के नगर "औषधिप्रस्थ" में पहुँचे । वह नगर सब सम्पत्तियों के आगार अलका से भी बढ़कर था। मालूम होता था कि स्वर्ग की उत्कृष्टतम विभूतियों को लाकर उनसे उसकी रचना की गई थी[1]। पाठक इन शब्दों को ध्यान से पढकर इससे कवि के उज्जयिनी वर्णन को मिलावें तो स्पष्ट विदित हो जावेगा कि उसका अनुराग इस स्थान के प्रति कहीं अधिक है। उज्जयिनी स्वर्ग के समान या उससे कुछ कम ही थी जबकि यह नगर उससे कहीं बढ़कर है।

इस नगर के चारों ओर खाई थी, जिसमें गंगा की धारा प्रवाहित हो रही थी। इसके साल अर्थात् चारों ओर की दीवारें मणिमाणिक्यों से अलकृत तथा इसके वप्र अर्थात् दीवारों के स्थूल आधार नाना प्रकार की औषधियों की आभा से जगमगा रहे थे[2]। इसके आगे कवि ने प्राय उन्हीं शब्दों तथा उन्हीं भावों में

---

१. ते चाकाशमसिश्यामसुत्पत्य परमर्षय ।
आसेदुरोषधीप्रस्थं मनसा समरहस ॥ कुमार सर्ग ६—३७॥
अलकामति वाह्येव वसतिं वसु सपदाम् ।
स्वर्गाभिष्यन्द वमनं कृत्वेवोपनिवेशितम् ॥ कुमार०, सर्ग ६—३७ ॥

२. गगा स्रोत परिक्षिप्तं वप्रान्तर्ज्वलितौषधि ।
बृहन्मणिशिलासाल गुप्ता वपि मनोहरम् ॥ कुमार०, सर्ग ६—३८ ॥

३ (।) यत्र कल्पद्रुमैरेव विलोलविटपांशुकै. ।
गृह यंत्रपताकाश्रीरपौरादर निर्मिता ॥ कुमार०, सर्ग ६—४१ ॥
(ख) लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्य च यस्याम्
एक. सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥ उत्तरमेघ ।
श्लोक ११ ॥

(॥) (क) शिखरासक्तमेघानां व्यज्यन्ते यत्र वेश्मनाम् ।
अनुगर्जितसंदिग्धा करणैर्मुरजस्वनाः ॥ कुमार०, सर्ग ६—४०॥
(ख) विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः,
सगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ।

उसका वर्णन किया है जिनमे उसने मेघदूत की अलकापुरी का किया था। दोनों वर्णन तुलना के योग्य है। नीचे हम पाठकों के मनोरजनार्थ दोनों को उद्धृत किए देते हैं[1]। सबसे अन्त में कवि कहता है कि "हिमालय के इस कमनीय नगर को देखकर वे दिव्य मुनि भी चकित हो गए और सोचने लगे कि इतने पुण्यों से केवल स्वर्ग ही प्राप्त करके वे तो ठगे गए[1]।" यह है कवि के भावावेश की पराकाष्ठा। इसे ही किसी ने दूसरे शब्दों में कहा है—"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" ध्यान रहे कि हिमालय का यह नगर देव-लोक मे नही, इसी भूमि पर है। हिमालय कहता है—"हे मुनिगण! आपने मेरे गृह मे पधारकर मेरा गौरव बढाया है, जिससे मैं अपने आपको मूर्ख होता हुए भी बुद्धिमान्सा, लोहमय होता हुआ भी हिरण्मयसा और भूमिस्थ होता हुआ भी स्वर्गरूढसा समझने लगा हूँ।"[2] हे मुनियो! अपने शिर पर धारण किये हुए गगा के जलप्रपात तथा आपके चरणोदक से मैं पवित्र हुआ। अबसे सब प्राणी आत्मशुद्धि के लिए मेरा आश्रय लिया करेंगे क्योंकि जिस स्थान को आप जैसे सज्जन अपनी पदधूलि से पवित्र कर देते हैं वही तीर्थ हो जाता है। आपके चरणस्पर्श से मेरा यह स्थावररूप तथा आपके

अन्तस्तोय मणिमयभुवस्तुंगमभ्र लिहाग्रा',
प्रासादास्त्वां तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै. ॥ उत्तर मेघ।
श्लोक १ ॥

(iii) (क) भ्रू भेदिभिः सकम्पोष्ठै र्ललितांगुलितर्जनैः,
यत्र कोपै: कृताः स्त्रीणा माप्रसादार्थिनः प्रिया. ॥
कुमार, सर्ग ६—४५ ॥

(ख) सभ्रूभंगप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघैः,
तस्यारभश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ॥ उत्तर मेघ।
श्लोक १ ॥

१ अथ ते मुनयो दिव्याः प्रेक्ष्य हैमवतं पुरम्,
स्वर्गाभिसंधि सुकृत वञ्चनामिव मेनिरे ॥ कुमार०, सर्ग ६—४७ ॥

२. मूढ बुद्धमिवात्मान हैमीभूतमिवायसम् ।
भूमेर्दिवमिवारूढ मन्ये भवदनुग्रहात् ।
अद्य प्रभृति भूतानामधिगम्योऽस्मि शुद्धये ।
यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धितीर्थं प्रचक्षते ॥ कुमार०, सर्ग ६—५५-५६ ॥

आज्ञानुग्रह से मेरा यह चेतनरूप–दोनों ही आज कृतकृत्य हुए[१]। मुझसे आपकी क्या सेवा बन सकती है ? मैं आपके लिए क्या नहीं कर सकता ? मालूम होता है कि मुझे केवल कृतार्थ करने के लिए ही आपने यहाँ पधारने का कष्ट किया है[२]। स्वयं मैं, मेरी धर्मपत्नी, कुल की सर्वस्व यह मेरी कन्या–सब आपकी सेवा मे उपस्थित हैं। बस आज्ञा कीजिए[३]। इसके उत्तर में ऋषि बोले—तुमने जो कुछ कहा सब ठीक है; तुम्हे यही शोभा देता है। तुम्हारा हृदय भी तुम्हारे शिखरों के समान ही समुन्नत है। तुम्हारे स्थावररूप को शास्त्रों में साक्षात् विष्णु कहा गया है। यह ठीक ही है, क्योंकि तुमने चराचर को धारण किया हुआ है[४]। अपने विमल विस्तार से निरन्तर फैलने वाली, समुद्र तक व्याप्त तुम्हारी कीर्तियाँ तथा नदियाँ लोक को पवित्र कर रही है। परमेष्ठी महादेव का तथा तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर त्रिलोक पावनी गंगा अपने आपको धन्य मानती है[५]। यज्ञ भाग को प्राप्त करनेवाले देवगणों मे तुम्हारी भी गणना होती है, तुम्हारे

---

१. अवैमि पूतमात्मानं द्वयेनैव द्विजोत्तमाः।
मूर्ध्नि गंगाप्रपातेन धौत पादाम्भसाच वः॥" कुमार०, सर्ग ६—५७॥
जगमं प्रैष्यभावे वः स्थावरं चरणांकितम्।
विभक्तानुग्रह मन्ये द्विरूपमपि मे वपुः॥ कुमार०, सर्ग ६—५८॥

२. कर्तव्य वोन पश्यामि स्याच्चेत् किं नोपपद्यते।
मन्ये मत्पावनायैव प्रस्थान भवताभिह। कुमार०, सर्ग ६—६१॥

३. एते वयममीदारा कन्येयं कुलजीवितम्।
ब्रूत येनात्र वः कार्यमनास्था बाह्यवस्तुषु॥ कुमार०, सर्ग ६—६३॥

४. उपपन्नमिद सर्वमतः परमपि त्वयि।
मनसः शिखराणाञ्च सदृशी ते समुन्नतिः॥ कुमार, सर्ग ६—६६॥
स्थाने त्वाँ स्थावरात्मानं विष्णुमाहुस्तथा हि ते।
चराचराणां भूताना कुक्षिराधारतां गतः॥ कुमार०, सर्ग ६—६७॥

५. अच्छिन्नामलसन्तानाः समुद्रोर्म्यनिवारिताः।
पुनन्ति लोकान् पुण्यत्वात् कीर्तयः सरितश्चते॥ कुमार०, सर्ग ६—६९।
यथैव श्लाघ्यते गंगा पादेन परमेष्ठिनः।
प्रभवेण द्वितीयेन तथैवोच्छिरसा त्वया॥ कुमार०, सर्ग ६—७०

समक्ष सुवर्णमय शिखरोंवाला सुमेरु मन्दप्रभ है[1]। अस्तु हम जिस कार्य के लिए आये हैं वह वस्तुतः तुम्हारा ही है, किन्तु उसे तुम्हारे सम्मुख उपस्थित करने का श्रेय हमें अवश्य मिलेगा[2]। तदन्तर ऋषियों ने अनेक प्रकार से शिव का परिचय देते हुए कहा कि वे शम्भु स्वयं तुम्हारी कन्या का पाणिग्रहण करना चाहते है और इसी प्रार्थना के लिए उन्होंने हमें तुम्हारी सेवा मे भेजा है। अतः जिस प्रकार वाणी अर्थ से युक्त है तुम भी पार्वती को शिव से युक्त करदो। अपनी पुत्री योग्य वर को देकर माता पिता निश्चिन्त हो जाते हैं[3]। तुम्हारी कन्या के बड़े भाग्य है कि सभी देवता शिव से दूसरे नम्बर पर इसके ही चरणों मे प्रणाम किया करेंगे। तुम्हारी कन्या वधू, देनेवाले तुम, माँगनेवाले हम और वर स्वयं शम्भु—तुम्हारे कुल का इससे अधिक गौरव क्या हो सकता है[4]? जो किसी की स्तुति नहीं करता किन्तु जिसकी स्तुति सब करते हैं, जो किसी की वन्दना नहीं करता, किन्तु जिसकी वन्दना सब करते है उससे अपनी कन्या का सम्बन्ध कर तुम विश्वगुरु के भी गुरु बन जाओ[5]।

इस प्रकार हमने देख लिया कि कवि के लिए हिमालय केवल मिट्टी और पत्थरों का ढेर नहीं, वह देवतात्मा भी है—देवता रूप[6] है। वह उसकी

---

१ यज्ञभागभुजा मध्ये पदमातस्थुषा त्वया,
उच्चैर्हिरण्मयं शृंग सुमेरोर्वितथी कृतम् ॥ कुमार०, सर्ग ६—७२ ॥

२ तदागमनकार्यं नः शृणु कार्यं तवैव तत् ।
श्रेयसामुपदेशात्तु वयमत्रांशभागिनः ॥ कुमार०, सर्ग ६—७४ ॥

३ स ते दुहितरं साक्षात् साक्षी विश्वस्य कर्मणाम् ।
वृणुते वरदः शम्भुरस्मत् सङ्क्रामितैः पदैः ॥ कुमार०, सर्ग ६—७८ ॥
तदर्थमिव भारत्या सुतया योक्तुमर्हसि,
अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता ॥ कुमार०, सर्ग ६—७९ ॥

४ प्रणम्य शितिकण्ठाय विबुधास्तदनन्तरम् ।
चरणौ रञ्जयन्त्वस्याश्चूडामणि मरीचिभि ॥ कुमार०, सर्ग ६—८१ ॥
उमा वधूर्भवान् दाता याचितार इमे वयम्,
वरः शम्भुरलह्येष त्वत् कुलोद्भूतये विधिः ॥ कुमार०, सर्ग ६—८२ ॥

५ अस्तोतु स्तूयमानस्य वन्द्यस्यानन्यवन्दिनः
सुतासम्बन्ध विधिना भव विश्वगुरोर्गुरुः ॥ कुमार०, सर्ग ६—८३ ॥

६. अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः
॥ कुमार०, सर्ग १, श्लोक १ ॥

आराध्या देवी भगवती पार्वती का ही गुरु अर्थात् पिता नहीं किन्तु विश्वभर के गुरु स्वय शिव का भी गुरु है। त्रैलोक्य नमस्कृत महादेव उसे सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं। वे उसे अपना श्वसुर बनाकर अपने आपको कृतार्थ मानते[1] है। इस प्रसंग मे इसी सर्ग का चतुर्थ पद्य भी विचारणीय प्रतीत होता है उसमें कवि ने शिव के मुख से कहलवाया है कि उन्नत, मर्यादाशील, तथा जगत् की धुरी को धारण करने वाले उस हिमालय से सम्बन्ध जुड़ने के कारण मुझे (अर्तात् कालिदास को) भी आप कृतार्थ समझिए[2]।

गगायुक्त हिमालय के इस थोड़े से प्रदेश के प्रति कवि का पक्षपात रघुवंश मे भी प्रकट हुए बिना नही रह सका। रघु की विजय-वाहिनी सब देशों को पादाक्रान्त करती हुई फारस, हूण देश और कम्बोज होती हुई, पजाब को पार कर अन्त मे कवि के इसी गौरी-गुरु हिमालय के चरणों मे आ पहुँची[3]।

८. (ग) रघुवंश का साक्ष्य

कवि का स्वदेशानुराग इसे मगध की तरह बिना निर्देश किये आगे बढने नही देता। वह इसकी पराजय भी नही दिखलाता। अतः कवि लिखता है :—"रघु की घुडसवार सेना हिमालय पर चढ़ने लगी। घोड़ों के सुमो के आघात से उठी रेणु से मानों वह उसके शिखरो का अभिवर्धन-अभिनन्दन कर रही थी। वहाँ कन्दराओं मे सोये हुए सिहों ने, सैन्यघोष से निद्रा भंग होने पर एक बार गर्दन फेरकर निर्भयता मे उस ओर देखा और फिर लेट गए[4]। मानों उन्होंने यह कहा कि हम भी तुम्हारी तरह ही वीर है, तुम्हारी कुछ परवाह नही करते। तुम हमें न छेड़ो, हम तुम्हे कुछ न कहेंगे। यहाँ कवि ने जिस कौशल से अपने प्रदेश के पुरुष-सिहों की आनबान का वर्णन कर दिया है वह केवल सहृदय ही समझ सकते है। यह हिमालय का कौनसा प्रदेश है--यह सन्देह किसी को न रह जाए इसलिए कवि कहता है कि "भूर्जपत्रो मे मर्मरित तथा वेणुओं से वंशी ध्वनि करने वाले और गगा के जलकणों से सुशीतल मारुत उसकी सेवा

---

१. ह्रीमानभूद्भूमिधरो हरेण, त्रैलोक्य वन्द्येन कृत प्रणाम,
॥ कुमार०, सर्ग ७, श्लोक ५४ ॥

२. उन्नतेन स्थिति मताधुर मुद्वहताभुवः,
तेन योजित संम्बन्ध विद्ध मामप्य वचितम् ॥ कुमार०, सर्ग ६, पद्य ४ ॥

३. ततो गौरी गुरुं शैल मारुरोहाश्वसाधनः,
वर्धयन्निव तत् कूटानुद्धूतैर्धातु रेणुभिः ॥ रघु०, सर्ग ४, श्लोक ७१ ॥

४. शशंस तुल्य सत्त्वाना सैन्यघोषेऽप्यसंभ्रमम्,
गुहाशयाना सिहानां परिवृत्यावलोकितम् ॥ रघु०, सर्ग ४, श्लोक ७२ ॥

कर रहे' थे। यहाँ से कुछ आगे बढ़ते ही रघु का सघर्ष पर्वतीय गण राज्यों से हुआ।[2]

राजा दिलीप वशिष्ठ ऋषि की धेनु नन्दिनी को चराने के लिए प्रतिदिन वन मे ले जाया करते थे। एक दिन राजा की परीक्षा करने के लिए वह गौरी गुरु हिमालय[3] की उस घाटी मे जा पहुँची, जहाँ गगा के प्रपात के निकट हरी हरी घास लहलहा रही थी। कहाँ हिमालय और गगा, एव कहाँ अयोध्या तथा उसके निकट ही वशिष्ठ का आश्रम ? कुछ समझ मे नही आता कि मामला क्या है। गंगा और हिमालय ने कवि की कल्पना पर कुछ ऐसा प्रभाव कर रक्खा है कि उसे सर्वत्र वे ही दीखते हैं। कवि विशाखदत्त ने राजा नन्द की ऐसी ही प्रेमदशा का वर्णन राक्षस के इस उद्‌गार में किया है—

"अज्ञासी प्रीति योगात् स्थितमिव नगरे राक्षसानां सहस्रम्"

८. (घ) अभिज्ञान शाकुन्तला में गंगा तथा हिमालय

अभिज्ञान शाकुन्तल के छठे अक मे मछुए द्वारा अँगूठी मिल चुकने के पश्चात् राजा को सब पुरानी बाते एक-एक कर याद आ रही हैं। "किस प्रकार मैंने शकुन्तला का तिरस्कार किया, किस प्रकार वह बेचारी अपने साथियों की ओर बढी ही थी कि कण्व के शिष्य शार्ङ्गरव ने उसे निष्ठुरता से डाँट दिया और तब वह किस प्रकार अश्रुपूर्ण कातर-नेत्रों से मेरी ओर ताकती रह गई, यह कटुस्मृति मेरे हृदय को विषदिग्ध शर की तरह छेद रही है[4]।" इसी समय उसके बनाये शकुन्तला के चित्र को लेकर परिचारिका चतुरिका वहाँ आ जाती है। राजा देखकर कहता है कि यह तो अभी अधूरा ही है। वह तूलिका मगवाता है। अपने मित्र

---

१. भूर्जेषु मर्मरीभूता· कीचक ध्वनि हेतवः,
गगाशीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे ॥ रघु०, सर्ग ४, इलोक ७३ ॥

२. तत्र जन्य रघोर्घोर पर्वतीयैगणैरभूत् ॥ रघु०, सर्ग ४, इलोक ७७ ॥

३. अन्येद्युरात्मानुचरस्य भाव जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः ।
गगाप्रवातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश ॥ रघु०, सर्ग २-२६ ॥

४ इतः प्रत्यादेशात्स्वजनमनुगन्तु व्यवसिता,
मुहुस्तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे,
पुनर्दृष्टिं वाष्पप्रसर कलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्तत्सविषमिव शल्यं दहति माम् ॥ शाकु० ६ ॥ ९ ॥

माधव्य के यह पूछने पर कि इसमे अब और क्या बनाना शेष है ? राजा उत्तर देता है कि सुनो—'पहले तो इसमें मालिनी नदी बनानी है, जिसके पुलिन में हंस-युगल केलि कर रहे हैं। उसके दोनो प्रान्तों में गौरीगुरु हिमालय के पावन टीले अकित करने हैं। फिर, जिसकी शाखाओं में मुनियों के वल्कल वस्त्र लटक रहे हैं ऐसे तपोवन तरु के नीचे कृष्णमृग के सीग से अपने वामनेत्र को खुजाती हुई एक हरिणी का भी चित्र बनाना चाहता हूँ'[1]। कवि चाहता तो चित्र को पहले ही पूर्ण कर सकता था, ऐसा न करके उसने पीछे से गिनाई इन वस्तुओ पर विशेष बल ही दिया है। नहीं तो गौरी-गुरु के प्रति कवि का असाधारण अनुराग पाठकों के ध्यान में कैसे आता ?

८. (ङ) विक्रमोर्वशीय में भी वही गंगा तथा हिमालय

कुमार-सम्भव, शाकुन्तल और मेघदूत की तरह विक्रमोर्वशीय नाटक की घटना का मुख्य स्थान भी हिमालय ही है। उर्वशी आदि अप्सराएँ कुबेर के यहाँ से लौट रही थीं कि मार्ग मे उन पर हिरण्यपुरवासी केशी दानव ने आक्रमण कर दिया। उसने उर्वशी तथा चित्रलेखा को बन्दी बना लिया। शेष अप्सराओं के क्रन्दन कोलाहल को सुनकर सूर्य की पूजा करके लौटता हुआ राजा पुरुरवा अचानक वहाँ आ निकला। उसने युद्ध करके असुर के हाथ से उर्वशी का उद्धार किया। राजा की वीरता पर वह मुग्ध होकर उसके प्रेम पाश में बद्ध हो गई। अनेक विघ्नो के बाद तृतीय अंक मे दोनो प्रेमी एक दूसरे को पा सकने में सफल हुए। चतुर्थांक मे राजा पुरुरवा उर्वशी को साथ लेकर हिमालय में गन्धमादन पर्वत पर पहुँचता है। वह गगा के तट पर खेलती हुई किसी विद्याधर कुमारी को देखने लगता है इससे रुष्ट होकर उर्वशी कार्तिकेय के तपोवन में जा निकलती है और वहाँ पहुँचते ही वह लता बन जाती है। राजा उसे सर्वत्र ढूंढ़ता फिरता है, अन्त मे संगमनीय मणि के प्रभाव से वह पुनः अपनी प्रियतमा को प्राप्त कर लेता है। इत्यादि।

---

१. कार्यासैकत लीन हंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी,
पादास्तामभितोनिषण्ण हरिणा गौरीगुरोः पावनाः ॥
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरो र्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृंगेकृष्णमृगस्य वामनयन कण्डूयमानां मृगीम् ॥ शाकु० ६।१७ ॥

२. भागीरथी निर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पित देवदारुः
यद्वायुरन्विष्ट मृगैः किरातैरासेव्यते भिन्न शिखण्डि बर्हः ॥
कुमार० सर्ग १ पद्य १५॥

कुमार-सम्भव के आधार पर पहले भी बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अब दो पद्य और देकर इस प्रसग को समाप्त करते है। कुमार सम्भव के प्रथम सर्ग का प्रारम्भ ही हिमालय की महिमा के गान से होता है। कुछ दूर चलकर कवि लिखता है कि "और भागीरथी के झरने के जलकणों को वहन करने वाले, देवदारु के वनों को पुन: पुन. आन्दोलित करते हुए, मयूरो को पुलकित करने वाले जिसके पवन को शिकार के पीछे भागते हुए किरातगण सेवन किया करते हैं।" इसी प्रथम सर्ग के अन्त मे कवि पुन लिखता है—"वे गजचर्मधारी, सयतेन्द्रिय, गगा-प्रवाह से देवदारु वन को आप्लावित करने वाले महादेव कस्तूरीमृग की सुरभि से सुवासित, किन्नरगणो की मन्द सगीत ध्वनि से मुखरित, हिमगिरि के उस प्रदेश मे, समाधिस्थ हो गये।" (कुमार १-५३)।

कुमार-सम्भव में तो है ही हिमालय का वर्णन। अत उसे भी हम ऋतु-संहार की तरह ही किसी स्थापना के पक्ष-विपक्ष मे प्रमाण के रूप मे उपस्थित नही करते तो भी इतना अवश्य कह देना चहते है कि वैसा वर्णन भी कोई ऐसा व्यक्ति नही कर सकता जिसके जीवन का बहुत बडा भाग हिमालय मे न व्यतीत हुआ हो।

'कालिदास का स्थान' का सार

१. (क) कवि ने अपने जन्म स्थान के विषय मे स्वय कुछ नही लिखा।

(ख) किसी अन्य प्राचीन लेखक ने भी इस सम्बन्ध कुछ प्रकाश नहीं डाला।

(ग) अत. उसके ग्रन्थों का अन्त. साक्ष्य ही एक मात्र आधार शेष रह जाता है।

२. अन्त साक्ष्य के आधार पर चार मत प्रचलित हैं।

(क) मगध वाला मत।

(ख) मध्य भारत में उज्जयिनी वाला मत।

(ग) कश्मीर वाला मत।

(घ) बगाल वाला मत।

३. **मगध पक्ष**—रघुवंश मे मगध के प्रति कवि का विशेष पक्षपात है। सुदक्षिणा तथा सुमित्रा को कवि ने मगध की राज कन्या कहा है। रघुवंश के

छठे सर्ग में मगधेश्वर को स्वयंवर सभा में प्रथम स्थान प्रदान कर इन्दुमती से उसे प्रणाम करवाया है। किन्तु उसी चतुर्थ सर्ग में दिग्विजय के प्रसग में रघु से उसका पराजय नही दिखाया।

इसका उत्तर पक्ष--मगधेश्वर के प्रति भक्ति प्रकाशित करते हुए भी कवि ने मगध देश तथा वहाँ के जीवन के प्रति किसी प्रकार का अनुराग प्रकट नही किया।

४. मध्य भारत में उज्जयिनी वाला पक्ष--(क) ऋतु संहार में ऋतुओं, प्राकृतिक दृश्यों तथा मानव जीवन का वर्णन मध्यभारत के जलवायु के अनुरूप हुआ है। कहीं-कही विन्ध्याचल का स्पष्ट निर्देश भी मिलता है।

(ख) मेघदूत में कवि ने जिन ३१ नगर, पर्वत, नदी, दृश्य तथा मानव-जीवन आदि का वर्णन किया है उनमें से १७ मध्यभारत से सम्बन्ध रखते हैं और इस प्रदेश के पद-पद से उसका साक्षात् परिचय है। उज्जयिनी उसके लिये विशेष आकर्षण का विषय है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री तथा मि० स्मिथ भी इस मत के पक्षपाती हैं।

इसका उत्तर पक्ष---उज्जयिनी मे कवि का मेघ महाकाल को भक्ति से प्रणाम करता है, वहाँ के प्रेमी प्रेमिकाओं को देखता है, खिलती केतकियों की महक से सुवासित शिप्रा के शीतल पवनों का आनन्द लेता है किन्तु वहाँ उसे यक्ष की पति परायणा पत्नी के दर्शन नही होते और वह अपनी यात्रा पर आगे बढ़ जाता है। अतः यह प्रदेश कवि का जन्म स्थान नही जहाँ वह मेघ को दूत बना कर अपना सन्देश भेजना चाहता है।

५. कश्मीर पक्षः---प्रो० लक्ष्मीधर कल्ला कश्मीर को कालिदास का जन्म स्थान मानते है क्योकि---

(क) कवि ने मेघ को सन्देश देकर उत्तर दिशा में भेजा है और कश्मीर भारत के उत्तर में है।

(ख) कवि के ग्रन्थों में जिन भौगोलिक स्थानों---कण्वाश्रम, कश्यपाश्रम, गंगा, मालिनी, शचीतीर्थ ब्रह्मसर आदि का वर्णन हुआ है वे 'नीलमत पुराण' के अनुसार कश्मीर के अन्तर्गत हैं।

(ग) कवि ने जिन सामाजिक रीति रिवाजों और व्यवहारों तथा विश्वासों का वर्णन किया है वे कश्मीर में आज भी प्रचलित हैं और केवल कश्मीरी लेखक को ही उनका ज्ञान हो सकता है।

(घ) कालिदास के ग्रन्थों में शैवधर्म के उस प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सिद्धान्तों का प्रति पादन किया गया है जो उस समय केवल कश्मीर में ही विदित थे ।

(ङ) सूर्यपूजा, केसर, धान की खेती तथा यक्ष भी यही सिद्ध करते हैं कि कवि कश्मीर का निवासी था।

इसका उत्तर पक्ष—(क) कवि का लक्ष्य कश्मीर नही किन्तु गढ़वाल है क्यों कि मेघ कश्मीर न जाकर कुरुक्षेत्र से गंगा द्वार की ओर चला जाता है ।

(ख) कालिदास ने जिन भौगोलिक स्थानों—कण्वाश्रम, गंगा मालिनी, तथा शचीतीर्थ आदि का वर्ण किया है वे कश्मीर के नही किंतु गढवाल के हैं क्योंकि कवि के इन वर्णनों का आधार नीलमत पुराण नही प्रत्युत महा-भारत है।

(ग) जिन रीति-रिवाजों आदि के द्वारा प्रो० कल्ला कवि को कश्मीरी सिद्ध करना चाहते हैं वे केवल कश्मीर तक ही सीमित नही ।

(घ) प्रत्यभिज्ञा दर्शन वाली युक्ति को प्रो० कीथ कुछ महत्त्व नही देता।

(ङ) सूर्य पूजा भारत मे सर्वत्र प्रचलित थी न कि केवल कश्मीर में। यक्ष केसर तथा धान की खेती से परिचय भी कवि को कश्मीरी सिद्ध करने को पर्याप्त नही ।

६. बंगाल पक्ष—कुछ बगाली विद्वान् कालिदास को बंगाली मानते हैं क्योंकि धान के खेतों के सम्बन्ध में कालिदास ने जो कुछ लिखा है वह किसी बंगाली के ही अनुभव का विषय है। किन्तु यह पक्ष भी ठीक नही क्योंकि कवि न रघु की निग्विजय के प्रसंग में बंगाल की पराजय का वर्णन निर्ममता से किया है।

७. हमारा मत—हमारा विचार है कि कवि गढ़वाल के किसी ऐसे प्रदेश का निवासी था जहां गगा तथा हिमालय साथ-साथ है। क्योंकि :—

(क) इस प्रदेश के प्रति कवि का सर्वाधिक अनुराग है।

(ख) मेघ की यात्रा वही समाप्त होती है और वह यक्ष का सन्देश वही पहुँचाता है।

(ग) मेघदूत में वर्णित जीवन, ऋतु, वृक्ष आदि इसी प्रदेश के अनुकूल हैं।

(घ) कुमार सभव मे सप्तर्षियों तथा शिव की उक्तियां भी इसी पक्ष का समर्थन करती हैं।

कालिदास के समय का भारत

तथा

कवि का जीवन और व्यक्तित्व

कालिदास ने अपने जन्म स्थान, समय तथा जीवन के विषय में कुछ नहीं लिखा, और उसके सम्बन्ध में प्रचलित लोक गाथाएँ तथा किंवदन्तियाँ विश्वसनीय नही, अतः उसके ग्रन्थों के अन्तः साक्ष्यों के आधार पर जो अनुमान लगाए जा सकते हैं मुख्यतया उनके सहारे ही यहाँ कवि के जीवन के सम्बन्ध में लिखने का साहस किया जाएगा।

१. कवि को ठीक तरह से समझने के लिए उसकी परि-स्थितियों का ज्ञान आवश्यक है

कवि का हृदय अत्यन्त प्रभावग्राही होता है, इसलिए यह बिलकुल स्वाभाविक है कि तात्कालिक परिस्थितियों तथा घटनाओं का गहरा प्रभाव उस पर पड़े बिना न रह सके, और वह उसकी कृतियों में भी यत्र-तत्र प्रतिबिम्बित हो जाए। अतः कालिदास के विचारों को पूर्णतया हृदयंगम करने तथा उसकी कविता का रसास्वाद अधिक से अधिक कर सकने के लिए अत्यावश्यक है कि उसने जिन राजनीतिक धार्मिक सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियो मे एव जिन प्रदेशो और अवस्थाओं में रह कर अपने ग्रन्थों की रचना की थी, पाठक पहले उन्हे भी भली भाँति समझले।

२. कवि के ग्रंथों में आए महत्त्वपूर्ण संकेतों की उपेक्षा नहीं की जा सकती

यहाँ यह आपत्ति की जा सकती है कि कवि ने अपने कथा प्रसंग का विकास करने के लिए किन्ही देशों, नगरों या राजवंश आदि का निर्देश तो करना ही था, अतः उसके पीछे किसी छिपे संकेत की खोज अनुचित है। किन्तु यह ठीक नहीं। उदाहरण के लिए दिलीप की पटरानी सुदक्षिणा, दशरथ की रानी सुमित्रा तथा मगधेश्वर के विषय में कुछ संकेत किए गये हैं जिनका वर्णन पहले किया जा चुका

है। क्या इस सारे सविधान या जोड़-तोड़ को निरुद्देश्य अथवा आकस्मिक कहकर टाला जा सकता है ? यदि नही तो ऐसे सुगठित निर्देशों से निकाले गए परिणामो को बिना विचारे ही त्याज्य नहीं ठहराया जा सकता।

राजनीतिक पृष्ठभूमि

प्राचीन भारत के इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है कि ईसा से लगभग १८० वर्ष पूर्व मगध साम्राज्य के सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने मौर्यवशी अन्तिम बौद्ध सम्राट बृहद्रथ को मारकर उसके सिहासन पर अधिकार कर लिया था। पुष्यमित्र की राजधानी मगध मे पाटलिपुत्र थी, किन्तु उसके राज्य का विस्तार पश्चिम मे भी बहुत दूर तक था। विदर्भ का राज्य तो उसी समय जीता गया था। अत साम्राज्य के इस पश्चिमाचल की रक्षा के लिए विदिशा को उपयुक्त स्थान समझा गया और वहाँ का शासक उसने अपने पुत्र अग्निमित्र को बनाया। पश्चिमी पजाब मे आबाद यवनों ने शाकल के शासक मिनान्दर के नेतृत्व मे भारत पर आक्रमण किया और वे अयोध्या तथा मथुरा तक बढ आए। किन्तु अन्त मे उन्हें पुष्यमित्र से मुँह की खानी पडी और कुछ समय के लिए भारत विदेशियो के आक्रमण से बच गया। शुगों के शासनकाल मे विदिशा का महत्त्व बढता गया और वह दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गई। इस वश के पाँचवे राजा भागभद्र के समय तक्षशिला के यवन नृपति अन्तलिखिकद का राजदूत हेलियो दोरस विदिशा आया। वह भागवत धर्म को स्वीकार कर वैष्णव बन गया था, इसलिए उसने भगवान् वासुदेव की पूजा के लिए वहाँ एक गरुड ध्वज का निर्माण करवाया। ७२ ईस्वी पूर्व, शुग वश के दसवे राजा देवभूति को उसके मत्री वासुदेव कण्व ने मार कर कण्व वश की स्थापना की। इस वश के ८ शासको ने ४९ वर्ष तक राज्य किया। ये राजा शुग भृत्य भी कहलाते थे। कुछ आश्चर्य नही कि इस वश का सस्थापक वासुदेव भी पुष्यमित्र की ही तरह अन्त तक यही कहता रहा कि वह तो स्वामी के मर जाने पर भी, एक विश्वस्त सेवक के रूप मे, उसके राज्य की केवल रख-वाली कर रहा है। ये शासक अत्यन्त निर्बल थे, अतः सिन्धु घाटी के शकों ने सौराष्ट्र तथा मालवा पर अधिकार कर लिया जिन्हे ईसा पूर्व ५८ मे उज्जयिनी के महाराजा विक्रमादित्य ने परास्त किया।

(क) रघुवंश में वर्णित इन्दुमती स्वयंवर में पंजाब तथा सिन्धु घाटी का

४. कालिदास के ग्रंथों में उस समय के कुछ राजनीतिक संकेत

कोई राजा सम्मिलित नहीं हुआ। मेघदूत का मेघ भी कुरुक्षेत्र से आगे पंजाब की तरफ नही बढ़ा। इससे प्रतीत होता है कि उन प्रदेशों पर कोई विदेशी अनार्य लोग शासन कर रहे थे और यदि कोई आर्य राज्य थे भी तो, बहुत छोटे, अत नगण्य से। (ख) रघुवंश के छठे सर्ग में मगध, अङ्ग, उज्जयिनी, शूरसेन, अनूपदेश, तथा महेन्द्र देश के अनन्तर पाण्ड्यो का निर्देश है। यह भी उस समय की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डालता हैं। ज्ञात होता है कि तब तक दक्षिण भारत मे पाण्ड्यों का ही प्रभुत्त्व था और उनकी राजधानी उरगपुर थी। दिग्विजय के अवसर पर रघु का संघर्ष भी इन्ही के साथ हुआ। तब तक चोलो ने शक्ति प्राप्त कर पाण्ड्यों को परास्त नही किया था। (ग) कामरूप तथा विदर्भ के राजा कलिदास के आश्रयदाता सम्राट के मित्र थे। रघुवश के छठे सर्ग से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। (घ) कलिंग के चेदि राजा भी कुछ बलशाली हो गए थे, और उन्होंने रघु से लोहा लेने का साहस किया था। (ङ) रघुवश के सोलहवे सर्ग से पता चलता है कि मध्य भारत में नाग लोग भी अपनी शक्ति बढ़ाने मे लग रहे थे। उनके वंश की कन्या कुमुद्वती से कुश ने विवाह किया था। (च) हूण लोग तब तक यहाँ नहीं आए थे। रघु के साथ उनका युद्ध भारत से बाहर ही हुआ था। (छ) विक्रमोर्वशीय मे केशी दानव का प्रसंग आता है जिसका निवास ईशान दिशा अर्थात् भारत के उत्तर-पूर्व में था। सभवत. ये लोग भी हूणों की तरह दाढी, मूँछ और बड़े-बडे बाल रखते थे। (ज) विक्रमोर्वशीय से ही यह भी पता लगता है कि उन दिनों निकट भविष्य में ही किसी विदेशी शक्ति के आक्रमण की प्रबल सभावना थी। कालिदास ने रघुवश मे कुश द्वारा अयोध्या के फिर से बसाने का वर्णन किया है। सभवत्त यह भी उस समय की किसी ऐतिहासिक घटना का सूचक हो।

राजा तथा प्रजा के सम्बन्ध

राजा तथा प्रजा के परस्पर सम्बन्ध, अत्यन्त मधुर थे। राजा अपना प्रधान कर्त्तव्य प्रजानुरंजन समझता था और प्रजा को अपनी संतान के समान मानता था। प्रजा भी उसे पितृ तुल्य समझती थी। यद्यपि दण्ड व्यवस्था कठोर थी किन्तु उसकी आवश्यकता कदाचित् ही पड़ती थी। राजा स्वतन्त्र था किन्तु निरंकुश नही। वह न्याय में अपने पराये का भेद न करता था। प्रजा

से लिया कर प्रजा पर ही व्यय कर दिया जाता। राजा ही प्रजा की शिक्षा दीक्षा तथा उसकी जीविका की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी था। राज्य-कोष पर राजा का अधिकार न था, वैयक्तिक दान-पुण्य वह अपनी निजी संपत्ति मे से करता था। रघु ने कौत्स को जो दान दिया था वह राज्य-कोष से नहीं किन्तु निजी सपत्ति में से। तपोवनो तथा ऋषि मुनियो के आश्रमों से कोई राजकर नही लिया जाता था। राजा विनीत वेष मे वहाँ जाता था और नम्रता पूर्ण व्यवहार करता था। ऋषियो के आश्रम नगर, ग्राम आदि से दूर होते थे तभी तो रघु की दिग्विजय का हाल वरतन्तु के गुरुकुल मे पढ़ते कौत्स को न मालूम हुआ क्योंकि गुरुकुल वस्तुतः ही माता के गर्भ जैसे होते थे जिन पर बाहर की उथल-पुथल का प्रभाव नही पड़ता था। विद्यार्थी एकाग्र होकर अपने अध्ययन मे लगे रहते थे। राजा लोग बिना किसी आडम्बर के वहाँ जाते थे और तपस्वी गुरुजनो के चरणो मे बैठ कर गौरव अनुभव करते थे। ये ऋषि-मुनि अपने आदर्श, आचार तथा उपदेश से देश के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाते रहते थे और यही वह धर्ममय षष्ठ पाठ भाग था जो उनसे राजा को मिलता था। दशरथ को वसिष्ठ के चरणों मे बैठे देखकर कितने ही उच्च वृत्ति वाले नवयुवको को राजसी ठाट वाले दशरथ की अपेक्षा तपस्वी वसिष्ठ बनने की प्रेरणा मिलती थी जिससे राजा का शस्त्र और वैश्य का धन इतनी शक्ति नही पा सकता था कि वह प्रजा का उत्पीडन कर सके। वह ब्रह्म शक्ति से नियन्त्रित था।

५ धार्मिक तथा सामाजिक पृष्ठ भूमि

(क) बौद्ध धर्म का उदय—भारत मे बहुत प्राचीन काल से वह कर्मकाण्ड-प्रधान वैदिक धर्म प्रचलित था जिसमें दैनिक अग्निहोत्र तथा दर्श पौर्ण मास आदि विविध यज्ञो का विशेष महत्त्व था। ये यज्ञ अत्यन्त जटिल तथा आडम्बर-पूर्ण बन गये थे जिनके सम्पादन के लिए कुशल पुरोहितों की आवश्यकता पडती थी। ये पुरोहित प्राय ब्राह्मण वर्ण के ही होते थे अतः समाज मे इस वर्ण को विशेष गौरव प्राप्त था। यद्यपि वर्ण व्यवस्था को मान्यता प्राप्त थी तो भी उसके सम्बन्ध में और खान-पान तथा विवाह आदि के लिए कठोर नियम न थे। प्राचीन आर्य प्रकृतिकी शक्ति रूप विभिन्न देवताओं के पीछे उनके नियामक अदृश्य परमात्मा, आत्मा, पुनर्जन्म तथा कर्मफल में विश्वास रखते थे। धीरे-धीरे यज्ञों में पशु हिंसा का समावेश हुआ और जब वह बहुत बढ़ गई तो समाज मे उसके विरुद्ध एक प्रतिक्रिया उठ खड़ी हुई।

उस प्रतिक्रिया का एक रूप वह ज्ञान-मार्ग था जिसकी झांकी उपनिषदों तथा आस्तिक दर्शनों के चिन्तन में मिलती है, तथा दूसरा रूप अहिंसावादी जैन और बौद्ध धर्मों का उदय था । इन धर्मों के आचार्य बड़े प्रतिष्ठित कुलों के क्षत्रिय राजकुमार थे, उनका व्यक्तित्व आकर्षक तथा प्रभावशाली था और उन्होंने अपने प्रचार का माध्यम भी लोक भाषा को बनाया, अत. उनकी शिक्षाएँ शीघ्र ही सारे देश मे फैल गईं। अशोक द्वारा दीक्षा-ग्रहण कर लेने पर तो बौद्ध धर्म राजधर्म ही बन गया और उसके प्रयत्नों से इस धर्म का प्रचार भारत से बाहर भी हो गया। स्थान-स्थान पर बौद्ध विहार बन गए जिनमें तरुण भिक्षुक भिक्षुकियाँ आनन्द का जीवन व्यतीत करने लगीं । इसका परिणाम यह हुआ कि बौद्ध संघ मे अवांछनीय व्यक्तियों की संख्या बढ़ गई और उसमे नैतिक पतन ने घर कर लिया। अन्त में सन् १८० ई० पूर्व जब पुष्यमित्र ने अन्तिम बौद्ध सम्राट् वृहद्रथ को मारकर उसके सिंहासन पर अधिकार कर लिया तो जर्जर बौद्ध धर्म बिलकुल ही लड़खड़ा गया और बहुत समय से दबे पड़े वैदिक धर्म ने फिर सिर उठा लिया। भगवान् बुद्ध अनीश्वरवादी तथा क्रान्तिकारी विचारों के थे। उनकी शिक्षाओं ने तात्कालिक समाज के मूल आधार पर ही कुठाराघात कर दिया जिससे सब सामाजिक बंधन टूट गये। समाज इस अवस्था को अधिक न सह सका और उसके विरोध का परिणाम यह हुआ कि भारत में बौद्ध धर्म बिलकुल ही लुप्त हो गया ।

(ख) जैन धर्म

जैन धर्म अनात्मवादी न था। वह हिंसा प्रधान यज्ञयागादि का विरोधी होता हुआ भी सुधारवादी था, क्रान्तिकारी नही। उसने आचार की शुद्धता, कठोर तप, और सत्य, अहिंसा, अस्तेय तथा अपरिग्रह पर विशेष बल दिया। समाज में फैली हुई बुराइयो को इस प्रकार सुधारने का यत्न किया कि उसका यह कार्य किसी को खटका नहीं। जैन-धर्म में दीक्षित होने वालों को खान-पान रहन-सहन आदि के सम्बन्ध में कठोर नियमों का पालन करना पड़ता था अतः अवसरवादी अवांछनीय व्यक्तियों के लिए उसमें कोई आकर्षण न था। इसलिए यद्यपि जैन-धर्म का प्रचार उतना अधिक न हुआ जितना बौद्ध-धर्म का, किन्तु वह आज भी जीवित है तथा भारतीय समाज पर उसका प्रभाव चिर-स्थायी है और जैनधर्मावलम्बी आज हिन्दू समाज के अभिन्न अंग हैं। वर्त्तमान हिन्दू समाज में जो व्रत. उपवास, तथा अहिंसावाद पाये जाते हैं उसका बहुत कुछ

श्रेय जैन धर्म को ही है। शैव होते हुए भी कालिदास जैन धर्म की शिक्षाओं से बहुत प्रभावित था जैसा कि हम आगे देखेंगे।

नये ब्राह्मण धर्म का जन्म

बौद्धयुग की समाप्ति पर जब वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ तो समाज के नवनिर्माण के लिए नए आधारों की आवश्यकता प्रतीत हुई, क्योंकि पुराने अनेक आधार अपना महत्व खो चुके थे। अतः उस समय के आचार्यों ने ऐसी धार्मिक, सामाजिक, नैतिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं की रचना की जो समाज को सुदृढ़ ढांचे मे ढाल सकें और उसे सुरक्षित भी रख सकें। उन नवीन व्यवस्थाओं को प्रामाणिकता तथा मान्यता प्रदान करने के लिए कहा गया कि वे मुख्यतया श्रुति अर्थात् वेद पर आधारित हैं किन्तु उन्हे क्रियात्मक रूप देने के लिए ही, समय के अनुसार कतिपय ऐसी उपव्यवथाऐ बनानी पडी है जो वेदानुकूल हैं तथा जिनका आधार बडे-बूढ़े लोगो की स्मृति मे सुरक्षित प्राचीन परम्पराएँ और सदाचार है। जिन ग्रंथो मे इन व्यवस्थाओ का संग्रह किया गया वे स्मृति[१] ग्रंथ कहलाए क्योंकि उनका आधार पुरानी याद अर्थात् स्मृति थी। मनुस्मृति नामक प्रसिद्ध ग्रथ भी तभी बना जिसमे चार वर्ण तथा चार आश्रमो के कर्त्तव्य, विवाह सम्बन्ध, खान पान, सोलह सस्कार, व्यवहार, अपराधों का निर्णय और उनके लिए राज दण्ड आदि के विस्तृत नियम दिये गये है। बौद्ध युग मे वैदिक धर्म तथा उसकी वर्णव्यवस्था को एक बार जो धक्का लग चुका था उसकी पुनरावृत्ति को रोकने के लिए यह भी आवश्यक प्रतीत हुआ कि प्रजा द्वारा इन नियमों का पालन राजा कठोरता से करवाए। अत. राजा

---

१. वेदोऽखिलो धर्म मूल स्मृति शीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मन स्तुष्टिरेवच॥
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्म शास्त्रं तु वै स्मृति.।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्या धर्मो हि निर्बभौ॥
श्रुति पश्यन्ति मुनयः स्मरन्ति च यथा विधि।
तस्मात्प्रमाण मुनयः प्रमाणं प्रथित भुवि॥
मनु० अध्याय १ के ६, १०, १७

को वर्णाश्रम धर्म का रक्षक तथा ईश्वर का प्रतिनिधि[1] कहा गया । रघुवंश[2] में शंबूक नामक उस शूद्र के वध का वर्णन किया गया है जो तपस्या कर रहा था, क्योंकि इन नई व्यवस्थाओं के अनुसार शूद्र को तप करने का अधिकार न था जबकि बौद्धयुग में जाति भेद के विचार के बिना, कोई भी व्यक्ति भिक्षु बन सकता था या अपने लिए इच्छानुसार कोई व्यवसाय चुन सकता था। पुष्यमित्र ने अपने समय के प्रकाण्ड पण्डित महर्षि पतजलि को पुरोहित बना उनके तत्त्वावधान मे अश्वमेघ यज्ञ कर मानो बौद्ध युग की समाप्ति की घोषणा कर दी। साथ ही यवनों पर उसकी विजयो और उत्तर भारत के बहुत बड़े भाग पर साम्राज्य स्थापना ने भारतीय हृदय को जातीय गौरव की भावना से भर दिया।

७. धर्म के इस नए रूप की सर्व प्रियता तथा उसका प्रभाव

वैदिकधर्म के इस नये स्मार्त्त या पौराणिक रूप ने समाज मे नव जीवन का संचार कर दिया। बौद्ध युग से पहले भी हिमालय के प्रदेशों में शैव धर्म अंकुरित हो चुका था जिसकी सूचना केन उपनिषद की हैमवती उमा[3] दे रही है और वेद का 'तीन कदम रखने वाला विष्णु' वामानदि रूप धारण करने वाला पौराणिक कृष्ण बन कर भागवत धर्म की नीव डाल

---

१. अराजके हि लोकेस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात् ।
रक्षार्थ मस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥
इन्द्रानिल यमार्काणा मग्नेश्च वरुणस्य च ।
चन्द्र वित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वती ॥
यस्मा देषां सुरेन्द्राणा मात्राभ्यो निर्मितो नृपः ।
तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ॥
बालोपि नाव मन्त व्यो मनुष्य इतिभूमिपः ।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥

मनु० अध्याय ७ के ३, ४, ५, ८।

तंराजवीथ्यामधिहस्ति यान्त माधोरणालम्बितमग्र्यवेशम् ।
षड्वर्ष देशीयमपि प्रभुत्वात्प्रेक्षन्त पौराः पितृ गौरवेण ॥
कामं न सोऽकल्पत पैतृकस्य सिंहासनस्य प्रतिपूरणाय ।
तेजो महिम्ना पुनरावृतात्मा तद्व्याप चामी कर पिंजरेण ॥

रघुवंश सर्ग १८ के पद्य ३९, ४०

२. रघुवंश सर्ग १५, पद्य ४२—५३ ।

३. केन उपनिषद ३–१२

चुका था। इन्ही दिनो अनेक स्थानीय तथा बाहर से आने वाली अनार्य जातियाँ—यवन (ग्रीक), शक, गुर्जर आभीर आदि भी हिन्दू धर्म के इस नये रूप की ओर आकृष्ट हुई और भारतीय समाज ने उन्हे आत्मसात् कर लिया। जैन तथा बौद्ध धर्मों की पूजा विधि में अग्नि होत्र का स्थान साकार व्यक्ति पूजा ने ले लिया था, संभवतः इससे ही नये वैदिक धर्म में भी शिव तथा विष्णु और ब्रह्मा—इन साकार देवताओं का महत्त्व बढ़ गया और उनकी पूजा होने लगी। धार्मिक दृष्टि से वह युग समन्वय वादी था कट्टर नहीं। राजा लोग एक धर्म के अनुयायी होते हुए भी दूसरे धर्म वालों का आदर करते थे। कालिदास यद्यपि शैव था किन्तु विष्णु मे भी उसकी आस्था कम न थी। ब्रह्मा, विष्णु महेश—तीनों को उसने एक ही परम शक्ति के तीन प्रकाशन माना[2] है। भगवान् की पूजा के विविध प्रकारो और उनके प्रतिपादक शास्त्रों[3] को भी वह आदर की दृष्टि से देखता है। ऐसा ज्ञात होता है कि कालिदास के समय तक शिव के लिंग की पूजा का प्रचलन अधिक न हुआ था। रघुवंश मे कवि ने रामेश्वर मे राम द्वारा लिंग की स्थापना का वर्णन नही किया। मेघदूत में पूर्वमेघ के चतुर्थ पद्य में तथा उत्तरमेघ के १४वे पद्य मे साक्षात् शिव या उसके चरण चिह्न की ही पूजा का वर्णन मिलता है। उस समय का समाज भी काफी उदार था। विवाह अपने वर्ण से बाहर भी किया जा सकता था। कुश ने नाग कन्या से विवाह किया था। मनु ने भी असवर्ण विवाहो को वैध[4] स्वीकार किया है और बाहर से आकर यहाँ

---

१. (क) तद्विष्णोः परमं पद सदा पश्यन्ति सूरय.। दिवीव चक्षु राततम्।
(ख) इदं विष्णु र्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्। समूढ मस्य पासुरे।
यजु० ५-१५, २०

२ एकैव मूर्त्ति बिभिदे त्रिधा सा सामान्य मेषां प्रथमाऽवरत्वम्।
विष्णो र्हरस्तस्य हरि. कदाचि द्वेधास्तयोस्तावपि धातु राद्यौ॥ कुमार सर्ग ७

३ बहुधाऽप्यागमैर्भिन्नाः पन्थान· सिद्धिहेतव.।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जान्हवीया इवार्णवे॥ रघु ०.१० का २६

४. सवर्णाग्रेद्विजातीना प्रशस्या दारकर्मणि।
कामतस्तु प्रवृत्ताना मिमाः स्युः क्रमशोऽवराः॥
शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वाच विशः स्मृता।
ते च स्वाचैव राज्ञश्च ताश्चस्वाश्चा ग्रजन्मनः॥ मनु अध्याय ३ पद्य १२, १३

बस गई सैनिक प्रवृत्ति वली यवन, शक, पल्हव, हूण आदि जातियों को क्षत्रियों[1] के अन्तर्गत। इस उदारता के परिणामस्वरूप कितना विदेशी तत्त्व उन दिनों हिन्दू समाज में मिल गया और उन लोगों के कितने व्यवहारों मान्यताओं और कला आदि ने भारतीय संस्कृति के निर्माण तथा विकास में योग दिया इसका ठीक ठीक अनुमान कर सकना अत्यन्त कठिन है।

८. कालिदास और अहिंसा

रघुवंश महाकाव्य में रघु का विशेष महत्त्व है। उसी के नाम से आगे चलने वाले सारे वंश का नाम रघुवंश[2] पड़ा और उसमें उत्पन्न व्यक्ति राघव कहलाए। दिलीप तथा उसकी पत्नी ने बड़ी साधना तथा व्रत करके रघु-सा पुत्र प्राप्त किया था। दिलीप ने जब अश्वमेघ-यज्ञ का घोड़ा छोड़ा तो उसका रक्षक इस रघु को ही नियुक्त किया। घोड़े को इन्द्र ने हर लिया तो रघु ने उस से भी लोहा लिया और उसके दाँत खट्टे कर दिये। इन्द्र गुणज्ञ था, वह रघु के पराक्रम से प्रसन्न[3] हुआ, और उसने घोड़े[4] के अतिरिक्त कुछ भी मागने के लिए रघु को कहा। इस पर रघु ने प्रार्थना की कि 'यदि आप

---

१. शनकैस्तु क्रिया लोपा दिमा क्षत्रिय जातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणा दर्शनेन च ॥ मनु
मनु का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि कभी भारत का विस्तार उत्तर-पश्चिम में बहुत दूर तक था तब ये जातियाँ क्षत्रिय थीं। किन्तु धीरे २ उन प्रदेशों से भारत का सम्बन्ध टूट गया और ये लोग पतित हो गये।

२. तत समानीय स मानितार्थी हस्तौ स्वहस्तार्जितवीरशब्दः।
वंशस्य कर्त्तार मनन्त कीर्त्ति सुदक्षिणायां तनयं ययाचे ॥
रघु० सर्ग २ पद्य ६७

३. तथापि शस्त्र व्यवहार निष्ठुरे विपक्ष भावे चिरमस्य तस्थुषः।
तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा पदं हि सर्वत्र गुणैं निधीयते ॥
रघु० सर्ग ३ पद्य ६२

४. असंग मद्रिष्वपि सारवत्तया न मे त्वदन्येन विसोढ मायुधम्।
अवेहि मां प्रीत मृतेतुरंगमात्किमिच्छ सीति स्फुट माह् वासवः ॥
रघु० सर्ग ३—पद्य ६३

घोड़ा नही देना चाहते तो मेरे पिता को उसके बिना ही अश्वमेघ यज्ञ का समग्र[1] फल प्राप्त हो जाए' यह वर दीजिए। यहाँ यह प्रश्न विचारणीय है कि रघु तथा इन्द्र के सघर्ष की यह घटना रामायण में नही मिलती, कवि की अपनी ही सूझ है। इससे नायक के असाधारण बल पराक्रम का पता चलता है किन्तु साथ ही इन्द्र से उसकी हार की भी तो घोषणा होती है। महाकाव्य के प्रारभ मे ही अपने श्रेष्ठ नायक की हार कवि ने क्यो दिखलाई? वह बड़ी सुगमता से इसे कोई अन्य सुन्दर रूप दे सकता था। क्या यह सभव नही कि शैव होते हुए भी वह यज्ञों मे होने वाली निरीह पशुओ की निर्मम हत्या को पसन्द न करता था। अतः नायक की प्रतिष्ठा की उपेक्षा करके भी उसने अपनी भावना को प्रकाशित किया। कवि ने रघुवंश के दूसरे सर्ग में भी सिंह वाले प्रसग की रचना कर एक गाय के लिए दिलीप[2] को अपने प्राणों की बलि देने के लिए उद्यत दिखलाया। इस सर्ग के पढने से यह भी पता चलता है कि उस समय गाय की महिमा बहुत बढ गई थी। फिर रघुवश के पाँचवे सर्ग मे हम पढते है कि स्वयवर मे भाग लेने के लिए रघु का पुत्र अज विदर्भ को जा रहा था, रास्ते में उसके पडाव पर एक जगली हाथी[3] टूट पडा। 'हाथी मर न जाए' इस बात का विचार कर, केवल डराने के उद्देश्य से अज ने एक साधारण[4] सा तीर उस पर छोडा जिसके लगते ही वह हाथी गन्धर्व रूप धारण कर अज के सम्मुख उपस्थित हो गया और बोला कि मैं प्रियंवद् नामक गन्धर्व हूँ जो मतग नामक ऋषि के शाप से हाथी बन गया था। तुमने क्षत्रिय

---

१. अमोच्य मश्व यदि मन्यसे प्रभो तत. समाप्ते विधि नैव कर्मणि।
अजस्रदीक्षा प्रयतः स मद्गुरुः क्रतोरशेषेण फलेन युज्यताम्॥
रघु सर्ग ३ पद्य—६५

२. तथेतिगामुक्तवते दिलीप. सद्य. प्रतिष्टम्भ विमुक्त बाहुः।
स न्यस्त शस्त्रो हरये स्वदेह मुपानयत्पिण्डमिवामिषस्य॥
रघु सर्ग २ पद्य ५९१

३. सच्छिन्नबन्ध द्रुत युग्य शून्यं भग्नाक्ष पर्यस्तरथं क्षणेन।
रामा परित्राण विहस्तयोध सेना निवेश तुमुल चकार॥
रघु० सर्ग ५ पद्य ४९

४ तमापतन्तं नृपते रवध्यो वन्यः करीति श्रुतवान् कुमारः।
निवर्त्तयिष्यन् विशिखेन कुम्भे जघान नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः॥
रघु सर्ग ५ पद्य ५०

के कर्त्तव्य का पालन करते हुए भी दया को न छोड़ा और मेरे प्राण नहीं लिए । इसलिए मैं आज से तुम्हारा मित्र हूं, और इस मित्रता को स्मरणीय बनाने के लिए तुम्हे यह संमोहन नामक अस्त्र देता हूँ जो बिना[1] हिंसा किए शत्रुओं को पराजित करने वाला है। और सातवे सर्ग में हम देखते हैं कि अज ने अपने शत्रुओं पर उस अस्त्र का प्रयोग कर उन्हे हरा दिया किंतु मारा[2] नही।

मनु[3] ने शिकार को व्यसन कह कर उसका निषेध किया है । कालिदास ने भी उसकी पुनरावृत्ति करते हुए दशरथ[4] के उस शिकार खेलने की निन्दा की है जिसमे उसके हाथों श्रवण कुमार का वध हो गया था । अभिज्ञान शाकुन्तल मे भी माधव्य[5] के मुख से कवि ने शिकार खेलने को बुरा ठहराया है। शाकुन्तल के छठे अक मे कोतवाल ने मछुवे के व्यवसाय को बुरा कह कर उसका मजाक किया है और फिर उसके मुँह से यज्ञ में पशु मारने वाले श्रोत्रिय ब्राह्मण[6] व्यग्य से कटाक्ष किया है। इससे तो इंकार नही किया जा सकता कि उस समय शिकार खेला जाता था, यज्ञों में पशु हिसा की जाती थी और ब्राह्मण भी मास खाते थे किंतु यह सब कालिदास को रुचिकर न था। बौद्ध युग में बलात् ठूंसी गई अहिसा के प्रति विद्रोह भावना होने पर भी भारतीय नागरिक के के हृदय पर अहिंसा की गहरी छाप अवश्य लग गई थी। आज भी ऐसे शुद्धाचारी ब्राह्मणों की कमी नही जिनका हाथ एक चूहे पर भी नही उठ

---

१. समोहनं नाम सखे ममास्त्रं प्रयोग संहार विभक्त मन्त्रम्।
गान्धर्व मादत्स्व यतः प्रयोक्तु र्न चारि हिंसा विजयश्च हस्ते ॥
रघु० सर्ग ५ पद्य ५७

२. यशोहृतं संप्रत्ति राघवेण न जीवितं वः कृपयेति वर्णाः।
रघु० सर्ग ७ पद्य ६५

३. पान मक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथा क्रमम्।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥
मनु अध्याय ७ पद्य ५०

४. नृपतेः प्रतिषिद्ध मेव तत्कृतवान् पंक्ति रथो विलंघ्य यत्।
अपथे पदमर्प यन्ति हि श्रुतवन्तोपि रजोनिमीलिताः ॥ रघु० सर्ग ९ पद्य ४७

५. राजा—मन्दोत्साहः कृतो स्मि मृगया पवादिना माधव्येन। शाकुन्तल अंक २

६. सहजं खलु यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्।
पशुमारण कर्म दारुणः—अनुकम्पा मृदुरेवश्रोत्रियः ॥
अभि अंक १ पद्य १

सकता किंतु वे युक्ति प्रमाणों से यह सिद्ध करते हैं कि यज्ञ में पशु हिंसा पाप नहीं, पुण्य है। कुछ आश्चर्य नहीं कि हमारी इस अहिंसा की भावना के अन्तस्तल मे जैन धर्म का प्रभाव अन्तर्हित हो। कवि ने अनेक स्थानों पर अर्हन्[1] शब्द का प्रयोग बड़े आदर[2] के साथ किया है जो इस प्रसंग मे विचारणीय है। पाद टिप्पणी मे उद्धृत घ. पद्य का तीर्थ शब्द भी ध्यान देने योग्य है। गंगा आदि नदियों तथा प्रयाग आदि तीर्थों मे स्नान स्वर्ग प्राप्ति का साधन समझा जाता था। जनता शकुनों मे भी विश्वास रखती थी।

प्राचीन भारतीय आर्यों के जीवन में, शरीर को सुखा देने वाली कठोर तपस्या का कोई स्थान न था। वैदिक यज्ञ प्रायः पाक यज्ञ हुआ करते थे और यज्ञ शेष के रूप मे स्वादिष्ठ भोजन के साथ वे समाप्त होते थे। उपनिषदों[3] मे 'उसने अन्न को ब्रह्म जाना।' अन्न की निन्दा न करे,' 'अन्न का निषेध न करो' 'अन्न बहुत उत्पन्न करो' इत्यादि उपदेश दिया है लम्बे उपवासों का कही विधान नही किया। भगवान् बुद्ध कठोर तपस्या में आस्था न रखते थे और मध्यममार्ग की शिक्षा देते थे। मनु[4] ने केवल वानप्रस्थ तथा घोर पाप का प्रायश्चित्त करने वाले के लिए ही पंचाग्नितापन आदि तपों तथा उपवासों या

---

१. (क) तवार्हतो ना भिगमेन तृप्त मनो नियोगक्रिययो त्सुकमे।
रघु० सर्ग ५ पद्य ११

(ख) सत्व प्रशस्ते महिते मदीये वसँश्चतुर्थोग्निरिवाग्न्यगारे।
द्वित्राण्य हान्यर्हसि सोढुमर्हन् यावद्यते साधयितु त्वदर्थम्॥
रघु० सर्ग ५ : पद्य २५

(ग) अर्हणा मर्हते चक्रमुर्नयो नय चक्षुषे॥ रघु० सर्ग १—पद्य ५५

(घ) अद्य प्रभृति भूताना मभिगम्यो स्मि शुद्धये।
यदध्यासितमर्हद्भि स्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते॥
कुमा० सर्ग ६ पद्य ५६। इत्यादि

२. सर्वज्ञोजितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः॥

३. अन्न ब्रह्मेतिव्यजानात्। अन्न न निन्द्यात्। अन्न न प्रत्याचक्षीत। अन्नं बहु कुर्वीत। तैत्तिरीय उपनिषद भृगुवल्ली प्रथम अनुवाक।

४. (क) मनुस्मृति पचम अध्याय, श्लोक १७-२४ तक।
(ख) मनुस्मृति अध्याय ६, पद्य १५६

कठोर व्रतों की व्यवस्था की है। अतः कुमार संभव के पाँचवे सर्ग में पार्वती की कठोर तपस्या का जो सुन्दर चित्रण कवि ने किया है और रघुवंश के आठवें सर्ग के अन्त में अज द्वारा[1] आमरण उपवास करते हुए, उसके शरीर त्याग का वर्णन किया है वह उस समय के समाज पर जैन धर्म के प्रभाव को सूचित करता है।

९. उत्सव तथा मनोरंजन

अभिज्ञान शाकुन्तल के छठे अंक मे सानुमती अप्सरा ने कहा है कि 'मानव उत्सवों के बड़े प्रेमी होते हैं।' प्राचीन भारत में ऋतु ऋतु के अपने उत्सव थे उनमें भी वसन्तोत्सव का विशेष महत्त्व था। इन उत्सवों को बड़ी धूम धाम से मनाया जाता था। इनके साथ मिष्टान्नादि उत्तम भोजनों की व्यवस्था होती थी। स्त्रियाँ पति की दीर्घायु, पुत्र की दीर्घायु, पति का प्रेम प्राप्त करना आदि अनेक प्रयोजनों से व्रत रखती थी और उनकी समाप्ति बढ़िया भोजन के साथ होती थी। ऐसे अवसरों पर ब्राह्मण देवता की पाँचो घी मे रहती थी। चित्रकला, नाचना, गाना बजाना आदि मनोरंजन के साधन थे। शिकार भी खेला जाता था। मदिरा पान का भी काफी रिवाज था। स्त्रियाँ भी इससे बची न थी। मालविकाग्निमित्र नाटक मे रानी इरावती तथा कुमार संभव मे पार्वती के मदिरा पान का वर्णन कवि ने किया है। तोता, मैना, मोर आदि पक्षी तथा हरिण आदि पशु भी मनोरंजन के लिए पाले जाते थे। मन्दिरों तथा उत्सवों मे वेश्या नृत्य भी बहुत प्रचलित था।

१०. समाज में स्त्रियों की स्थिति

(क) **स्त्रियों की स्वतन्त्रता**--कालिदास के समय गृहस्थाश्रम चारों आश्रमों में श्रेष्ठ[2] समझा जाता था। गृहस्थाश्रम का आधार सत्पत्नी थी क्योंकि गृहस्थ उसी की सहायता से अपने धार्मिक अनुष्ठान चला सकता था। शिवजी द्वारा बुलाए जाने पर जब सप्तर्षि उनके स्थान पर पहुंचे तो वसिष्ठ जी के वामपार्श्व मे देवी अरुन्धती[3] के दर्शन कर उन्हे गृहस्थाश्रम की महिमा का

---

१. रघुवश सर्ग ८, पद्य

२. (क) कालोऽह्यय संक्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षम माश्रमं ते।
रघु० सर्ग ५ का पद्य

(ख) यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैवधार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥ मनु० अध्याय ३ पद्य ७८

३. तद्दर्शनादभूच्छंभोर्भूयान्दारार्थ मादरः।
क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूल कारणम्। कुमार सर्ग ६ पद्य १३

अनुभव हुआ और उन्होने विवाह का निश्चय कर लिया। उनके इस निश्चय से प्राजापत्य[1] महर्षियों का सिर भी ऊचा हो गया जो विवाह कर लेने के कारण ही अपने आपको दूसरों से कुछ हीन समझने लगे थे। समाज मे स्त्रियों को सम्मानास्पद पद प्राप्त था यद्यपि वैदिक युग की अपेक्षा वह कुछ हीन हो गया था। वे शिक्षित होती थी और उनकी शिक्षा मे इतिहास पुराण चित्रकला तथा नृत्य सगीत आदि पर विशेष बल दिया जाता था। वे पति के साथ तो यज्ञादि धार्मिक कृत्यो मे भाग लेती ही थी, किन्तु पार्वती[2] को कुमारी दशा मे भी हम अग्नि होत्र और स्वाधाय करती देखते है। अपने लिए पति के चुनाव मे उन्हें पर्याप्त स्वतन्त्रता थी। इन्दुमती ने जिस किसी राजा के पल्ले बाँध दिए जाने की अपेक्षा स्वयवर[3] को पसन्द किया था और पार्वती जी ने स्पष्ट ही कह दिया था कि वे शिव जी से ही विवाह करेगी। उनके माता पिता ने उन्हे यहां तक छूट दे दी थी कि वे शिव जी[4] के निकट ही कुटिया बनाकर रहे और सेवा कर उन्हे प्रसन्न करले। स्त्रिया राजदरबारो मे आती थी और राजा के साथ रानिया भी राजसिहासन पर बैठती थी। रघुवंश के चौदहवे सर्ग मे कवि ने वर्णन किया है कि राज्याभिषेक हो चुकने पर जब रामचन्द्र जी अपने मित्रो—सुग्रीव विभीषण आदि को विदा करने लगे तो सीता जी[5] ने अपने हाथो से उन्हे बढ़िया

१. तस्मिन् सयमिना माद्ये जाते परिणयोन्मुखे।
जहु. परिग्रहव्रीडा प्राजापत्यास्तपस्विन॰ ॥ कुमार सर्ग ६ पद्य ३४

२. कृताभिषेकां हुतजातवेदस त्वगुत्तरासगवतीमधीतिनीम्।
दिदृक्षव स्तामृषयोऽभ्युपागमन् न धर्मवृद्धेषु वय. समीक्ष्यते ॥
कुमार सर्ग ५ पद्य १६

३ स्थाने वृता भूपतिभिः परोक्षै. स्वयंवरं साधुम मस्त भोज्या।
पद्येव नारायण मन्यथा सौ लभेत कान्त कथमात्मतुल्यम्।
रघु० सर्ग० ७ पद्य १३

४ अनर्धमर्घ्येणतमद्रिनाथ. स्वर्गौकसामर्चितमर्चयित्वा।
आराधना यास्य सखी समेता समादिदेश प्रयतातनूजाम् ॥
कुमार सर्ग १ पद्य ५८

५ प्रति प्रयातेषुतपो धनेषु सुखादविज्ञातगतार्धमासान्।
सीतास्वहस्तोपहृताग्र्यपूजान् रक्षः कपीन्द्रान् विससर्जरामः।
रघु सर्ग १४ पद्य १९

उपहार भेट किए थे। और राजा अग्निवर्ण की मृत्यु हो जाने पर उसकी रानी[1] का विधिवत् राज्याभिषेक किया गया था।

(ख) बहु विवाह तथा सती प्रथा

राजाओं तथा धनी परिवारो में बहुविवाह भी प्रचलित या। कोई कोई स्त्री अपने पति के साथ सती भी हो जाती थी। कुश की पत्नी कुमुद्वती सती हुई थी। वह नागवंश की कन्या थी। सभव है कि नाग जाति में सती प्रथा का प्रचार अधिक रहा हो क्योंकि कामदेव की पत्नी रति सती नही हुई। सीता तथा अग्निवर्ण को रानी के विषय मे तो कहा जा सकता है कि वे गर्भवती थी किन्तु रति के विषय मे नही। कन्या को परायाधन समझा जाता था और उसके लिए योग्यवर की चिन्ता माता पिता को सताती थी यह बात कण्व के उद्‌गार से प्रकट होती है। युवक युवतिया प्रेम विवाह भी कर लेते थे और उनके माता पिता उसे स्वीकार करते थे किन्तु कालिदास गुप्त गान्धर्व विवाह के विरुद्ध प्रतीत होता है और उसने अपना यह मत शाकुन्तल में प्रकट किया है।

११. पुत्र

उस समय के समाज मे पुत्र का अत्यधिक महत्त्व था क्योकि वही श्राद्ध तर्पण आदि द्वारा पितरो का उद्धार कर सकता था। निःसन्तान मर जाना बहुत बुरा समझा जाता था क्योकि पुत्र ही पितृ ऋण से मुक्ति का साधन था। रघुवश के प्रथम तीन तथा दसवे सर्ग मे पुत्र की महिमा का वर्णन कवि ने मार्मिक शब्दों में किया है। कुमार संभव का तो विषय ही पुत्र जन्म है, और शकुन्तला नाटक का उपसंहार भी पुत्र प्राप्ति के साथ दिखाया गया है। योग्य पुत्र पर परिवार का उत्तरदायित्व डाल वानप्रस्थ होने का वर्णन करना कालिदास का प्रिय विषय है।

१२. (क) नैतिक परिस्थिति

वक्रम सम्बन्धी लोक गाथाओं मे एक तत्त्व ऐसा है जो प्रायः सब कथाओं में समान है। घूम फिर कर यह बात प्रायः आ जाती है कि विक्रमादित्य अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि तथा न्यायपरायण राजा थे। कैसा भी चक्करदार मामला क्यों न हो, वे उसकी तह में पहुंच जाते और

---

१. तंभावार्थं प्रसव समयाकांक्षिणीनां प्रजाना
मन्तगूर्ढक्षितिरिव नभोबीजमुष्टिदधाना।
मौलैः सार्धं स्थविर सचिवैर्हेमसिंहासनस्था
राज्ञो राज्यं विधि वदशिषद् भर्तुरख्याहताज्ञा॥
रघु० सर्ग १९ पद्य ५७

उनका न्याय दूध को दूध तथा पानी को पानी कर देता था। यह भी प्रसिद्ध है कि उनका जीवन बहुत सादा तथा तपस्यामय था। वे रात्रि के समय वेश बदल कर निकल जाते तथा छिपे अपराधियों की टोह लगा, उन्हें दण्ड देते थे। दीन दुखियो या पीडितों की सहायता के लिए, आवश्यकता आ पड़ने पर, वे अपनी जानपर भी खेलने को तय्यार रहते थे। प्रजा को वे अपनी संतान के समान प्यार करते और उसका पालन करते थे। उनकी दण्ड-व्यवस्था यद्यपि कठोर थी किन्तु उसके प्रयोग का अवसर कदाचित् ही आता था, क्योंकि सुशासन के कारण प्रजा सुखी और समृद्ध थी। वह उन अभावों से मुक्त थी जिनसे विवश होकर लोग अपराध करते है। राजकर्मचारी इतने सतर्क रहते थे कि अपराधी प्रवृति वाले लोगो के मन मे अपराध का विचार उठते ही उनकी अन्तश्चक्षु के सामने राजा का दण्डधारी रूप प्रकट हो जाता था। कालिदास की रचनाओं मे, उस समय के समाज की नैतिक दशा का जो चित्र उपलब्ध होता है वह बहुत कुछ इनसे मिलता जुलता है।

(ख) कालिदास के ग्रन्थों में नैतिक स्थिति का दिग्दर्शन

राजा दिलीप के विषय में कवि ने लिखा है कि उसमे भयानक जल जन्तुओं और सुन्दर रत्नो से भरे समुद्र[1] की तरह, राजोचित कठोर तथा कोमल गुणो का सुन्दर समन्वय था जिसके कारण लोग उससे डरते भी थे और उसकी सेवा भी करते थे। उसके घर मे पुत्र ने जन्म लिया, तब जेलखानो मे कोई कैदी[2] न था जिसे वह छोड़ देता। प्रजा के रक्षक इस दिलीप की बराबरी कोई अन्य राजा नही कर सकता था क्योकि इसके राज्य में चोरी[3] का नाम तो भले ही सुनाई पड़ जाए पर पराये धन को कोई छू नही सकता था। सत्पुरुष चाहे विरोधी हो तो भी कडवी औषधी की तरह वह उसका सत्कार करता था किन्तु दुष्ट पुरुष कितना ही निकट का सम्बन्धी हो, वह उसे साप काटी[4] उगली की तरह अलग कर देता था। उसके लिए राजभवन ऋषि आश्रम के समान था और वह उसमे मुनि[5] की तरह रहता था। उसके

---

१. रघुवश सर्ग १ पद्य १६।
२. रघुवंश सर्ग ३ पद्य २०।
३. रघु० सर्ग १ पद्य २७।
४. रघु० सर्ग १ पद्य २८।
५. रघु० सर्ग १ पद्य ५८।

राज्य में प्रजा को दैवी या मानुषी विपत्तियां पीड़ित नहीं करती थी और सभी लोग सुखी दीर्घ[1] जीवन का उपभोग करते थे। राजा का ऐसा प्रताप था कि रात्रि के समय, अपने प्रेमियों के स्थान से लौटती हुई वेश्याएं यदि थक कर आधे रास्ते में ही आराम करने को रुक जाती और उन्हें नींद दबा लेती तो वायु भी उनके वस्त्रों को इधर उधर न कर सकती थी, किसी द्वारा छेड़ छाड़ की तो बात ही क्या? अपराधी को दण्ड देने की अपेक्षा अपराधों को रोकने पर अधिक ध्यान दिया जाता था।

(ग) वेश्याएं पुत्रजन्म, विवाह, राज्याभिषेक आदि मागलिक तथा प्रसन्नता के अवसरों पर वेश्या नृत्य का रिवाज था। दरबारों में राजा पर छत्र चामर आदि धारण करने का कार्य भी वे ही करती थीं। पूर्व मेघ के २७ वे पद्य में वेश्याओं के साथ नगर के छैला लोगो के व्यवहार का जो वर्णन हुआ है उससे ज्ञात होता है कि युवक बहुत बडी संख्या मे इस व्यसन के शिकार हो जाते थे और वे इसे लज्जाजनक न समझते थे। जो धनी नवयुवक अधिक स्त्रियों को अपनी ओर आकृष्ट कर सकता था वह समाज मे सुभग समझा जाता था और इस प्रकार का सौभाग्य गौरव का कारण माना जाता था। इस में परस्पर होड़ भी हो जाती थी। पूर्व मेघ के २९ वे पद्य में निर्विन्ध्या नदी का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि गर्मी के इन दिनो तुम्हारे वियोग मे वह बहुत दुबली हो गई है इससे पता चलता है कि तुम सुभग हो। उत्तर मेघ के ३१वे पद्य मे यक्ष मेघ को कह रहा है कि मै अपने आपको मिथ्या सुभग समझ कर ही ये बाते नही कह रहा हूँ, तुम अभी देख लोगे कि मै जो कुछ कह रहा हूँ वह अक्षरशः सत्य है। कुमारसंभव मे ब्रह्मचारी जी शिव की निन्दा करते हुए कहते हैं कि हे पार्वती तुम जिस पर मर रही हो, मालूम होता है कि उसमें सौभाग्य का मद तो है ही नही, तभी तो वह बांके कटाक्षों वाले तुम्हारे इन चंचल लोचनों के सम्मुख एक दम प्रकट नहीं हो जाता। मेघदूत में अन्य भी कई ऐसे उद्गार देखने को मिलते है जिनमें कवि ने प्रेमी के मुख से दाम्पत्य जीवन के अनेक गोपनीय व्यवहारों का वर्णन करवा दिया है जिन्हे आज का समाज अशोभन कह सकता है किन्तु हम उसे कवि पर तात्कालिक समाज की रुचि का प्रभाव ही समझते है। कालिदास के ग्रन्थों में अपने चरित्र की रक्षा में सदा तत्पर कुलीन कन्याओं और विवाहिता नारियों के सुन्दर चित्रों की भी कमी

---

१. रघु० सर्ग १ पद्य ६३।

नहीं। अभिज्ञान शाकुन्तल के छठे अंक में राजा ने शकुन्तला के विषय में कहा था कि "वैसी पतिव्रता देवी को भला कौन छू सकता है ?" और कुमार संभव में ब्रह्मचारी वेषधारी शिव ने पार्वती को कहा था कि कोई तुम पर कुदृष्टि डाले यह तो संभव ही नही क्योंकि साँप की मणि को छीनने का दुःसाहस भला कौन कर सकता है ?

(घ) मद्यपान शराब को यद्यपि दुर्व्यसन समझा जाता था किंतु लोग उससे सर्वथा बचे हुए न थे। रघुवंश के ९वे सर्ग मे दशरथ के प्रसंग में कवि ने लिखा है कि उसे शिकार, जूआ या शराब का व्यसन न था किंतु उसी काव्य के सातवे सर्ग के ११वे पद्य में हम उन स्त्रियों का वर्णन पढ़ते हैं जिनके मुख से आसव का मधुर गन्ध फैल रहा था। कुमार संभव के ८वें सर्ग में शिव जी अपने हाथ से पार्वती को वह मधु पिलाते हैं जो गन्ध मादन पर्वत की वन देवता उनके लिए वहाँ ले आई थी।

(ङ) रिश्वत रिश्वत देने या राजकर्मचारी द्वारा बलात् रिश्वत लेने का भी एक मनोरंजक दृश्य हम अभिज्ञान शाकुन्तल मे देखते है।

१३. (क) साहित्यिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि कालिदास के जन्म से पूर्व ही प्राचीन वैदिक धर्म अपना नया रूप ले चुका था। जिसका प्रधान आधार वर्णाश्रम व्यवस्था थी। कालिदास ने अनेक स्थलो पर अपने नायको द्वारा गृहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थाश्रम मे प्रवेश का सुन्दर वर्णन किया है, और जहाँ तहाँ पुंसवन, चडाकर्म, उपनयन आदि सोलह सस्कारो का निर्देश भी किया है। वह युग ऐसा संधिस्थल था जब यज्ञ-यागादि का स्थान शिव, विष्णु, स्कन्द आदि देवताओं की मूर्त्तियों की पूजा ग्रहण करती जा रही थी। उच्चवर्ग के लोगों की भाषा सस्कृत थी। दरबारो तथा साहित्य के क्षेत्र मे भी उसे प्रधान स्थान प्राप्त हो चुका था। किंतु घरो में स्त्रियाँ तथा दास-दासी आदि प्राकृतो का भी प्रयोग करते थे। उत्तर तथा पश्चिमोत्तर भारत मे बौद्धों की महायान शाखा अपना साहित्य सस्कृत भाषा मे ही लिख रही थी।

(ख) शिक्षा इस युग मे वेद का अध्ययन उसके छः अगों—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष के साथ किया जाता था। ब्राह्मण, उपनिषद, सूत्र ग्रन्थ, रामायण, महाभारत और सांख्यादि दर्शन पाठ्यक्रम के अन्तर्गत थे। पाणिनि के

व्याकरण पर कात्यायन अपना वार्त्तिक तथा पतंजलि महाभाष्य लिख चुके थे। महाभाष्य से ऐसे अनेक काव्यों का भी पता चलता है जो आज उपलब्ध नही। उसमें कंस वध आदि नाटकों का भी उल्लेख है जो रंगमंच पर खेले जाते थे। भारत में प्राचीन काल से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—चारों को ही उपादेय समझा जाता रहा है और उनका समयानुसार उचित मात्रा में सेवन आवश्यक कहा गया है। अतः प्रत्येक के लिए अलग ग्रन्थों की भी रचना होती रहती थी। धर्म को लेकर मनु आदि के धर्मशास्त्र तथा अर्थ के विषय में कौटिल्य आदि के अर्थशास्त्र बने। काम विषय पर भी अनेक शास्त्र लिखे गए जिनमें से वात्स्यायन का काम शास्त्र आज भी उपलब्ध है। इसके सम्बन्ध में कीथ महाशय के कुछ वाक्य यहाँ उद्धृत करने आवश्यक प्रतीत होते है क्योंकि वे उस नागरिक जीवन पर विशेष प्रकाश डालते हैं—जिसने कालिदास की रुचियों, भावनाओं तथा उसकी काव्य कला को बहुत अधिक प्रभावित किया था तथा जिसका वर्णन उसके ग्रथों में हुआ है।

"कामसूत्र और कवि का वातावरण—वात्स्यायन के काम सूत्र का समय अनिश्चित है, तो भी उसका काल कालिदास से प्राचीन होना असभव नहीं है। यह तो निश्चित ही है कि काम शास्त्र विषयक प्राचीनतर ग्रन्थो का सार लेकर इसे बनाया गया है। शृंगार-प्रधान कविता के लेखकों के लिए इस विषय का ज्ञाता होना अत्यावश्यक समझा जाता था, अतः जो कवि बनना चाहते थे वे व्याकरण, अलंकार, और कोष के समान ही इस सूत्र का भी अध्ययन करते थे। भारतीय जीवन के वैभव पूर्ण विस्तार मे स्वभाव से ही विकसित उस नागरक के स्वरूप का विशद चित्रण हमें वात्स्यायन से प्राप्त होता है जिसके मनोरंजन के लिए कवि अपनी रचनाएँ प्रस्तुत किया करते थे। नागरक संपत्तिशाली तथा प्रायः शहर का रहने वाला होता था। उसके भवनो मे उस युग की समस्त सुख सामग्री—मुलायम गद्देदार पीठिकाएँ, ग्रीष्मगृह, उसका दिल बहलाव करने वाली रमणियों के लिए झूले—संचित रहती थी। उसका बहुत सा समय उसके बनाव ठनाव मे ही व्यय हो जाता था। उसके शरीर में तेल की मालिश और बढ़िया उबटन लगाए जाते थे। स्नान कर वह पुष्पमालाएँ धारण करता और इतर फुलेल लगाता था। फिर वह घर के पालतू पक्षियों से मनोविनोद करता या मेढ़े और मुर्गों के युद्ध देखता था। वह वेश्याओं के साथ नगर के उपवनों में भ्रमणार्थ जाता था और वहाँ उन द्वारा बीने गए फूलो के हारों से भूषित होकर लौटता था। संगीत गोष्ठियों, नृत्यों और अभिनयो मे भी वह जाता था।

वीणा उसके पास पड़ी रहती थी, मन करते ही वह उसे बजा लेता या कोई पुस्तक पढ़ने लगता। समय-समय पर उसका मनोरंजन करने वाले तथा प्रेम-लीलाओं मे सहायता करने वाले विट विदूषक आदि छैल-छबीले दोस्त भी उसके साथ लगे रहते थे। शराब के दौर चलते थे। नागरक सुसंस्कृत व्यक्ति होता था अतः उसके व्यवहार मे प्रायः उच्छृंखलता या फूहड़पन नही आने पाता था। अपने आमोदो प्रमोदो मे वह नागरोचित भद्रता, संयम तथा मर्यादा का ध्यान अवश्य रखता था। वह प्राकृत भाषा भी बोल लेता था किंतु मुख्यतया उसकी भाषा संस्कृत ही थी। वेश्याओं का संपर्क उसके लिए आवश्यक सा था। किन्तु वे वेश्याएँ भी गुण सम्पन्न होती थी, ऐसी वैसी नही। साहित्यिक योग्यता के साथ-साथ वे सब कलाओं में कुशल तथा बहुज्ञ होती थी। मृच्छकटिक की नायिका के भवन के वर्णन से ज्ञात होता है कि उनके पास विपुल सपत्ति होती थी। साथ ही पेरिक्लीज़ के समय की एथन्स नगरी की तरह उनके भवनो मे जुटने वाली साहित्य सगीत और कलाओ की गोष्ठियो मे जो आह्लाद प्राप्त होता था उसकी आशा वे अपने घर की स्त्रियो से नही कर सकते थे। वे तो केवल सतानोत्पत्ति और घर की देखभाल के ही लिए होती थी।"

(ग) नाट्य शास्त्र, नाटक तथा नृत्य आदि

कालिदास को भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का ज्ञान था। विक्रमोर्वशीय नाटक मे उसने इन्द्र सभा में एक नाटक के खेले जाने का वर्णन किया है जिसके लेखक तथा सूत्रधार भरत[1] स्वय थे। उसने अपने नाटक मालविकाग्नि मित्र में पूर्ववर्ती नाटककार भास[2] सोमिलक कवि पुत्र आदि को स्मरण किया है। इसी नाटक से यह भी पता चलता

---

१. मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाश्रयो निबद्धः।
ललिताभिनयं तमद्य भर्ता मरुता द्रष्टुमना. सलोकपालः।
विक्रमोर्वशीय अंक २, पद्य १७

२ मा तावत्प्रथित यशसा भाससौमिलक कवि पुत्रादीनां प्रबन्धा नतिक्रम्य वर्तमान कवे. कालिदासस्य क्रियायां कथं बहुमानः।
(मालविकाग्नि मित्र की प्रस्तावना)

है कि उस समय नृत्यकला भी बहुत उन्नत दशा में थी। मालविका[1] ने अग्निमित्र की एक गोष्ठी में परिष्कृत नृत्य, सूक्ष्म भावाभिनय और मधुर संगीत के कुशल मिश्रण का अद्भुत दृश्य उपस्थित कर दिया था।

(घ) अर्थशास्त्र तथा ललित-कलाएँ

कवि ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का भी अध्ययन किया था और राजनीति सम्बन्धी विचारों में वह इससे बहुत प्रभावित हुआ था इसके अनेक प्रमाण[2] उसके ग्रंथो मे मिलते है। उसके समय तक मौर्यकालीन तथा शुंग युग की वास्तुकला एवं मूर्तिकला और भी अधिक परिष्कृत हो गई थी। कई-कई मंजिल के सोपान युक्त भवन बनाए जाते थे। उनके स्तम्भ पत्थर के होते थे और उन पर तरह-तरह की मूर्तियाँ तथा फूल-पत्तियाँ आदि खोदे जाते

---

१. परिव्राजिका—यथादृष्ट सर्वमनवद्यम्। कुतः—
अंगैरन्तर्निहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थ
पादन्यासो लयमनुगतस्तन्मयत्वं रसेषु।
शाखा योनिर्मृदुरभिनयस्तद्विकल्पानुवृत्तौ
भावो भावं नुदति विषयाद्रागबन्धः स एव।
(माल० अंक २ पद्य ८)

२. (क) उदकान्ते सैन्य मासीत। मत्स्य ग्राहविशुद्धमवगाहेत।
(अर्थशास्त्र पृ० ४४)
स तीर भूमौ विहितोपकार्या मानायिभिस्तामपकृष्ट नक्राम्।
विगाहितुं श्री महिमानुरूपं प्रचक्रमे चक्रधर प्रभाव॥
रघुवंश सर्ग १६ पद्य ५५॥

(ख) चललक्ष्य परिचयार्थ मृगयारण्यं गच्छेत्॥ अर्थशास्त्र पृ० ४४॥
परिचय चललक्ष्य निपातने भयरुषोश्च तदिंगितवेदनम्।
श्रमजयात्प्रगुणां च करोत्यसौ तनुमतोनुमतः सचिवैर्ययौ॥
रघु० सर्ग ९ पद्य ४९॥
मेदश्छेदकृशोदरं लघुभवत्युत्थान योग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्ष स च धन्विना यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले····
शाकु० अंक २ पद्य ५॥

थे। भवनों की दीवारों पर बड़े-बड़े चित्र बनाए जाते थे उजाड़ अयोध्या के वर्णन में, रघुवश के सोलहवे सर्ग मे, इसी प्रकार के एक सुन्दर[1] चित्र दृश्य का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है कि सरोवर में कमल खिल रहे हैं, वहाँ हथिनियों के साथ हाथी क्रीड़ा कर रहा है। हथिनियाँ अपनी सूड से मृणाल तोड़ कर प्रेम से हाथी को खिला रही हैं और इन हाथियों को सचमुच के समझ कर शेर ने क्रुद्ध होकर तोड़ डाला है। भवनो में बावलिया बनाने का भी बहुत प्रचलन था जिनमे कमल खिलते, हस तैरते और स्त्रियाँ जल-क्रीड़ा किया करती

(ग) भूतपूर्वमभूतपूर्व वा जनपद परदेशाप वाहनेन
स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा निवेशयेत् (कौटल्य पृ० ४५॥)
स्वर्गाभिष्यन्द वमन कृत्वेवोपनिवेशितम् ॥ कुमार सर्ग ६ पद्य ३७॥

(घ) अग्न्यगारगत कार्य पश्येद्वैद्यतपस्विनाम् ।
पुरोहिताचार्य सख प्रत्युत्थायाभिवाद्य च ॥ कौटिल्य पृ० ३९॥
अभिज्ञान शाकुन्तल का ५वाँ अक—यज्ञशाला में पहुँच कर, पुरोहित के साथ राजा का कण्वशिष्यो से मिलना।

(ङ) धर्मार्थाऽविरोधेन काम सेवेत ।····एकोह्यत्या सेवितो धर्मार्थकामानामितरौ पीडयति ॥ कौटिल्य पृ० १२ ॥
न धर्म मर्थ कामाभ्यां बबाधे न च तेन तौ।
नार्थकामेन काम वा सोर्थेन सदृशस्त्रिषु ॥ रघु० सर्ग १७ पद्य ५७॥

(च) ब्राह्मणेनैधित क्षत्र मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम् ।
जयत्यजित मत्यन्तं शास्त्रानुगमशस्त्रितम् ॥ कौ० पृ० १६॥
तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात् प्रशमितारिभि.
प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टलक्ष्यभिद शरा. ॥ रघुवश सर्ग १ पद्य ६१॥

(छ) वृत्तचौलकर्मा लिपि सख्यान चोपयुजीत ॥ कौटिल्य पृ० १०॥
स वृत्त चूलश्चल काकपक्षकैरमात्यपुत्रै. सवयोभिरन्वित ।
लिपेर्यथावद् ग्रहणेन वाङ्मय नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत् ॥
रघु सर्ग ३ पद्य २८ ॥

१ चित्रद्विपा पद्म वनावतीर्णा करेणुभिर्दत्तमृणाल भङ्गा. ।
नखाकुशा घात विभिन्न कुम्भा सरब्धसिह प्रहृतं वहन्ति ॥
रघु० सर्ग १६ पद्य १६॥

थी। उद्यानों मे धारा-गृह भी बनाए जाते थे जिनमें जल यन्त्र चलते थे और उनके शीतल कुंजो मे प्रेमी युगल ग्रीष्म की दोपहर बिताया करते थे।

कवि के नायक नायिका चित्रकला मे भी अत्यन्त निपुण होते थे जो किसी व्यक्ति या दृश्य को एक बार देखकर चित्रपट पर उसका चित्र ठीक वैसा ही बना सकते थे। कालिदास के समय तक वे सुन्दर प्रस्तर वेदियाँ और तोरण द्वार और कलापूर्ण स्तम्भ बन चुके थे जिन पर अंकित जातक कथाओ के भव्य चित्र आज भी पुराने भग्नावशेषों में देखे जा सकते है।

१४. कालिदास का जन्म तथा शिक्षा

विक्रम सवत् के प्रारम्भ से लगभग २०, २५ वर्ष पूर्व (७०, ७५ ई० पूर्व) हिमालय पर्वत के किसी ऐसे प्रदेश मे इस महाकवि का जन्म हुआ जहाँ गगा भी साथ बहती है। वह स्थान वर्त्तमान गढ़वाल के अन्तर्गत टीहरी या श्रीनगर के निकट था कालिदास ने अपने जन्म से किसी ऐसे कुलीन ब्राह्मण परिवार को महिमा प्रदान की जिसमें शास्त्रों के अध्ययन अध्यापन की परम्परा कई पीढियो से चली आ रही थी। वह शैव धर्म का उपासक था किन्तु अन्य धर्मों मे भी श्रद्धा रखता था। उसमे आचार विचार की शुद्धता का बहुत ध्यान रक्खा जाता था। घर तथा ग्राम के ऐसे वातावरण मे बालक की शिक्षा-दीक्षा का श्रीगणेश हुआ और उसके चूड़ा कर्म, उपनयन आदि सस्कार विधिवत् संपन्न हुए। उसने शीघ्र ही व्याकरण कोष, निरुक्त, कर्मकाण्ड, छन्द, ज्योतिष दर्शन, रामायण, महाभारत, पुराण, धर्म शास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, नाट्य-शास्त्र तथा काव्य नाटक आदि का अध्ययन कर लिया। सभव है कि २०, २२ वर्ष की आयु मे ही उसका विवाह भी हो गया और अब उसे किसी अच्छी जीविका की चिन्ता हुई। ब्राह्मणो की कुल क्रमागत पुरोहित वृत्ति तथा पठन-पाठन का व्यवसाय तो परिवार मे चलता ही था किन्तु इस नव-युवक का महत्त्वाकांक्षी तथा स्वातन्त्र्य प्रेमी हृदय उससे सतुष्ट न हो सका क्योंकि निष्प्राण कर्मकाण्ड से उसे विशेष विरक्ति थी और वह समझता था कि उसके सूक्ष्म विधि-विधानो के चक्कर में पड़कर मनुष्य वेदाभ्यास-जड़ हो जाता है, अतः वह साहस कर विस्तृत जगत् मे अपने भाग्य की परीक्षा के लिए निकल पड़ा।

उन दिनो उज्जयिनी और उसके राजा विक्रमादित्य की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। प्रसिद्ध था कि राजा विद्वानों का आदर करता है और कोई भी उसके द्वार से खाली हाथ नही लौटता। अतः युवक कालिदास भी इसी उद्देश्य

(ख) प्रवास तथा उज्जयिनी में आगमन

से अनेक प्रदेशों का भ्रमण करता, और वहाँ की विद्वद् गोष्ठियो का आनन्द उठाता, अन्तमे उज्जयिनी पहुँच गया । वहाँ कवि के इष्ट देव महाकाल का विशाल मन्दिर था, जहाँ प्रात. साय बडी धूमधाम से पूजा होती थी, नगाड़े बजते थे, भक्त जन गाते थे और वेश्याएँ नृत्य करती थी । कालिदास ने भी वहाँ पहुँच कर बड़ी भक्ति से शिव के चरणो मे प्रणाम किया और भावी जीवन मे सफलता की प्रार्थना की । इस लम्बे भ्रमण से उसके अनुभव मे बहुत वृद्धि हुई। तरह-तरह के लोगो के सपर्क मे आने से उसे उनके स्वभाव के सूक्ष्म अध्ययन का अवसर मिला । विभिन्न प्रदेशों, बनो, पर्वतो, नदियो और ऋतु-ऋतु मे उनके परिवर्तित प्राकृतिक दृश्यों को उसने अपनी आँखों से देखा। उन दिनो यात्रा करना हसी खेल न था, जगली जन्तुओं का भय तो पद-पद पर लगा ही रहता था और व्यापारी काफलो तथा यात्रियो को लूटने वाले डाकुओ की भी कमी न थी । भोजन तथा विश्राम की सुविधा का तो कहना ही क्या ? किन्तु इन बातो से भी कालिदास ने कुछ सीखा ही ।

(ग) साहित्य रचना ऋतु संहार

कालिदास गौरवर्ण का सुन्दर युवक था उसका माथा ऊँचा, नाक नुकीली तथा आँखे तीखी थी। उसका रूप तथा वेष राजकुमार सा था। वह भूतल पर अवतीर्ण साक्षात् इन्द्र सा प्रतीत होता था। उसे जो भी देखता, वह प्रभावित हुए बिना न रहता । उस पर भी उसकी वाग्मिता तथा समयोचित सूझ-बूझ ने उसे और भी अधिक आकर्षक बना दिया था। उसके इन गुणो के कारण उज्जयिनी के धनी मानी परिवारो मे वह शीघ्र ही सर्वप्रिय हो गया, और उनके द्वारा राजभवन के द्वार भी उसके लिए खुल गए । अब उसे भोजन तथा निवास की चिन्ता न सताती थी अतः प्राथमिक आवश्यकताओं से मुक्त होते ही उसकी नैसर्गिक प्रतिभा फूट निकली और उसने अपनी प्रथम रचना ऋतु सहार का निर्माण किया। इस खण्ड काव्य में उसने कही-कही अपनी यात्रा के कष्टों का अस्पष्ट सकेत किया है किन्तु मुख्यता विभिन्न ऋतुओं और उनके अनुकूल धनी-मानी नागरिकों के उन आमोद प्रमोदो के वर्णनो की है जिन्हे वह प्रति-दिन के जीवन में देखता था और कभी-कभी उनमें भाग भी लेता था।

सुन्दर रूप, नई जवानी, एश्वर्य सुख और इन सबके उपर राजकृपा—इन

---

१. देखो—भोजप्रबन्ध पृ० ५२ (बैंकटेश्वर प्रेस० संवत् २००९ ।)

परिस्थितियों में यदि प्रेम के देवता ने भी उस पर अनुग्रह कर दिया हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। नहीं कह सकते कि वे कौन-सी पौराङ्गनाएँ थी जिनके चंचल चितवनों की चाह, उज्जयिनी छोड़ने के बहुत दिन बाद तक भी उसके चित्त में बनी रही और जिनके कारण उसने मेघ से आग्रह किया कि वह उज्जयिनी जाकर उनका आनन्द अवश्य ले।

उज्जयिनी विदिशा से दूर नही। यद्यपि शुंग वंश अस्तोन्मुख था तो भी विदिशा का गौरव तब तक शेष था। संभवत: कुछ ऐसे बड़े-बूढ़े लोग तब भी जीवित थे जिन्होंने पुष्यमित्र द्वारा वैदिक धर्म की पुनः स्थापना के दृश्य को अपनी आँखों से देखा था और जिन्होंने इस परिवर्तन को पसन्द किया था। वे उक्त घटना की जो

(घ) राजाश्रय माल-विकाग्नि मित्र नाटक की रचना

मनोरंजक कहानियाँ सुनाया करते थे उनसे कवि को मालविकाग्निमित्र नाटक लिखने की प्रेरणा मिली। उन दिनों विदर्भ तथा विदिशा में कुछ विरोध चल रहा था। विदर्भ के शासक यज्ञसेन का साला मौर्यवंशीय था जिसे अग्निमित्र ने कैद कर लिया था। इसका कारण शुंगों तथा मौर्यों की पुरानी शत्रुता ही रही होगी। यज्ञसेन के भाई माधवसेन ने अग्निमित्र से मित्रता कर ली और अपनी बहिन का रिश्ता उससे कर दिया। इस राजनीतिक पृष्ठभूमि पर अग्निमित्र तथा विदर्भ के राजकुमार माधवसेन की बहिन मालविका के प्रेम और विवाह की कहानी इस नाटक का वर्णनीय विषय है। नाटक को जनता ने खूब पसन्द किया जिससे कवि का उत्साह बढ़ा और राजा का ध्यान भी उसकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो गया।

राजदरबार में आने-जाने की सुविधा प्राप्त हो जाने पर कवि ने अपनी प्रतिभा तथा अन्यगुणो से राजा विक्रमादित्य को अत्यधिक प्रभावित किया और वह उसकी राजसभा का मुख्य रत्न बन गया। विक्रमादित्य की किसी विशेष सफलता या विजय के उपलक्ष मे कवि ने अपने दूसरे नाटक विक्रमोर्वशीय की रचना की। पहले कहा जा चुका है कि इस नाटक मे विक्रम नाम का पात्र नही है फिर भी नाटक का नाम 'विक्रमोर्वशीय'[1] रखने मे कोई विशेष कारण अवश्य होना चाहिए।

१. विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अंक में आये अपभ्रंश पद्यो की भाषा के आधार पर कालिदास के काल का विचार ठीक नहीं। ये भाग निश्चित रूप से पीछे की मिलावट है। इन अंशों का अपने पूर्वापर संस्कृत सन्दर्भों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।

राज्याश्रय प्राप्त हो चुकने पर कवि को अपने निवास स्थान से बहुत दूर मध्यभारत मे उज्जयिनी या विदिशा आदि स्थानो मे रहना पडता था। यात्रा की असुविधाओं के कारण वह कभी-कभी ही अपने घर आकर पारिवारिक सुख का अनुभव कर पाता था। उस युग मे स्त्रियों का अपने पतियो के साथ प्रवास मे जाना अच्छा न समझा जाता था अत उनके जीवन का अधिकतर भाग विरह कष्ट भोगने मे ही व्यतीत होता था। सम्भव है कि कभी कवि ने राजा को प्रसन्न कर कुछ दिन अपने घर जा कर रहने की अनुमति प्राप्त कर ली और जाने की तैय्यारी हो गई। किन्तु इसी बीच, किसी अनिवार्य कारण से, राजा ने उसे राजकीय कार्य के लिए रोक लिया और अन्यत्र भेज दिया। इससे कवि के प्रियामिलन की सुखद आशा पर तुषारपात हो गया और अपनी इस व्यथा को उसने मेघदूत द्वारा प्रकट किया। इस काव्य की रचना के समय तक कवि नि सतान था और सभवत उसके माता-पिता का भी देहान्त हो चुका था। मेघदूत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि के जीवन का बहुत बडा भाग मध्य भारत के इन प्रदेशों मे व्यतीत हुआ था और इनके साथ उसका विशेष लगाव भी था। इस स्थान के छोटे-छोटे नदी नाले, पहाड, टीले, वन वृक्ष तथा मन्दिर आदि का जो ब्योरेवार वर्णन कवि ने किया है वह इनके साथ उसके घनिष्ठ परिचय का सूचक है।

मेघदूत

कवि के ग्रन्थ कुमार संभव का नाम भी एक समस्या बना हुआ है। कोई कहता है कि इस महाकाव्य मे कवि ने शिव पार्वती के सभोग शृगार का जो नग्न वर्णन किया है उसे उस समय का समाज सह न सका और उनकी प्रतिकूल समालोचना से अनुत्साहित होकर कवि ने अपने प्रयास को बीच में ही छोड़ दिया। दूसरे विचारकों का कथन है कि कवि की असामयिक मृत्यु के कारण यह महाकाव्य पूरा न हो सका। यदि वह कुछ समय और जीवित रहता तो इस काव्य की समाप्ति कुमार के जन्म पर करता जैसा कि काव्य के नाम तथा उसके दूसरे सर्ग के उस प्रसंग से प्रकट है जिसमे ब्रह्माजी ने देवताओ को आदेश दिया है कि वे शिवजी का मन पार्वती की ओर आकृष्ट करने का यत्न करें जिससे कि उनका विवाह हो जाने पर उस कुमार का जन्म हो सके जो तारकासुर का सहार करेगा। किन्तु ये दोनो ही मत ठीक नही प्रतीत होते। अलकार शास्त्र के प्राचीन आचार्य दण्डी भामह वामन आदि ने रसदोष के

कुमार संभव

प्रसंग में कुमार संभव के इस सर्ग की चर्चा नहीं की। ध्वन्यालोक के कर्त्ता आनंदवर्धन तथा उसके अनुयायी मम्मट ने भी कालिदास या कुमार संभव का नाम ले कर इस सर्ग की निन्दा नही की। पंडितराज जगन्नाथ ने गीत गोविन्द के रचियता जयदेव को तो दोष दिया, कालिदास को नहीं। इसका कुछ कारण अवश्य होना चाहिए। कवि की असामयिक मृत्यु से कारण कुमार संभव पूरा न हो सका—यह पक्ष भी ठीक नही प्रतीत होता क्योंकि इस महाकाव्य के पश्चात् कवि ने रघुवंश तथा अभिज्ञान शाकुन्तल की रचना की थी और इस अपूर्णता का वास्तविक कारण यह प्रतीत होता है कि कवि के आश्रय दाता राजा की महारानी के जब गर्भ रह गया तो सभी को प्रसन्नता हुई और वे कुमार के जन्म की उत्सुक प्रतीक्षा करने लगे। कालिदास ने भी उस कुमार संभव के अवसर पर कोई उपयुक्त भेट राजा को देने का निश्चय किया और राजकुमार तथा शिव कुमार दोनो को दृष्टि मे रखकर कुमार संभव काव्य का निर्माण प्रारम्भ कर दिया। जब राजकुमार का जन्म हुआ तो कवि ने तब तक बना अपना महाकाव्य राजा को समर्पित कर दिया। वस्तुत. स्कन्द का जन्म दिखलाना महाकाव्य का मुख्य लक्ष्य था ही नहीं। यदि बालक के जन्म होने तक काव्य वहाँ तक पहुँच जाता तो कवि को कोई आपत्ति न थी, अतः कवि ने उस अधूरे काव्य को कभी पूरा नहीं किया।

शुंग तथा कण्व राजाओं के शासन काल मे विदिशा तथा उज्जयिनी का महत्त्व बढ़ गया था किन्तु मगध का गौरव भी सर्वथा लुप्त नही हुआ था। प्रतीत होता है कि साम्राज्य के पुराने तथा प्रधान केन्द्र की दृष्टि से मगध की प्रतिष्ठा बनी ही हुई थी, अतः कालिदास को भी अपने जीवन के उत्तर भाग में मगध मे जाकर रहना पड़ा और रघुवंश की रचना उसने वहीं रहकर की। उसे अपने आश्रयदाता नरेशों के साथ दूर-दूर तक भ्रमण करने पड़े और कितने ही स्थानों की यात्रा उसने तीर्थ यात्रा की दृष्टि से भी की होगी। रघुवंश के अध्ययन से पता चलता है कि कवि को भारत के कोने-कोने का सूक्ष्म ज्ञान था। वह प्रत्येक प्रदेश की भौगोलिक स्थिति, वहाँ की जनता का स्वभाव, तथा उपज आदि से खूब परिचित था। उसे बंगाल के चावल, आसाम के अगरू, मलय के चन्दन, काली मिर्च और इलायची तथा ताम्रपर्णी के मोती और काम्बोज के अखरोटों का पता था।

वृद्धावस्था में कालिदास की रुचि अध्यात्म चिन्तन तथा योग साधना की ओर भी हो गई थी। उसने विधिवत् वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम में भी

प्रवेश किया था या नहीं —यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता किन्तु वह इन्हे पसन्द अवश्य करता था।

वृद्धावस्था

अन्तिम नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल की रचना उसने देवभूमि हिमालय के अक मे स्थित अपनी जन्म भूमि में पहुँच कर की, जहाँ दुष्यन्त का तरह उसका भी अपनो चिरवियुक्ता पत्नी मे पुर्नमिलन हुआ और शेष आयु उसने वही पर पुनर्जन्म के चक्कर से मुक्ति दिलाने वाले भगवान् नीललोहित शिव की आराधना मे समाप्त कर दी। वह फिर राज सेवा के लिए विदिशा, उज्जयिनी या मगध नही लौटा। कालिदास के कोई सतान थी य। नही यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता। किन्तु संतान प्राप्ति के लिए जो कातरता उसके ग्रन्थो मे देखी जाती है उसमे प्रतीत होता है कि वहुत समय तक उसे सतान सुख से वंचित रहना पडा होगा।

व्यक्तित्व

कालिदास की आयु का अधिकतर भाग समाज के उच्चतर वर्ग या राज-दरबारो मे व्यतीत हुआ था। अत वह उस समय के शिष्ट व्यवहार, परिष्कृत बोलचाल, तथा रीति-नीति का पारगत विद्वान् था। सस्कृत भाषा पर उसका असाधारण अधिकार था। रामायण महाभारत को आदर्श मानकर उसने वैदर्भी शैली में काव्य रचना का अभ्यास किया था। जिसके साथ मिलकर स्वाभाविक प्रतिभा ने सोने मे सुहागे का काम किया। कवि की दृष्टि जितनी व्यापक थी उतनी ही सूक्ष्म भी। इसीलिए उसकी उपमाएं बहुत सुन्दर समझी जाती हैं किन्तु उन्हे ही उसकी प्रधान विशेषता समझना भूल है। उपमा तो कविता का एक अत्यन्त गौण तथा वाह्य रूप है। उसकी बडी विशेषता वह सौन्दर्य है जो उसकी रचना का प्राण बनकर सर्वत्र उच्छ्वासित हो रहा है।

उसका व्यक्तित्व

उसका व्यक्तित्व आकर्षक तथा प्रभावशाली था। कवि होने के साथ ही वह राजनीति के दाव पेचों को भी खूब समझने वाला तथा वाक्चतुर था। इसलिए राज्य के सन्धि विग्रह आदि अत्यन्त गभीर कार्यों का उत्तरदायित्व भी कभी-कभी उस पर आ पडता था।

वह समस्यापूर्ति मे अत्यन्त निपुण था और उसकी पूर्ण की हुई समस्या यथार्थ घटना के रहस्य को खोलने वाली होती थी। भोजप्रबन्ध के कर्त्ता वल्लाल ने कालिदास को सरस्वती का अवतार तथा अन्तर्दृष्टि

संपन्न सिद्ध करना चाहा है किन्तु स्थूल दृष्टि के पाठक पर यह प्रभाव पड़ जाता है कि कालिदास व्यभिचारी था। भोज प्रबन्ध के आधार पर प्रचलित उसकी वेश्यानुराग सम्बन्धी गाथाएँ भी अविश्वसनीय हैं। कीथ लिखते है कि "एक दूसरा अधिक विस्तृत उपाख्यान, लका में जबकि वे राजा कुमारदास के अतिथि थे, एक लोभी वेश्या द्वारा उनकी हत्या का वर्णन करता है। इस कथन को स्वीकार करने के लिए कुछ भी आधार नहीं।"

आज दो हजार वर्ष व्यतीत हो चुकने पर भी, बिना किसी राजाश्रय के जिस साहित्य ने कवि की कीर्ति को अक्षुण्ण बना रक्खा है, जिसकी प्रशसा वे विदेशी विद्वान् भी मुक्त कण्ठ से करते नही थकते, जिनकी भाषा संस्कृत नही, उसमे कोई ठोस गुण होना चाहिए और वही कालिदास की वास्तविक विशेषता है।

कालिदास एक या अनेक

बहुत समय से यह प्रसिद्धि चली आ रही है कि उपर्युक्त चारो काव्यों तथा तीन नाटकों का कर्ता एक ही कालिदास है किन्तु कतिपय विचारक इससे सहमत नही। वे कहते है कि नाटककार कालिदास तथा काव्यकार कालिदास अलग-अलग है। राजशेखर ने एक जगह तीन कालिदासों का उल्लेख किया है। हम इस विषय के विस्तार मे न जाकर काव्यों तथा नाटको के कुछ ऐसे उद्धरण यहाँ एकत्र कर रहे हैं जिनसे कोई स्पष्ट परिणाम निकाला जा सकता है।

१. रघुवश सर्ग—परिचय चल लक्ष्य निपातने भयरुषोश्चतदिङ्गित वेदनम्।

(क) पद्य ४९ श्रमजयात् प्रगुणा च करोत्यसौ तनुमतोनुमतः सचिवैर्ययौ॥

(ख) शाकु० अक ४ पद्य २
मेदश्छेद कृशोदरं लघुभवत्युत्थान योग्य वपुः
सत्वाना मपि लक्ष्यते विकृति मच्चित्तं भय क्रोधयोः।
उत्कर्षः स च धन्विना यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसन वदन्ति मृगयामीदृग्विनोद. कुतः॥

२. रघु० ९ का (क) पद्य ६६
अपि तुरग समीपादुत्पतन्त मयूर
न स रुचिरकलापं बाण लक्ष्यी चकार।
सपदि गतमनस्कश्चित्रमाल्यानुकीर्णे
रति विगलितबन्धे केशपाशे प्रियायाः॥

मृदुपवन विभिन्नो मत्प्रियाया विनाशाद्

विक्रमो० अंक ४ (ख) घनरुचिर कलापो निः सपत्नोऽस्यजातः ।

का पद्य २२ रति विगलित बन्धे केशपाशे सुकेश्याः

सति कमुम सनाथे क हरेदेष बर्हीं ॥ विक्रमो०

३. रघु०सर्ग३पद्य३३ (क) भूतार्थ व्याहृतिः सा हि न स्तुतिः परमेष्ठिनः

कुमार० ७ का १३ (ख) भूतार्थ शोभा ह्रियमाण नेत्रा प्रसाधने सन्निहितेऽपिनार्यः

शाकुन्तल प्रस्तावना—सूत्रधार :—आर्ये कथयामि ते भूतार्थम् ।

४ रघु० १० का ८३ (क) ते प्रजाना प्रजानाथास्तेजसा प्रश्रयेण च ।

मनोजह्रुर्निदाघान्ते श्यामाभ्रादिवसा इव ।

शाकुन्तल ३ का १० (ख) स्मर एव ताप हेतु निर्वापयिता स एव मे जातः ।

दिवस इवा भ्रश्याम स्तपात्यये जीवलोकस्य ॥

५. रघुवंश ११का४४ (क) तत्प्रमुप्तभजगेन्द्र भीषण वीक्ष्य दाशरथि राददे धनुः ।

विद्रुत ऋनुमृगानुसारिणं येनबाण मसृजद्वृषध्वजः ।

शाकुन्तल प्रस्तावना (ख) कृष्ण सारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके ।

मृगानुसारिणं साक्षात्पश्यामीव पिनाकिनम् ॥

६. रघुवंश १४ का ६१ (क) वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा ।

विक्रमो० अक १३ (ख) कञ्चुकी—तदेव त्व मद्वचनात् विज्ञापय ।

शाकुन्तल अंक ४ (ग) कण्व —शार्ङ्गरव, इतित्वया मद्वचनात् स राजा शकुन्तला

पुरस्कृत्य वक्तव्यः ।

,, ,, २ (घ) राजा—मद्वचनाद् उच्यता सारथि ।

कुमार सर्ग (ङ) यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वच. ।

तथाहिते शील मुदारदर्शने तपस्विनामप्युपदेशता गतम् ॥

शाकुन्तल अक १५ (च) राजा—इदं तत् प्रत्युत्पन्नमतिस्त्रैणमिति यदुच्यते ।

,, ,, (छ) राजा—यदुच्यते रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्थाः ।

इति तद व्यभिचारि वच. ।

७. रघुवंश १२ का १८ (क) संध्याभ्रकपिशस्तस्य विराधो नाम राक्षस. ।

अतिष्ठन्मार्गमावृत्य रामस्येन्दो रिव ग्रहः ॥

शाकुन्तल ३–२५ (ख) छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः,

सन्ध्यापयोदकपिशाः पिशिताशना नाम् ।

८. कुमार १–४२ (क) कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य

मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य

अन्योन्य शोभा जननाद् बभूव
साधारणो भूषण भूष्यभावः ॥

विक्रमो० २ का ३ (ख) आभरणस्याभरण प्रसाधन विधेः प्रसाधनविशेषः ।
उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमान वपुस्तस्या ॥

९. कुमार १ का ५७ (क) तत्राग्निमाधाय समित्समिद्ध
स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्ट मूर्तिः ।
स्वयं विधाता तपसः फलाना
केनापि कामेन तपश्चचार ॥

शाकुन्तल ७ का १२—(ख) प्राणानामनिलेन वृत्ति रुचिता सत्कल्प वृक्षे वने,
तोये काञ्चन पद्मरेणुकपिशे पुण्याभिषेकक्रिया ।
ध्यान रत्न शिला तलेषु विबुधस्त्री संनिधौ सयमो'
यत्काक्षन्ति तपोभिरन्य मुनयस्तस्मि स्तपस्यन्त्यमी ॥

१०. कुमार ५ का ९ (क) यथा प्रसिद्धैर्मधुर शिरोरुहै
जंटाभि रप्येव मभू त्तदाननम् ।
न षट्पद श्रेणिभिरेव पकज
सशैवला सगमपि प्रकाशते ॥

शाकु' · · · · १/१९ (ख) सरसिज मनुविद्ध शैवलेनापि रम्यं,
मलिन मपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति ।

११. कुमार–८/८ ३ (क) अंगुलिभिरिव केशसंचयं
सन्निगृह्य तिमिरं मरीचिमिः ।
कुड्मली कृत सरोज लोचन चुंबतीव
रजनी मुखं शशी ॥

विक्रमो० ३ का ६ (ख) उदय गूढशशाङ्क मरीचिभि स्तमसि दूरतर प्रतिसारिते
अलकसयमनादिव लोचनै हरति मे हरिवाहन दिङ्मुखम् ॥

१२. पूर्वमेघ का ४१वा पद्य तथा विक्रमोवर्शीय ४ का ७वां । उत्तर मेघ का
१२ वाँ पद्य तथा शाकुन्तल का ४ का ५वाँ पद्य ।

१३. रघु० ८ सर्ग का—द्रमु सानुमता किमन्तर यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः ।

शाकु० अंक ६— ननु प्रवातेपि निष्कम्पाः गिरयः ।

१४. कुमार ८ का ६२—तथा शकुन्तला का ३ का ५ ।

१५. रघुवंश ४ सर्ग—जयोदाहरण बाह्वोर्गापया मा स किंन्नरान् ।

विक्रमो० अंक १ में--चित्ररथ--तदा वयमन्तराचारेणम्यस्त्वदीयं जयोदाहरण श्रुत्वा० इत्यादि ।

१६. रघुवंश (क) किमत्र चित्रं यदि कामसूभूर्वृत्ते स्थित स्याधिपतेः प्रजानाम् । सर्ग ५ ॥

शाकुन्तल (ख) किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तते ॥ अंक ३॥

इस प्रकार के अन्य भी अनेक सदर्भ उद्धृत किए जा सकते है जिनसे प्रतीत होता है कि काव्यो तथा नाटको का कर्त्ता कोई एक ही व्यक्ति था क्यो कि भावों वाक्यो तथा वाक्याशो का इतना अधिक साम्य अन्यथा सभव नही ।

कवि के जीवन के सम्बन्ध मे ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह केवल अनुमानो के आधार पर है । अत. उस पर सहृदय पाठको का मतभेद होना बिलकुल स्वाभाविक है प्रामाणिक सामग्री के अभाव मे इस प्रकार के अनुमान के सिवाय कोई अन्य उपाय न था जिसका सहारा हम लेते अत. आशा है कि पाठक इसके लिए क्षमा करेगे ।

कालिदास का संयत शृङ्गार

१ साहित्य के दो भेद (क) श्रव्य (ख) दृश्य श्रव्य की अपेक्षा दृश्य की श्रेष्ठता।

भारतीय साहित्य-शास्त्र के आचार्यों ने काव्य के दो[1] प्रधान भेद किए है :—(१) दृश्य, (२) श्रव्य। दृश्य काव्य को रंगमंच पर अभिनय द्वारा दिखलाया जा सकता है इसलिए उसे दृश्य कहते हैं। नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन आदि इसके अनेक भेद हैं। खण्ड काव्य, महा काव्य, कथा तया आख्यायिका आदि की गणना श्रव्य काव्यों में की जाती है। इनमे से दृश्य काव्य का महत्त्व बहुत अधिक माना जाता है क्योकि वह जीते जागते व्यक्तियो द्वारा उपस्थित किया जाता है। वह अधिक सजीव और यथार्थ होता है, सहृदय उसे आख और कान—इन दोनो इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करता है इसलिए उसका प्रभाव श्रव्य साहित्य की अपेक्षा कही अधिक तीव्र और स्थायी होता है। इसके विपरीत, श्रव्य साहित्य को केवल पढा या सुना ही जा सकता है, देखा नही। श्रव्य साहित्य हृदयपटल पर जिन चित्रो को अंकित करता है वे मानसिक और क्षणिक होते हैं मूर्त्त और जीते जागते नही। पढते समय सहृदय की कल्पना शक्ति उन्हे बनाती जाती है और अगला चित्र बनने से पूर्व ही पहला मिट जाता है। यह संभव है कि पुस्तक को पढ़ कर रख देने पर, उनमे से कोई ऐसा चित्र जिसका प्रभाव हम पर, अपेक्षाकृत गहरा पड़ गया हो, बारबार या देर तक हमारे मन मे मंडराता रहे और हमें आविष्ट किए रहे, तो भी उसका प्रभाव नाटक जैसा स्पष्ट नहीं हो सकता क्योंकि नाटक देखते समय हम आत्म-विस्मृत होकर केवल प्रभाव ग्रहण कर रहे होते हैं जबकि पढते समय हमें दो कार्य करने पड़ते है—(१) कल्पना चित्र बनाना, (२) और उसका प्रभाव ग्रहण करना।

---

१. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।
दृश्य तत्राभिनेयंस्यात् ॥ सा० द० प० ६

इसलिए नाटक[1] आदि को श्रव्य काव्य की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ कहा गया है और कालिदास ने उसे देवताओ के नेत्रों को तृप्त करने वाला यज्ञ[2] कहा है।

२. दृश्य काव्य पर कुछ प्रतिबन्ध। रंग-मञ्च पर क्रूर तथा अशोभन श्रृंगार चेष्टा आदि के प्रदर्शन का निषेध

नाटक की इस प्रभावोत्पादक शक्ति का विचार करके ही आचार्यों ने उस पर कुछ प्रतिबन्ध लगा दिए[3] और युद्ध हत्या आदि अनेक क्रूर कार्यों तथा स्त्री-पुरुषो की उन प्रेम सम्बन्धी चेष्टाओं को रग-मंच पर निषिद्ध ठहरा दिया जिनका प्रदर्शन समाज मे अशोभन समझा जाता है क्योकि अपरिपक्व विचारो के युवक युवतियो पर उनका अवाछनीय और हानि कारक प्रभाव पड जाना स्वाभाविक है। जिन बुराइयो की ओर मन की प्रवृत्ति स्वभाव से ही अधिक होती है, उन्हे यदि कला द्वारा आकर्षक बनाकर रगमंच या चित्रपट पर लाया जाए तो कुछ आश्चर्य नही कि उन्हे देखकर बच्चे भी वैसा ही करने लगे क्योकि वे तो बहुत कुछ अनुकरण द्वारा ही सीखते है। इसीलिए सस्कृत भाषा के नाटककारो[4] ने उक्त व्यवस्था का पालन सावधानता से किया और अपनी रचनाओ मे ऐसे दृश्यो को स्थान नही दिया। किन्तु श्रव्य काव्यो के सम्बन्ध मे ऐसा नही हुआ।

---

१. काव्येषु नाटक रम्यं, तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽक स्तत्रश्लोक चतुष्टयम्।

२. देवानामिदमामनन्ति मुनय. कान्त क्रतु चाक्षुष,
रुद्रेणे दमुमाकृत व्यतिकरे स्वागे विभक्त द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरित नानाविध दृश्यते,
नाट्य भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येक समाराधनम्। माल० अंक १ पद्य ४

३. दूराह्वानवधो युद्ध राज्य देशादि विप्लवः।
विवाहो भोजनं शापोत्सर्गो मृत्यूरत तथा
दन्तच्छेद्य नखच्छेद्यमन्यद् व्रीडा कर च यत्।
शयनाधरपानादि, नगराद्यवरोधनम्।
स्नानानुलेपन चैभिर्वर्जितो नातिविस्तर।
सा० द० परिच्छेद ६ कारिका १६-१८ तक

४. वेणि सहार नाटक मे, भट्ट नारायण ने, दूसरे अक में दुर्योधन तथा भानुमती के श्रृगार का वर्णन करने मे इसकी कुछ उपेक्षा कर दी जिसके कारण समालोचक प्राचीन काल से उसकी भर्त्सना करते चले आ रहे हैं।

राजशेखर[1] ने लिखा है कि शृंगार रस की ललित अभिव्यजनाओं से भरपूर कविता के क्षेत्र मे कालिदास को कोई नही जीत सकता।

३. कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में औचित्य की इस सीमा का उल्लंघन नहीं किया

(क) अनसूया का व्यवहार

कालिदास का शृंगार वर्णन अत्यन्त संयत, सुकुमार तथा सुरुचिपूर्ण है उसमें फूहड़पन व नग्नता का नाम नही। अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक के प्रारभ मे ही हम "तब एक दिन वसन्त की छटा से सुहावने समय मे उस (मेनका) के उन्मादक रूप को देख कर...." इतना कहते-कहते ही अनसूया को लज्जा से रुक जाते देखते है। बहुत सभव है कि कोई दूसरा कवि, यहीं पर, सहृदयो को शृंगार रस में एक अच्छी डुबकी लगवाने से न चूकता।

(ख) दुष्यन्त का व्यवहार

कण्व ऋषि के आश्रम मे, शकुन्तला को देखते ही, राजा दुष्यन्त उसकी ओर आकृष्ट हो गए किन्तु उन्होंने विवेक को हाथ से न जाने दिया। उस समय की सामाजिक व्यवस्थाओं का ध्यान उन्हे बना रहा और उन्होने उसके साथ अपने विवाह-सम्बन्ध के औचित्य का विचार करते हुए कहा :—

निश्चय ही यह वरण योग्य है क्षत्रिय द्वारा,
खिचा क्योंकि इस ओर शुद्ध यह हृदय हमारा,
साधु जनो को घेर कभी लेता यदि सशय,
होता उन्हे प्रमाण हृदय का अपने निर्णय ।। १ का २१ ।।

(ग) शकुन्तला का व्यवहार

बात चीत मे, अपने विवाह की चर्चा छिडने पर, कुमारी सुलभ संकोच के कारण जब शकुतला कुछ नाराज़-सी होकर वहाँ से जाने लगी तो राजा उसे पकड़ते-पकड़ते एकदम रुक गए और मन ही मन कहने लगे :—

पीछे जाते समय मुझे उस मुनि कन्या के,
लिया विनय ने रोक बीच में सहसा आके।
तनक हिली तक नही स्थान से मेरी काया,
तो भी जाकर लौट यहाँ मानो फिर आया ।। अंक १ पद्य २६ ।।

---

१. एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्
शृगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ।।

राजा को देख कर शकुन्तला का हृदय भी उसके हाथ से निकल गया था और उसने मन ही मन कहा था "इन्हे देखकर, मेरे मन मे, न जाने क्यों ऐसी उथल-पुथल मच रही है जो इस तपोवन के निवासियों के योग्य नही।" दोनो सखियों ने भी उसके हृदय के इस विकार को ताड़ लिया था और कहा था कि 'शकुन्तला, यदि पिताजी यहा होते?" इससे आगे सारी बातचीत मे भी किसी के मुख से एक शब्द भी ऐसा नही निकला जिसे अशोभन या अश्लील कहा जा सके।

अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रथम अक मे

शकुतला नाटक मे मुख्य रस शृगार[1] है जिसका स्थायीभाव अर्थात् मुख्य तत्त्व वह आकर्षण है जो युवक युवतियों में एक-दूसरे के प्रति स्वभाव से ही हो जाया करता है। इस आकर्षण को रति[2] कहते है। रति के कारण हृदय मे होने वाले प्रथम विकार का नाम भाव[3] है जिसकी सूचना शकुतला के उक्त वाक्य[4] से मिलती है। और जब वह विकार सात्त्विक भाव आदि द्वारा कुछ उभर कर चेहरे आदि से प्रकट हो जाता है तो उसे हाव[5] कहते है जिसका आभास दुष्यन्त के—

> बाते नहीं कर रही मुझसे भले ही,
> दे कान किन्तु सुनती जब बोलता हूँ।
> मेरे नहीं ठहरती यदि सामने तो,
> अन्यत्र भी न इसके दृग देखते है॥ अक १ पद्य २९॥

इस वाक्य से मिलता है। दोनो प्रेमियों की इस प्रकार की सूक्ष्म चेष्टाओ से ही चतुर सखियो ने समझ लिया था कि दाल मे कुछ काला है और शकुन्तला पर ऊपर वाली मीठी चुटकी ली थी। यदि ये विकार अत्यधिक स्पष्ट हो जाएँ तो इन्हे हेला[6] कहा जाता है। नाटक के तीसरे अंक मे उसकी जिस दशा का वर्णन

---

१. एक एवव भवेदङ्गी शृगारो वीर एव वा।
   अगमन्ये रसा: सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुत ।
२ रतिर्मनोनुकूलेऽर्थेमनस प्रवणायितम्। साहित्य दर्पण परिच्छेद ३. वारिका १७६.
३. निर्विकारात्मके चित्ते भाव. प्रथम विक्रिया। सा० द० परिच्छेद ३ का ९३.
४ किनु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवन विरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता।'
५ भ्रूनेत्रादि विकारैस्तु सभोगेच्छाप्रकाशक.,
   भाव एवाल्प सलक्ष्य विकारो हाव उच्यते। ९४।
६ हेलाऽत्यन्त समालक्ष्यविकार: स्यात् स एवतु। ९५।

मिलता है वह हेला है। कवि ने प्रथम अंक में शकुन्तला के केवल भाव और हाव का ही वर्णन किया है हेला का नही।

जब राजा दुष्यन्त शकुन्तला मे विवाह कर लेते हैं, उस मे पहले तक वह कन्या[1] है। और कन्याएँ स्वभाव से ही लज्जाशील हुआ करती है। आयु की दृष्टि से वह मुग्ध[2] नायिका है। मुग्धा के शरीर मे यौवन के चिह्न प्रकट हो जाते है और वह काम विकारों को भी अनुभव करने लगती है। वह पतिसमागम

१ 'कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना' अर्थात् वह नवयुवति कन्या कहलाती है जिसका विवाह न हुआ हो और वह लजीली होती है।
सा० दर्पण परिच्छेद कारिका ६७.

२ "प्रथमावतीर्ण यौवन मदन विकारा, रतौवामा कथिता मृदुश्चमानेसमधिक लज्जावती मुग्धा।" प्रर्थात् जिसमे यौवन तथा मदन के विकार प्रकट होने लगते हैं किन्तु वह पति समागम मे सकोच करती है, मान करना नही जानती और विशेष लज्जाशील होती है उसे मुग्धानायिका कहते है।
सा० द० परिच्छेद ३. कारिका ५८

मुग्धा के उदाहरण, (क) दृप्टादृष्टिमधोददाति कुरुतेनालाप माभाषिता। शय्याया परिवृत्य तिष्ठति बलादालिंगिता वेपते। निर्यान्तीषु सखीषु वास भवनान्निर्गन्तुमेवेहते, जाता वामतयैव सप्रति मम प्रीत्यनवोढावधू.॥
(ख) असमुखालोकन माभि मुख्य निषेध एवानुमति प्रकारः
प्रत्युत्तरं मुद्रण मेव वाचो नवांगनानां नव एव पन्था॥ इनके साथ शकुन्तला के उस व्यहार की तुलना कीजिए जिसका वर्णन निम्नलिखित पद्यो मे कालिदास ने किया है :—

(क) वाच नमिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्ण ददात्यभि मुख मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदानन समुखीना
भूयिष्ठ मन्य विषया नतु दृष्टि रस्याः॥ शाक-अंक १ पद्य २७

तथा

(ख) अभिमुखे मयि सहृतमीक्षित
हसित मन्यनिमित्त कृतोदयम्।
विनय वारित वृत्तिरतस्तया
न विवृतो मदनो न च सवृतः॥ शाक २ कारिका १२

में सकुचाती है, मान करना नहीं जानती तथा अत्यन्त लजीली होती है। अपने मित्र माधव्य से शकुन्तला के भोलेपन, विनय तथा इस लजीले पन की चर्चा करते हुए दुष्यन्त कहते हैं :—

"मुझे सामने देख झुकाली आँख लजीली,
की कुछ अन्य निमित्त बना मुस्कान रसीली,
उभर रहा था काम विनय से उसे दबाया,
प्रकट न होने दिया, नही वह छिप ही पाया ।।" २ का १२

इस लज्जा तथा संकोच के कारण ही उसने अपने मन की बात अभिन्न-हृदया सखी अनसूया तथा प्रियंवदा को भी तब तक खोल कर नही कही, जब तक उन्होंने ही उसकी व्याकुलता को देख और चिन्तित हो इस सम्बन्ध मे सीधा प्रश्न नही कर लिया। उनके पूछने पर भी वह, "सखियो तपोवन के रक्षक वे राजर्षि जब से इन आंखो मे आ बसे है ···" कहती कहती बीच मे ही चुप हो गई।

अभिज्ञान शाकुन्तल के तीसरे अक में शकुन्तला

तीसरे अक मे कवि ने शकुन्तला की उस प्रेम दशा का चित्रण किया है जिसे पूर्व राग[1] कहते है। इसमे परस्पर दर्शन आदि से उत्पन्न अनुराग इतना उत्कट हो जाता है कि प्रेमी एक दूसरे से मिलने के लिए नितान्त आतुर हो उठते है। शकुन्तला की इस आतुरता को देख और ठीक कारण को जान कर सखिया उसे राजा के नाम एक प्रेमपत्र लिखने को कहती है किन्तु उसी सकोच के कारण वह लिखना नही चाहती। अन्त मे पत्र लिखा जाता है और वह ठीक बना है या नही यह जानने के लिए, शकुन्तला उसे पढकर सखियो को सुनाती है :—

काम यह तपा रहा दिन रात—
पड़ी तुम्हारे प्रेम जाल मे, निर्दय, मुझ अबला के गात।
नही जानती किन्तु तुम्हारे कुछ भी कठिन हृदय की बात ।।

इस पर राजा, जो पास ही छिप कर सुन रहे थे, सहसा प्रकट होकर कहते है :—

काम यह तपा रहा दिन रात,—
तुम को तो केवल सुकुमारी, जला रहा मेरे तो गात।
नही कमुदिनी पर दिन करता है जैसा विधु पर आघात ।।

शाकु० अक ३ के १५, १६ पद्य

---

१. श्रवणा द्दर्शना द्वापि मिथः संरूढरागयो।
दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वराग: स उच्यते।

सखियों के आग्रह पर राजा शकुन्तला के निकट, पत्थर की उसी पटिया पर बैठ जाते हैं और अगली सारी बात चीत राजा तथा सखियों के बीच में ही चलती है। शकुन्तला तो प्रसंग आने पर, एक बार, केवल इतना ही कहती है कि ये तो अपने अन्त: पुर की रानियो के विरह से विकल हो रहे है, तुम वृथा ही क्यों इनके सिर होती[1] हो ?' इसी समय आश्रम का पालतू मृगछौना उधर आ निकलता है उसे उसकी मा से मिलाने का बहाना बना दोनो सखियां वहाँ से चंपत हो जाती हैं, और केवल राजा तथा शकुन्तला ही वहाँ रह जाते हैं तो भी रग मंच पर उनकी कोई बातचीत या व्यवहार ऐसे नही होते जिन्हे अशोभन या अनुचित कहा जा सके। उस एकान्त मे राजा ज्यो ही शकुन्तला का चुम्बन करना चाहते है त्योही माता गौतमी की आवाज सुनाई पड जाती है और मामला वही रुक जाता है। यह है शाकुन्तल नाटक के तीसरे अंक का सामान्य दिग्दर्शन। इसमे कालिदास ने अत्यन्त सयत शृंगार का चित्रण किया है इससे कोई भी असहमत नही हो सकता।

अभिज्ञान शाकुन्तल के एक संस्करण में अनुचित मिश्रण

किन्तु अभिज्ञान शाकुन्तल के एक अन्य[2] सस्करण मे उसी शकुन्तला का जो व्यवहार दिखलाया गया है वह मुग्धा नायिका के अनुरूप न हो कर सहसा मध्या या प्रगल्भा का सा हो गया है। वह कन्या सुलभ शील सकोच को एक दम तिलाजलि देकर शोख बन जाती है और पहले कही गई कुछ अटपटी बातों के लिए सखियो को राजा से क्षमा याचना के लिए कहती है तथा उनके साफ इन्कार कर देने पर स्वय ही कहती है, "हमारे इस अपराध को महाराज मन मे न लाएँ, क्योकि किसी के पीठ-पीछे भला कौन क्या नही कह डालता।" इस पर राजा भी मुसकरा कर शरारत से कहता है "तुम्हारे इस अपराध को हम तभी क्षमा कर सकते हैं जब तुम हमे अपना साजन बनाकर, फूलो की इस सेज पर अपने साथ आराम करने की अनुमति

---

१. शकुन्तला–(प्रियवदा मालोक्य) हला, किमन्त:पुर विरह पर्युत्सुकस्य राजर्षे रुपरोधेन ? अभिज्ञान शाकुन्तल अंक ३, पद्य १६ से आगे।

२. कलकत्ता वाला पाठ

दो'।" नाटक का पाठक जानता है कि कुंज मे प्रकट होते ही राजा पहले ही उस पटिया पर बैठ गया था जिसकी चर्चा यहाँ की गई है अत. राजा का यह मजाक कुछ तो अनावश्यक है और कुछ भद्दा। और जब इस पर प्रियवदा यह ठिठोली करती है "ये इतने से ही सतुष्ट हो जाएँगे ?" तब शकुन्तला आखे तरेर कर उसे डाटती है "अरी ओ ढीठ मेरा यह हाल है और तुझे मजाक सूझ रहा है ?"[२]

इसी समय, अचानक वहाँ आ पहुँचे मृग छौने को उस की मा से मिलाने का बहाना बना दोनो सखिया निकल जाती है और उनके पीछे जा रही शकुन्तला को राजा बल पूर्वक रोक लेता है। उक्त सस्करण मे इससे आगे का भी सारा दृश्य बेमेल तथा, अशोभन तो है ही, साथ ही उसमे शकुन्तला का जो व्यवहार दिखलाया गया है वह मुग्धा नायिका का नही हो सकता अत उसमे प्रकृति-विपर्यय नामक रस दोष भी सहृदयो को खटकता है। शकुन्तला एक बार बाहर जाकर फिर अपने आप ही उस कुज मे राजा के पास लौट आती है और उससे मृणाल का वह ककण मागती है जो उसके हाथ मे खिसक कर गिर गया था। राजा उसे अपने साथ बिठा लेता है और उसका हाथ अपने हाथ मे लेकर, रसीली बाते बनाता हुआ, बहुत देर तक कडा पहनाने का ही बहाना करता रहता है और अन्त मे कहता है, सुन्दरी देखो तो, हमने यह कैसा पहनाया है ?' इस पर शकुन्तला नखरे मे कहती है कि "कान में लगाए फूल की धूल

---

१ शकुन्तला—हला, मर्षयत लोकपालम्, यदस्माभिर्विस्रब्धप्रलापिनीभि उपचारातिक्रमेण भणितम्।

सख्यौ—(सस्मितम्।) येन तन्मन्त्रित स एव मर्षयतु, अन्यस्य क अत्यय ?

शकुन्तला—अर्हति खलु महाराज इमं विषोढुम्। परोक्ष वा न कि को मन्त्रयन्ति ?

राजा—(सस्मितम्) अपराध मिम तत सहिष्ये
यदि रम्भोरु तवाङ्गसङ्गमृष्टे
कुसुमास्तरणे क्लमापहेऽत्र
स्वजनत्वा दनुमन्यसेऽवकाशम्॥

२ प्रियवदा—(सोपहासम्) ननु एतावता पुनस्तुष्टो भविष्यति ?

शकुन्तला—(सरोषमिव) विरम विरम दुर्विनीते ! एतावदवस्था गतया मया क्रीडसि ?

के पड जाने से मेरी आँखे किरकिरा रही है, इसलिए मुझे तो कुछ दीखता नही।" राजा फूंक मार कर उस धूल को निकालने का प्रस्ताव करता है और शकुन्तला उसे स्वीकार कर लेती है किन्तु कहती है कि "मुझे डर है तुम इस बहाने आगे न बढ जाओ।" राजा विश्वास दिलाता है कि ऐसा न होगा और शकुन्तला का मुँह उभार कर अपने मुँह के पास ले आता है। शकुन्तला पूछती है कि "यह तुम क्या कर रहे हो?" तो राजा उत्तर देता है हमे यही पता नही चल रहा कि कौन सा फूल है और कौन सी तुम्हारी आँख।' और तब फूक मार कर वह उसकी आँख को ठीक कर देता है। स्वस्थ होकर शकुन्तला राजा के प्रति

१ शकुन्तला—अत पर न समर्थास्मि विलम्बितुम्।
भवतु, एतेनैव अपदेशेन अत्मान दर्शयामि (इत्युपसर्पति)
राजा—(दृष्ट्वा सहर्षम्) अये जीवितेश्वरी मे प्राप्ता,
परिदेवनानन्तर प्रसादेनोपकर्तव्योऽस्मि खलु देवस्य।
पिपासाक्षामकण्ठेन याचित चाम्बु पक्षिणा।
नवमेघोज्झिता चास्य धारा निपतिता मुखे॥
शकुन्तला—(राज्ञ सम्मुखे स्थित्वा) आर्य, अर्धपथे स्मृत्वा एतस्य
हस्त भ्रशिनो मृणालवलयस्यकृते प्रतिनिनिवृत्तास्मि;
कथित मे हृदयेन, त्वयागृहीतमिति। तन्निक्षिप एतत्
मा माम्आत्मान च मुनिजनेषु प्रकाशयिष्यसि।
राजा—एकेन अभिसन्धिना प्रत्यर्पयामि।
शकुन्तला—केन पुनः ?
राजा—यदीदमहमेव यथास्थान निवेशयामि।
शकुन्तला—आःका गतिः। भवतु एतत् तावत् (इत्युपसर्पति।)
राजा—इतः शिला तलैकदेश सश्रयाव। इत्युभौ परिक्रम्योपविष्टौ।)
राजा—(सव्याजं विलम्ब्य मृणालं प्रतिमोच्य) सुन्दरि दृश्यताम्।
शकुन्तला—नतावदेन प्रेक्षे, पवनकम्पित कर्णोत्पल रेणुना कलुषिता
मेदृष्टि :
राजा—(सस्मितम्) यद्यनुमन्यसे, तदहमेना
वदन मारुतेन विशदा करवाणि ?
शकुन्तला—ततः अनुकम्पिता भवेयम्।
किन्तु पुनरह न ते विश्वसिमि। इत्यादि।

कृतज्ञता प्रकट करती है और कहती है, "मै आप का कुछ भी प्रिय न कर सकी अत: लज्जित हूँ।" राजा उत्तर देता है कि तुम्हारा यही उपकार बहुत है कि हमने तुम्हारे सोधे मुँह का मधुर गन्ध तो सूँघ लिया। देखो, भौरा भी कमल के गन्ध मात्र से सतुष्ट हो जाता है। इसपर शकुन्तला पूछती है, "यदि वह सतुष्ट न हो तो क्या करे ? तब राजा उसके मुँह को चूमने का यत्न करता हुआ कहता है, "यह" इत्यादि। जिस कवि ने अन्यत्र (मालविकाग्नि मित्र नाटक मे) प्रौढ़ आयु के नये दुलहे को भी शरमाने वाला कहा है उसकी मुग्धा नायिका से कोई सहृदय ऐसे व्यवहार की आशा नही कर सकता। इस व्यतिक्रम का कारण सभवत: यह प्रतीत होता है कि कालिदास के नाटक जनता में अधिक सर्व प्रिय थे और वे रंगमच पर भी प्राय: खेले जाते थे। कभी किसी नाटक मण्डली के अनुरोध पर, ऐसे प्रसगो को और भी अधिक मनोरजक एव साधारण जनता की रुचि के अनुकूल बनाने के लिए, इस प्रकार के अश उनमे जोड दिए गए। बबई वाले सस्करण मे ये अश नही उपलब्ध होते। उसके अनुसार सखियो के साथ जा रही शकुन्तला को राजा ने रोक तो लिया था किन्तु उसके "पौरव, शील का कुछ तो ध्यान रक्खो, भले ही मे काम से पीड़ित हूँ पर स्वतन्त्र नही हूँ।" इस वाक्य ने राजा पर जो अकुश लगा दिया था उसने उसके व्यवहार को फिर कभी उच्छृखल नही होने दिया।

कालिदास ने सभोग[1] श्रृगार के वर्णन मे जिस सयम तथा मर्यादा का परिचय दिया है वह उसके विप्रलम्भ[2] श्रृगार वर्णन मे भी पाया जाता है।

कालिदास के विप्रलम्भ शृगार में संयम अभिज्ञान शाकुतल के छठे अक मे अँगूठी मिल जाने पर राजा को शकुतला की सुध आती है और वे उसके वियोग

---

१. शृगं हि मन्मथोतद्भेदस्तदागमन हेतुक
उत्तम प्रकृति प्रायो रस: शृंगार उच्यते।
आलंबन नायिका. स्युर्दक्षिणाद्या श्च नायका।
चन्द्रचन्दनरोलम्बरुता ऽद्युद्दीपन मतम्।
भ्रूविक्षेप कटाक्षादि रनुभाव: प्रकीर्त्तित.।
त्यक्त्वौग्र्य मरणालस्य जुगुप्सा व्यभिचारिण।
स्थायि भावो रति, श्यामवर्णोऽयं विष्णु दैवत:॥
सा द० परिच्छेद ३ कारिका १८३-१८६

२. सयुक्तयोस्तु सभोगो विप्रलम्भो वियुक्तयो। सा० द० परिच्छेद ३ कारिका

मे विकल हो जाते हैं। उन्हे अधिक पश्चात्ताप अपने उस दुर्व्यवहार पर होता है जो उन्होंने अपनी निर्दोष तथा असहाय गर्भवती पत्नी के प्रति किया था। वे कहते है :—

"ठुकराई गई मुझ से जब बेबस साथियो की वह् ओर बढी,
'रुकजा' कह् के गुरु से गुरु शिष्य ने दी उसको फटकार कडी,
छलके जल के कण लोचनों मे, इस निष्ठुर को वह दूर खड़ी—
तकती रही, दृष्टि जलाती मुझे, उसकी है विषैली अणी सी गड़ी ॥
॥अंक ६ पद्य ९॥

कसा यथार्थ किन्तु मार्मिक चित्रण है यह ? इसमें अनुभावो की अतिशयोक्ति द्वारा कल्पना के वे चमत्कार और कलाबाजियाँ नहीं दिखाई गई जिनमे विरहिणी के ऊपर छिडका गया गुलाब जल विरहाग्नि से जलकर बीच में भाप बनकर उड जाता[1] है, या विरहिणी अपनी आहों की झोंक मे ६, ७ हाथ इस प्रकार आगे पीछे, चली जाती है, मानों हिंडोला[2] झूल रही है और सखियाँ स्नेहवश जाडों की ठंडी रातों मे भी गीले कपडों की आड करके किसी प्रकार उसके पास पहुँच[3] पाती हैं। हिन्दी के एक अन्य कवि वियोगिनी की आह का वर्णन करते हुए इससे भी आगे बढ गये है। वे लिखते हैं :—

"शंकर नदीनद नदी सन के नीरन की
भाप बन अंबर में ऊँची चढ जायगी,
दोनों ध्रुव छोरन लों पल मे पिघल कर,
घूमघूम धरनी धुरी सी बढ़ जायगी,
झारेगे अँगारे ये तरनि तारे तारापति,
जारेंगे खमण्डल में आगमढ़ जायगी,
काहू विधि विधि की बनावट बचेगी नाहि,
जोपैवा वियोगिनी की आह कढ़ जायगी ॥

---

१. औधाई सीसी सुलखि, बिरह बलति बिललात।
बीचहि सूखि गुलाब गो, छींटो छुई त गात ॥
२. इत आवत, चलिजातउत, लगी छ सातिक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासन साथ ॥
३. आडे दे आले बसन, जाड़े हूँकी रात।
साहसकै कै नेह बस, सखी सबै ढिग जात ॥

भवभूति के विरह वर्णन में अत्युक्ति

संस्कृत के सहृदय कवि भवभूति भी विरह वर्णन में इस अत्युक्ति से न बच सके। उत्तर रामचरित के तीसरे अंक में श्रीराम की वियोग दशा का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं —शोक के आघात से हृदय जर्जर हुआ जा रहा है किन्तु दो टुकड़े नहीं हो जाता। व्याकुल देह रह-रह कर मोह-मग्न हो जाता है एक बार ही चेतना नहीं खो बैठता। विरह की आग मुझे भीतर ही भीतर जला रही है, किन्तु राख नहीं बना देती। मर्मच्छेदी विधाता चोट पर चोट कर रहा है पर जान नहीं ले लेता। हे देवि, हाय! हाय! हृदय फटा जा रहा है, शरीर का अंग अंग टूक-टूक हुआ जाता है। संसार सूना हो गया। मैं भीतर ही भीतर आग की ज्वालाओं से जल रहा हूँ, अँधकार में डूबा जा रहा हूँ, पर कहीं सहारा नहीं मिलता। मूर्च्छा मुझे चारों तरफ से घेरती आ रही है। मैं अभागा अब क्या करूँ ?"

इसके साथ कालिदास के संयत विरह वर्णन की तुलना करके देखिए :—

"कुछ भी सुहावना न लगता है, सचिवों के
साथ मिल पहले सा करते न काम काज,
बदल-बदल कर करवटें काटते हैं,
सारी रात जागते ही सेज पर महाराज,
चाहते हैं उचित जवाब देना रानियों को,
करते हुए वे जब उनका बड़ा लिहाज,
भूल से शकुन्तला का नाम है निकल जाता,
और उठता न सिर देर तक मारे लाज॥

शाकु० अंक ६ पद्य ५

---

१ दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते,
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्
क ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्,
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्॥

उत्तर राम च० अंक ३ पद्य. ३१

ख हा हा देवि, स्फुटति हृदयं, ध्वंसते देहबन्धः,
शून्यमन्ये जगदविरलं ज्वालन्मन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धेतमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा,
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि॥

पद्य ३८

अभिज्ञान शाकुन्तल के इस पद्य में तथा इससे अगले मे भी प्रेम रोगियो की चिन्ता, कृशता, अरुचि, निद्रा नाश आदि दशाओं[1] का वर्णन करते हुए भी कवि ने राजा को अपने कर्त्तव्य कर्मों से विमुख नही दिखलाया। शकर कवि की वियोगिनी की तरह राजा की आहो से विधाता की सृष्टि के ही मलियामेट हो जाने या मीर तकी की तरह उनसे आसमान में सूराख पड़ जाने के वर्णन की तो बात ही क्या ? मीर तकी की उक्ति देखिए :—

"तारे तो ये नही, मेरी आहों से रात की,
सूराख पड गए है तमाम आसमान मे।"

नैषधीय चरित मे दमयन्ती के विरह वर्णन मे तथा श्री मैथिलीशरण गुप्त जी के उर्मिला—विरह वर्णन मे भी इसी परम्परा का दर्शन होता है।

काव्य में अतिशयोक्ति की आवश्यकता

यथार्थ प्रभाव उत्पन्न करने के लिए, चित्रपट पर किसी वस्तु को अपने वास्तविक आकार से कुछ बडे रूप मे रखना पडता है क्योंकि यदि किसी फूल, तितली, मक्खी या मानव को वहाँ उनके वास्तविक आकार मे दिखलाया जाय तो उनमे से कितनी वस्तुओ को तो दर्शक संभवतः देख ही न सके, और जिन्हे देखे भी उन्हे वास्तविक न समझकर केवल कुछ धब्बे, या छोटे-छोटे अस्पष्ट चित्र मात्र समझे। इससे प्रकट है कि चित्रपट पर किसी वस्तु या व्यक्ति को, दर्शको के लिए वास्तविकता प्रदान करने के निमित्त कुछ बडा करना पडता है। उसे कितना बड़ा किया जाए इसका निर्णय कलाकार की सूझबूझ ही कर सकती है, उसके लिए कोई एक बौद्धिक फार्मूला नही

---

१. सभोगो विप्रलम्भश्च द्विधा शृंगार उच्यते।
सयुक्तयोस्तुसंभोगो विप्रलम्भो वियुक्तयोः।
पूर्वानुराग मानाख्य प्रवासकरुणात्मना
विप्रलम्भश्चतुर्धात्र, प्रवासतस्त्र च त्रिधा।
कार्यतः सभ्रमाच्छापा दस्मिन् काव्येतु शापतः।
प्राग संगतयोर्यूनोः सतिपूर्वानुरंजने
चक्षु प्रीत्यादयोऽवस्था दश स्यु स्युस्तमो यथा—
दृङमन.संग, संकल्पाः जागर., कृशताऽरुचि,
ह्रीत्यागोन्माद मूर्च्छान्ता इत्यनग दशा दश॥
उत्तर मेघ में ३० वे पद्यकी टीका मे मल्लिनाथ

बनाया जा सकता । साहित्य मे यही कार्य उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, उदात्त आदि अलकार किया करते है । लंकाकाण्ड मे तुलसीदास ने लिखा है :—

अङ्गद दीख दशानन वैसा । सहित प्राण कज्जल गिरि जैसा ।
भुजा विटप शिर शृग समाना । रोमावली लता विधि नाना ।
मुख नासिका नयन अरु काना । गिरि कन्दरा खोह अनुमाना ।

इन चौपाइयो मे रावण की समता किसी काले पर्वत से की गई है इसे पढ कर पाठक के हृदय पर यही प्रभाव पडता है कि रावण साधारण मानवो की अपेक्षा बहुत विशाल था । इसी प्रकार यदि किसी बहुत मोटे मनुष्य को हाथी ही कह दिया जाय, तो सुनने वाले को एक क्षण के लिए भी यह धोखा नही लगता कि वह सचमुच हाथी है । ऐसे स्थलो पर 'मोटा मनुष्य' रूपी विषय को 'हाथी' रूपी विषयी निगल सा जाता है इसे ही अतिशयोक्ति अलंकार कहते है। जब इस प्रकार की अतिशयोक्ति का सहारा कविता में लिया जाता है तो उसके प्रयोग से श्रोता का चित्त आनन्द से चमत्कृत हो जाता है । यदि यह अतिशयोक्ति उचित अनुपात से बढ जाए तो वह चमत्कार को तो उत्पन्न कर सकती है, रसानुभूति को नही, जैसा कि ऊपर उद्धृत बिहारी या शकर कवि की उक्तियो मे देखा जाता है । जब वह अतिशयोक्ति या अत्युक्ति इससे भी अधिक बढ जाती है तो रसानुभूति तो बहुत दूर, चमत्कार को भी उत्पन्न नही कर सकती, जैसा कि 'मक्षिका पादघातेन चकम्पे भुवनत्रयम् ।' अर्थात् मक्खी के पैर की चोट से त्रिलोकी काँप उठी । अत. रस का परिपाक करते समय इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए कि रस के विभाव अनुभाव सचारी का परिवर्धन मर्यादा के भीतर ही किया जाए, जैसा कि कालिदास ने किया है ।

उर्दू के एक कवि ने अपह्नुति अलङ्कार द्वारा विरही प्रेमी के शरीर की जलन से नदी में छाले पड़ जाने का वर्णन किया है और कहा है कि वे छाले ही बुलबुले मालूम होते है । देखिए :—

आँवले पड गए दरया मे, नहीं है ये हुबाव ।
आशना जलके मगर आपका डूबा कोई ।।

इस प्रकार की सूक्तियों मे कल्पना की कलाबाजी तथा उक्ति की विचित्रता का चमत्कार ही विशेष होता है जिससे मस्तिष्क में एक प्रकार की गुदगुदी सी हो जाती है और सुनने वालो के मुँह से अनायास ही निकल पड़ता है कि 'क्या खूब कहा !'

किंतु ये सूक्तियाँ हृदय मे उथल-पुथल मचाकर शृंगार, करुण या वीर रस की गहरी अनुभूति को उत्पन्न नहीं कर सकती। नदी में छाले पड़ जाने का वर्णन पढ कर शायर की कलम चूमने को मन भले ही करे पर डूब मरने वाले प्रेमी के प्रति सहानुभूति तो रत्ती भर भी उत्पन्न नही होती, क्योकि इनमें अलकार आदि प्रबल होकर रस को दबालेते है। इसीलिए आचार्य आनन्द वर्धन ने शृगार रस मे अलकारो का प्रयोग करते समय कवि को विशेषतया सावधान रहने का उपदेश दिया है और अनुप्रास तथा यमक का तो प्रायः निषेध ही कर दिया है।

विक्रमोर्वशीय मे संयत शृंगार

कलिदास का दूसरा नाटक विक्रमोर्वशीय है, इसके नायक चन्द्रवशी राजा पुरुरवा तथा नायिका स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी है। कालिदास के ग्रन्थो को पढने से पता चलता है कि उस समय भारतीय आर्य किसी दूसरी जाति के निकट संपर्क मे आ रहे थे जिससे उनके रहन सहन तथा व्यवहार मे भी कुछ अन्तर पड़ रहा था। इस नाटक के पहले अक मे राजा पुरुरवा गन्धर्वराज चित्ररथ का अभिनन्दन करने के लिए उनमे हाथ[1] मिलाते है, नमस्कार नही करते। उन दिनो राजाओ की अङ्गरक्षक कोई यवन[2] नारियाँ हुआ करती थी। ये यवन कौन थे—यहाँ इस प्रश्न का अन्तिम निर्णय अभीष्ट नहीं। केवल यही तात्पर्य है कि उनका सम्बन्ध किसी विदेशी जाति से अवश्य था। उर्वशी का चित्रण करते समय भी कवि की दृष्टि मे कोई विदेशी सुन्दरी रही होगी क्योंकि वह उद्दाम प्रवृत्तियों वाली नारी है और उसमे भारतीय ललनाओ की सी लज्जा तथा सकोच का अभाव है इसका प्रमाण नाटक के प्रथम अङ्क मे ही मिल जाता है जब वह रथ का झटका लगने के बहाने, राजा के शरीर से चिपट[3] जाती है। फिर दूसरे अङ्क मे वह अभिसारिका बनकर पुरुरवा से मिलने के लिए चित्रलेखा के साथ जाती है, और उस द्वारा यह पूछे जाने पर 'तुम

१. राजा—अये गन्धर्वराजः ? (रथादवतीर्य।) स्वागत प्रिय सुहृदे।
(परस्पर हस्तौ स्पृशतः।)

२. "एष बाणासन हस्ताभिर्यवनीभिर्वन पुष्पमाला धारिणीभि.
परिवृतः इत एवागच्छति प्रियवयस्यः।" शकुन्तला—
अंक २ के प्रारम्भ में। (विदूषक का वाक्य)

३. उर्वशी रथावतार क्षोभं नाटयन्ती सत्रासं राजानमवलम्बते॥
बिक्र० अंक १. पृ० ११२

इस तरह, बिना लक्ष्य ही कहाँ जा रही हो'? कहती है, "उस दिन हेमकूट पर्वत के शिखर पर लता की शाखा मे उलझ गई माला को छुडाने मे मुझे कुछ देर लग गई थी और तुमने मुझ पर चुटकी ली थी, फिर भी पूछती हो कि बिना लक्ष्य कहाँ जा रही हूँ।" तब सखी द्वारा सावधान किये जाने पर कहती है, "जब स्वय कामदेव मुझे राह दिखा रहे है तब सोच ने समझने की बात ही क्या ? इसलिए आज तो शरम को भी एक तरफ रख मैने यही ठान लिया है," और इस पर सखी निरुत्तर[1] हो जाती है। तीसरे अक मे, इन्द्र सभा मे खेले जा रहे एक नाटक मे वह लक्ष्मी का अभिनय करने के लिए रगमच पर आती है। किन्तु तब भी अपने प्रेमी के ध्यान मे इतनी डूबी हुई है कि नाटक के अनुसार वह 'पुरुषोत्तम' न कह कर 'पुरुरवा' कह बैठती है जिस पर उसे नाट्याचार्य भरत के शाप के कारण स्वर्ग से गिरना पडता है। वहाँ से निकल कर वह राजा पुरुरवा के निवास स्थान पर आती है और मनोविनोद के लिए पीछे से राजा की आँखे अपने हाथो से ढक[2] लेती है। चौथे अक मे वह राजा के साथ विहार के लिए गधमादन पर्वत के उद्यानो मे जाती है और वहाँ भी अपनी उद्दाम प्रवृत्ति के कारण स्वामी कार्त्तिकेय के शाप से लता[3] बन जाती है। पाँचवे अक मे हम देखते है कि वह पति समागम सुख के लिए, सतान के

---

१. चित्रलेखा—क्वेदानीमनिर्दिष्ट कारण गम्यते ?
उर्वशी—सखि, तदा हेमकूट शिखरे लताविटपेन
क्षणविघ्निता काशगमना मामुपहस्य
किमिदानी पृच्छसि क्व गम्यते इति ।
चित्रलेखा—किनुखलु तस्य राजर्षे पुरुरवस. सकाश प्रस्थितासि ?
उर्वशी—अथ किम् । अय मे अपहस्तित लज्जो व्यवसाय ।।
चित्रलेखा—तथापि स्वयमेव साधु सम्प्रधार्यताम् तावत् ।
उर्वशी—सखि मदन. खलुयमा नियोजयति। किमत्र सम्प्रधार्यते ?
चित्रलेखा—अतः पर नास्ति मे वचनम् ।।
विक्रमो० अक २ पृ० १२२-१२३

२. अक ३ का विष्कम्भक पृ० १३५।
देव्यादत्तो महाराज अतोऽस्य प्रणयवतीव शरीर सपर्क गतास्मि

३. अक ३ पृ० १४५ मा खलुमा पुरोभागिनी समर्थयस्व पृ० १४६।

प्रति अपने कर्त्तव्य से बिलकुल विमुख हो जाती है।[5] ऐसी स्त्री को नायिका बनाकर भी कवि ने इस नाटक मे रगमंच पर किसी प्रकार का मर्यादा भग ही नही होने दिया किन्तु उससे वैरुप्य दिखला कर बड़ी रानी काशीराजपुत्री के संयम त्याग तथा आत्म समर्पण को अधिक समुज्वल बना दिया।

मालविकाग्निमित्र में संयत शृंगार

कवि का तीसरा नाटक मालविकाग्निमित्र है। नाटको मे यह उसकी प्रथम कृति है क्योंकि इसी में उसने अपना परिचय अभिनव कवि के रूप मे देकर भास, आदि प्रसिद्ध नाटककारो की रचनाओ के सामने, समाज मे अपने नाटको के सम्मान के विषय मे कुछ सदेह प्रकट किया है। इस नाटक का विषय विदिशा के राजा अग्निमित्र तथा विदर्भ की राजकुमारी मालविका की प्रेम गाथा है। यद्यपि राजा वीर शासक है तथापि यहाँ उसका चित्रण उस धीर ललित नायक के रूप मे हुआ है जिसका सारा समय नाच गान तथा प्रेम लीलाओ मे व्यतीत हो जाया करता है।

विदर्भ के राज परिवार मे उन दिनो कुछ कलह चल रहा था। बड़े भाई यज्ञसेन के साले मौर्य सचिव को अग्निमित्र ने बन्दी बना लिया था किन्तु छोटा भाई माधवसेन अपनी बहिन मालविका का विवाह उसके साथ करना चाहता था और इसी प्रयोजन से उसने अपने मन्त्री सुमति के साथ उसे विदिशा भेजा था, किन्तु मार्ग मे ही डाकुओं के एक दल ने उन पर आक्रमण कर दिया जिसमे सुमति मारा गया और मालविका उनके हाथ पड़ गई। डाकुओ का सामना जब अग्निमित्र के साले वीरसेन मे भी हुवा तब वे भाग गए तब मालविका को अत्यन्त सुन्दरी देख वीरसेन ने उसे दासी बनाकर अपनी बहिन महारानी धारिणी के पास भेज दिया जहाँ वह प्रच्छन्न रूप से अपनी विपत्ति के दिन काटने लगी।

राजा ने एक दिन किसी चित्र मे उसे रानी के पास खड़ी देख लिया और उस पर लट्टू हो गया। राजा की इच्छा उसे साक्षात् देखने की हुई तो राजा के मित्र विदूषक ने एक योजना तैयार की कि दरबार के उन प्रधान दो नाट्याचार्यो की परीक्षा होनी चाहिए जो राज्य से भारी वेतन पाते है। निश्चय हुआ कि दोनों आचार्य अपनी एक-एक शिष्य का नाट्य राजा के सम्मुख प्रस्तुत करे। महारानी ने बहुत टालमटोल की कि मालविका राजा के सामने न आए किन्तु

५ ततो मया महाराज वियोग भीतया जातमात्र एव
आर्यायाः सत्यवत्या हस्तेऽप्रकाश निक्षिप्तः। विक्रमा० अक ५ पृ० १७८

उसकी एक न चली और अन्त मे मालविका को आचार्य गणदास के साथ प्रेक्षागृह मे आना ही पडा। अभी वह पर्दे के पीछे ही थी कि राजा उसे देखने के लिए उतावला हो उठा। इस पर विदूषक ने वहाँ महारानी की उपस्थिति का ध्यान कराते हुए कहा कि तुम्हारे नेत्रो के लिए मधुरूप तुम्हारी प्यारी तो आ रही है पर मधुमक्खी भी मडरा रही है। राजा सावधान हो गया और पर्दा उठने पर, मालविका को देख कर राजा ने विदूषक से कहा कि तसवीर मे देख कर मै समझा था कि यह सचमुच इतनी सुन्दर न होगी, पर अब पता चल रहा है कि इसका रूप चित्रित करने में तो चित्रकार ही असफल रहा है। फिर उसके सौन्दर्य की सराहना करता हुआ राजा मन ही मन कहने लगा कि यह तो सिर से पैर तक एक दम सुन्दर है। बडी-बडी आँखे, शरद के चाँद-सा चेहरा, कन्धों के पास झुकी हुई बाहे, कड़े स्तनो से जकड़ी हुई सुन्दर छाती, सुघड कांखे, मुट्ठी भर की कमर, भारी नितम्ब, और उभरी हुई उगलियो वाले दोनो पैर—मानो नाट्याचार्य की इच्छा के अनुरूप ही विधाता ने इसके एक एक अग की रचना की है।

आचार्य ने मालविका को सकेत किया और नृत्य मे अपने गीत के एक-एक भाव की अभिव्यजना का अभिनय करती हुई गाने लगी—

"छोडो छोडो हृदय रे, पिय से मिलन की आशा।
मिल सकता नही मेरा प्यारा, आँख बाई क्या करती इशारा?
आज कब से इन्हे है निहारा, सूझता पर मिलन का न चारा,
मै हूँ बेबस, तुम्हारी तो भी, लिए अभिलाषा॥"

एक तो मालविका अपूर्व सुन्दरी, फिर ललित कला मे उसकी स्वाभाविक गति और सूझबूझ, उस पर भी गणदास जैसे कुशल आचार्य द्वारा प्रशिक्षण—सब ने मिलकर सोने मे सुहागा सा कर दिया। देख कर राजा विदूषक से कहने लगा कि मित्र इस सहज सुन्दरी को ललित कला की शिक्षा क्या मिल गई, यह तो विधाता ने कामदेव के हाथ मे विष-बुझा तीर ही दे दिया। राजा को सन्देह न रहा कि महारानी की उपस्थिति मे, अन्य कोई उपाय न देख, उसकी प्यारी ने, कला के बहाने, अपना कलेजा ही काढ कर उसके आगे रख दिया है और कह दिया है कि हे नाथ मै पराधीन हूँ तो भी तुम्हारी हूँ और तुम्हारी ही चाह लिए जी रही हूँ, मै प्राणपण से तुम पर निछावर हूँ। इसी समय महारानी की आज्ञा से मालविका आचार्य के साथ वहाँ से चली जाती है और अंक समाप्त हो जाता है।

तीसरे अक मे, छोटी रानी इरावती की प्रार्थना पर उसके साथ झूला

झूलने के लिए राजा अपने मित्र विदूषक के साथ उद्यान में पहुँचता है किन्तु वह तब तक वहाँ नही आई है। इसी समय महारानी की आज्ञा से मालविका अपनी सखी बकुलावलिका के साथ उस अशोक वृक्ष के दोहद के लिए वहाँ आ पहुचती है जो वसन्त ऋतु आ जाने पर भी खिला नही था। अवसर पाकर राजा उससे प्रेम याचना करता है तभी इरावती अचानक आ धमकती है और नाराज होकर उलहना देती है कि पुरुषो का विश्वास नही किया जा सकता। भोली भाली युवतियों को वे ऐसे ठगते फिरते है जैसे मधुर गीत गाकर शिकारी हरिणियो को। इस पर राजा कहता है "हमे तो मालविका से कुछ भी वास्ता नही, तुम्हे आने मे देर हो रही थी यह देख कर हमने घडी भर उससे ही दि बहलाव कर लिया। तब इरावती ने कहा कि आपकी बात तो ठीक ही है पर मुझे यह पता न था कि आपने दिल बहलाव के लिए ऐसे-ऐसे सामान जुटा रक्खे है, नही तो मै अभागिन यहाँ आती ही क्यो? इस प्रकार रग मे भग हो जाता है और सब अपनी-अपनी राह लेते हैं।

चौथे अक के पढने से पता चलता है कि यद्यपि मालविका के विषय मे महारानी को शका तो पहले भी थी, पर ऊपर की घटना से वह पुष्ट होगई, और परिणाम यह हुआ कि मालविका तथा उनकी सखी बकुलावलिका को तहखाने मे कैद कर उनपर पहरा बैठा दिया गया और महारानी ने आदेश दिया कि जब तक वे स्वय आज्ञा न दे और कोई उनकी अगूठी न दिखाए तब तक इन्हे कैद से छोड़ा न जाए। इस पर विदूषक ने अपनी उगली मे काँटा चुभने के निशान बना लिए और कह दिया कि महारानी को उपहार देने के लिए फूल चुनते हुए उसे काले नाग ने डस लिया। यह सुनकर महारानी घबरा गई कि उसी के कारण एक ब्राह्मण की जान जारही है। वैद्य द्वारा चिकित्सा के लिए मागे जाने पर महारानी ने तुरन्त अपनी वह अगूठी दे दी जिस पर नाग का चिन्ह बना हुआ था और उसे दिखा कर विदूषक ने बडी चतुराई से मालविका और उसकी सखी को कद से छुडा कर समुद्रगृह में भेज दिया और स्वय भी राजा को लेकर वहाँ आगया। सखी ने विदूषक को द्वार पर बैठ कर पहरा देने को कहा और स्वयं भी वहाँ से हट गई जिससे कि प्रेमीयुगल एकान्त मे निःसंकोच मिल सके। एकान्त पाकर राजा मालविका को गले लगाना चाहता है पर वह उसे ऐसा नहीं करने देती और इसी समय इरावती अपनी दासी के साथ वहाँ आ पहुंचती है। द्वार पर बैठे विदूषक को ऊघते देखा दासी डराने के लिए एक टेडी लकडी उस पर फेक देती है जिससे डर कर वह साँप-साँप का शोर मचा देता है और तभी भीतर से राजा और दूसरी ओर से बकुलावलिका भी

वहाँ आजाते है। राजा को मालविका से एकान्त मे मिलते देख इरावती फिर बिगड उठती है, राजा बहुत सफाई देना चाहता है पर वह कुछ भी नही सुनती तभी एक दासी सहसा आकर सूचना देती है कि राजकुमारी वसुलक्ष्मी पीले बन्दर से डर कर बेहोश हो गई है और सब उसे देखने को वहाँ चले जाते है।

पाँचवे अक मे यह भेद खुल जाता है कि मालविका विदर्भ के राजकुमार माधवसेन की बहिन है और तब महारानी को, उसके प्रति किए गए अपने दुर्व्यवहार पर पाश्चात्ताप होता है। वह इस बात से पहले ही प्रसन्न थी कि मालविका के किए दोहद मे ही उसका प्रिय अशोक फूल उठा था। अब उसकी कुलीनता को जान कर रहा-सहा रोष भी जाता रहा। इसी समय यह शुभ समाचार मिला कि महारानी के पुत्र वसुमित्र ने अपने पितामह पुष्यमित्र के अश्वमेघ-यज्ञ के घोडे को पकडने का यत्न करने वाले यवनो को परास्त कर दिया है। इस खुशी मे महारानी स्वय ही राजा से निवेदन करती है कि वह राजकुमारी मालविका को रानी रूप मे स्वीकार करे, और उनका विवाह हो जाता है।

नाटक का विषय आदि मे अन्त तक प्रेम प्रधान है, घटनाएं भी एक के बाद एक इस प्रकार ग्रथित हुई है कि प्रेमियो को एकान्त मे मिलने का बार-बार अवसर प्राप्त होता है किन्तु सवादो या व्यवहारो मे कवि ने कही मर्यादा का उल्लघन नही होने दिया। और ऐसा करने के लिए उसे मानो तलवार की धार पर चलना पडा है क्यो कि एक ओर बाल भर भी बढ जाने पर यदि नीरसता का भय था तो दूसरी ओर उच्छृखलता का।

ऋतु संहार में शृंगार

काव्यो मे ऋतुसहार कवि की प्रथम रचना है, इसमे उसने छहों ऋतुओं तथा परिस्थिति के अनुसार उनमे बदलने वाले नागरिक जीवन की कुछ झाकियां अकित की है। ऋतु वर्णन मे कवि ने आँख, नाक, कान आदि बाह्य इन्द्रियो से गृहीत होने वाले प्रकृति के गोचर रूप और मानव जीवन पर उसके स्थूल प्रभावों का ही वर्णन सीधे सादे तथ्य कथन के रूप मे किया है। उसमे आदि से अत तक सूक्ष्म कल्पना तथा उसकी ऊँची उडान और कवि-कला का प्राय अभाव सा ही है। यही कारण है कि कुछ लोग उसे कालिदास की रचना नही स्वीकार करना चाहते। उनका यह विचार ठीक नही किन्तु इस प्रारम्भिक कृति के आधार पर कवि के विषय मे कोई अन्तिम धारणा नही बनानी चाहिए इसके कारण उसकी अगली सफलताओ का गौरव

भी कुछ कम नहीं हो जाता। ऋतु संसार के ग्रीष्म वर्णन के एक दो पद्य देखिए :—सूर्य की धूप बहुत तीखी हो गई है । रात के समय चाँद प्यारा लगता है, शीतल जलों में बहुत देर तक नहाया जा सकता है, साँझे सुहावनी हो गई है और प्रेमियों में कामदेव का वेग मन्द पड गया है।[1] मानव जीवन पर इस ऋतु के प्रभाव की भी एक झलक देखे :—स्त्रियों ने बहुत हलकी रेशमी साडी पहन कर उस पर करधनी बाँध ली है, चन्दन से पुते स्तनो पर हार धारण कर लिए हैं, और नहाने के बाद जूडो को भी भीनी महक से बसा लिया है। अतः जब प्रेमी उनसे मिलते है तो इन शीतल उपचारो के कारण उनकी भी तपन मिट जाती है।[2] गर्मी के कारण खेत और वन भयकर हो गए है। वन की आग ने बहुत आगे तक बढकर खेतो को झुलसा दिया है, अधड़ के प्रबल वेग से वृक्षो के सूखे पत्ते उडे जा रहे है और सूर्य की तेज धूप ने ताल तलैयो के पानी दूर दूर तक सुखा दिए है।[3]

शैली की 'ओड टु वि वेस्ट विंड' कविता में वायु का मानवीकरण

शृगार वर्णन मे जैसा संयम कालिदास ने नाटको मे दिखाया है वैसा ऋतु संहार मे नही है क्योकि उसमे स्त्री पुरुष के शारीरिक सयोग के विषय मे एक दो स्थलों[4] पर अधिक स्पष्ट निदेश हो गया है तो भी उस समय कवि की अपरिपक्व आयु, तथा प्रथम रचना आदि की दृष्टि से उसे क्षमा किया जा सकता है। कवि की इस प्रथम रचना में

---

१. प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीय चन्द्रमाः सदावगाह क्षमवारि सचयः
दिनान्त रम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाधकालोऽयमुपागतः प्रिये ॥
ऋतु सहार १—१

२ नितम्ब बिम्बैः सदुकल मेखलैः स्तनैः सहाराभरणैः सचन्दनैः ।
शिरोरुहैः स्नान कषाय वासितैः स्त्रियो निदाधं शमयन्ति कामिनाम् ॥१-४

३. पटुतर दवदाहोच्छुष्क सस्य प्ररोहा. परुप पवनवेगोत्क्षिप्तसंशुष्कपर्णाः ।
दिनकरपरितापक्षीणतोया समन्ताद्विदधति भयमुच्चै र्वीक्ष्यमाणावनान्ताः ॥
॥ १-२२ ॥

४. क पुष्पासवामोद सुगन्धि वक्त्रैर्निःश्वासवातैः सुरभी कृतांगः
परस्पराङ्गव्यतिषगशायी शेते जनः काम रसानुविद्धः ॥ ४-१२
ख. दन्तच्छदैः सव्रण दन्तचिह्नैः घनैश्च पाण्यग्रकृताभिलेखैः ।
संसूच्यते निर्दयमंगानां रतोपभोगो नव यौवनाम् ॥ ४-१३

आये ग्रीष्म या वर्षा ऋतु के पवन वर्णन मे अग्रेजी कवि शैली जैसे सिद्ध हस्त लेखक की 'ओड टु दि वैस्ट विण्ड' जैसी कविता का सौन्दर्य ढूढना अनुचित है जिसमे रूढिवाद के विद्रोही कवि ने प्रकृति के कलापूर्ण वर्णन के साथ मानवीय अनुभूति का अद्भुत मिश्रण करके मणिकाञ्चन संयोग उपस्थित कर दिया है। पाठको के मनोरजन के लिए शैली की कविता के प्रथम तथा अन्तिम पद्यों का हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जाता है :—

पश्चिम के उच्छृखल मारुत, हे पतझड के जीवन प्राण,
रूपविहीन भले ही तुम हो, तो भी तुम्हे आ गया जान—
उड जाते है तरुओ के दल काले पीले लाल प्रभूत—
सूखे, जैसे जादूगर के आगे ठहर न सकते भूत।
तुम ही उडे जा रहे बीजों को बिठला अपने रथ पर—
पहुँचा देते श्याम शारदी उनकी शय्या के भीतर,
जहाँ पड़े रहते है कबरो मे वे शव जैसे तब तक—
बहिन तुम्हारी पवन वसन्ती नही बजाती है जब तक—
आकर इस स्वप्निल वसुधा पर अपनी तुरही, और न भर—
देती रेवड सी बहु रगी कलियो से इसको सत्वर।

× × ×

हे उद्दड देवता, बाधा रहित तुम्हारा है सचार—
सकल विश्व मे, तुम विध्वसक भी रक्षक हो, सुनो पुकार—
'इस वन को ही तरह बनालो मुझ को भी निज वीणा आज,
मत देखो झडने इस जैसे मेरे भी पत्तो के साज,
तेरी ऊर्जस्वल समता मे उठने वाला कोलाहल—
तान निकालेगा हम दोनो मे से पतझड की अविरल—
मीठी भी करुणा मे डूबी, तू बनजा आत्मा उच्चण्ड,
मेरी आत्मा, मै ही बनजा, लिए प्रेरणा स्रोत अखण्ड,
सूखे पत्तो जैसे मेरे लेकर ये निष्प्राण विचार—
फैलादे जिससे हो जल्दी जग मे नव जीवन सचार।
गा यह कविता रूप मन्त्र तू मेरे शब्दो को समार—
मे फैलादे जैसे कोई ज्वलित अग्नि मे से अगार।

तू बनजा मेरे होंठो पर तुरही, सुप्त विश्व के देश—
जिससे सुनले यह आशामय नवभविष्य वाणी-सदेश—
"यदि आती है शरद, अधिक क्या रह सकताहै दूर वसन्त ?"
दुख के पीछे सुख आता है, यही नियति का नियम अनन्त ॥

इन पद्यों मे कवि ने अपनी तुलना पतझड़ की उस प्रचण्ड पवन से की है जिसके आघात से लता वृक्षों के पुराने पत्तो के झड़ जाने पर नई कलियों के फूटने की तैयारी होने लगती है। कवि मानव समाज मे बद्धमूल प्राचीन रूढ़ियो को उखाड फेंकना चाहता है किन्तु अनुभव करता है कि उसकी वाणी मे वह बल नही जो जीर्ण जगत् मे क्रान्ति ला सके। इसलिए वह उस पवन से प्रार्थना करता है कि वही (प्रचण्ड पवन ही) उसकी अन्तरात्मा बन जाए और कवि द्वारा ऐसी तुमुल ध्वनि उत्पन्न करदे जिससे समाज की सुप्त, आत्मा जाग उठे और उसे उज्वल भविष्य का नव सन्देश दे सके।

कालिदास में प्रकृति का चेतनीकरण तथा मानव से एकात्मता

सत्य तो यह है कि कालिदास का मन उग्र तथा उद्दाम वस्तुओं के वर्णन में वैसा नही रमता जसा सुकुमार तथा मधुर वस्तुओ के वर्णन मे। किन्तु ऊपर की पंक्तियों को पढ़ कर पाठक यह न ममझ ले कि कालिदास प्रकृति के साथ मानव जीवन के तादात्म्य को अनुभव न करता था। उसकी रचनाओं को पढ़ने मे प्रतीत होता है कि अनुभव-वृद्धि के साथ उसके हृदय मे प्रकृति के साथ मानवजीवन के तादात्म्य की भावना निरंतर बढती चली गई और केवल शकुन्तला ही वन लताओं को अपनी बहिन न समझने लगी किन्तु वे भी उसके वियोग मे आसू बहाती दीखती हैं। कण्वाश्रम के लता वृक्षों तथा पशु पक्षियों और मानव पात्रो मे एक ही आत्मा उच्छ्वसित होती प्रतीत होती है। मेघदूत का मेघ भी मानवीकरण का सुन्दर उदाहरण है जिसमें कवि ने मानवात्मा के समावेश में अपूर्व कौशल से काम लिया है और जिसे एक संयोगी प्रेमी के रूप मे चित्रित करते हुए कहा है कि हे मित्र, मैंने तुम्हे जो काम सहेजा है वह संभवतः तुम्हारी पद-प्रतिष्ठा के अनुरूप न हो, तो भी मित्रता के नाते या मुझ विरही पर तरस खाके ही, तुम उसे अवश्य कर देना, और फिर इस पावसी शोभा को धारण किए, मन चाहे प्रदेशों की सैर करते फिरना, और मेरी यह भी शुभ कामना है कि मेरी तरह तुम्हे भी अपनी प्रियतमा

बिजली[1] से कभी बिछुडना न पड़े।

मेघदूत एक प्रेम प्रधान खण्ड काव्य है जिसमे कवि ने प्रकृति को पृष्ठ भूमि बनाकर विप्रलम्भ शृंगार का अत्यन्त मनोरम चित्र खीचा है। यह दृश्यकाव्य नही, अत भारतीय परपरा के अनुसार रंगमच या चित्रपट के लिए आवश्यक निषेध यहा अनिवार्य नही, तथापि कवि ने पर्याप्त सयम से काम लिया है। तो भी यह नही कहा जा सकता कि इसमे उसकी लेखनी उतनी ही सयत रही है जितनी अभिज्ञान शाकुन्तल मे। आज के समाज मे वेश्याओं का जो स्थान है, वह कालिदास के समय भी था। वे देव मन्दिरों मे नाचगान का व्यवसाय तो करती थी किन्तु साथ ही वे विलासियो की वासना-तृप्ति का साधन भी अवश्य थी। विलासि-जन वेश्याओ के यहा जाकर क्या[2] करते है यह किसी से छिपा नही अत कवि यदि उसका निर्देश व्यजना मात्र से करके सतुष्ट हो जाता और पूर्व मेघ के १७ वे पद्य के उत्तरार्ध मे पण्य स्त्रियो के साथ नागरिको के सभोग का वर्णन अभिधा से न करता तो भी रसानुभूति मे कुछ कमी न आती। उसी पूर्वमेघ के ४५ वे पद्य के अन्तिम चरण मे आए अर्थान्तरन्यास की विवृतोक्ति[3] को भी यदि वह बचा जाता तो कुछ क्षति न होती जैसा कि उत्तर मेघ के ५३ वे पद्य मे मेघ द्वारा अपनी प्रिय पत्नी को ढारस बँधाता हुआ यक्ष कहता है, "शीघ्र ही विष्णु भगवान् अपनी शेष-शय्या का त्याग करके

मघदूत मे शृंगार

१ एतत्कृत्वाप्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे
सौहार्दद्वि विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुध्या।
इष्टान्देशान् जलद विचर प्रावृषा सभृतश्री
र्माभूदेव क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः। उत्तर मेघ. ५२

२ नीचै राख्य गिरिमाधिवसेस्तत्र विश्राम हेतो
स्त्वत्सपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बै।
य पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारि भि नागराणा
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभि र्यौवनानि॥ पूर्वमेघ पद्य २७॥

३. तस्या किंचित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाख,
हृत्वा नील सलिलवसन मुक्तरोधो नितम्बम्।
प्रस्थानते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि,
ज्ञातास्वादो विवृतजघना कोविहातु समर्थ॥ पूर्व मेघ पद्य ४५॥

उठने वाले हैं, तभी मेरा शाप भी समाप्त हो जाएगा। इन चार महीनों को तुम आँख मूंद कर निकाल दो। फिर तो, विरह के इन दिनों में पूरी न होने के कारण बढी हुई अपने के मन की उन उन साधों[1] को हम शरद् ऋतु की चाँदनी रातो मे पूरी कर ही लेगे।" एक पति की इन साधों में क्या बात नही आ जाती जिसका निर्देश अलग से करना आवश्यक हो। इस पद्य में कवि ने उन सबका वर्णन व्यजना द्वारा किस खूबी से कर दिया है ?

मेघदूत की चर्चा समाप्त करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस खण्ड काव्य का उपक्रम कवि ने कुबेर के उस शाप से किया है जिसका भाजन यक्ष को केवल इसलिए बनना पड़ा था कि वह पत्नी के प्रेम मे पड़ कर अपने कर्त्तव्य कार्यों से भी विमुख हो गया था, और सभवत इसीलिए उसके उस शाप का रूप था—एक वर्ष पर्यन्त पत्नी से अलग रहना अर्थात् सयम। इस शाप की समाप्ति उस शेष शायी विष्णु भगवान् के जागरण पर होती है जिसके निकट सर्पराज शेष और गरुड अपना शाश्वतिक वैर भुला कर मर्यादा में रहते है। समस्त मेघदूत मे स्थायी भाव यद्यपि रति है किन्तु उसमे नायक नायिका के वियोग वर्णन मे चिन्ता[2], स्मृति[3], उत्कठा[4], दैन्य[5], विषाद[6], शङ्का[7]

१ शापान्तोऽस्मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।
पश्चादावा विरहगुणितं ततमात्माभिलाष
निर्वेक्ष्याव. परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु॥ उत्तर मेघ पद्य ४६

२. ध्यान चिन्ता हिताऽनाप्तेः शून्यताश्वासतापकृत्।
सा० द० तृतीय परिच्छेद कारिका १७१
यथा—तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधान हेतो–
रन्तर्वाष्पिश्चिर मनुचरो राजराजस्य दध्यौ, पूर्व मेघ ३

३. सदृशज्ञानचिन्ताद्यैः भ्रूसमुन्नयनादिकृत्।
स्मृति. पूर्वानुभूतार्थ विषयज्ञान मुच्यते। सा० द० कारिका १६३
यथा—तस्यास्तीरे रचित शिखर. पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनककदली वेष्टन प्रेक्षणीयः
मद्गेहिन्याः प्रियइति सखे चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्त स्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि॥ उत्तर मेघ १४॥

४. रागे त्वलब्ध विषये वेदना महती तु या।
संशोषणीतु गात्राणां तामुत्कण्ठां विदुर्बुधाः॥

यथा—ता जानीया परिमितकथा जीवित मे द्वितीय,
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्
गाढोत्कण्ठा गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बाला
जाता मन्ये शिशिरमथिता पद्मिनी वान्यरूपाम् । उत्तर मेघ २० ॥

५. दौर्गत्याद्यैरनौजस्य दैन्य मलिनतादिकृत् ॥ सा० द० ३ का १४५
यथा—उत्सगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणा
मद्गोत्राक विरचितपद गेयमुद्गातुकामाम् ।
तन्त्रीमार्द्रा नयनसलिलै सारयित्वा कथचित्
भूयोभूय स्वयमपि कृता मूर्च्छना विस्मरन्ती ॥

६ उपायाभावजन्मा तु विषाद. सत्वसक्षय ।
नि श्वासोच्छ्वासहृत्तापसहायान्वेषणादिकृत् सा० द० ३ का १६७
यथा क—क. सन्नद्धे विरह विधुरा त्वय्युपेक्षेत जाया,
न स्यादन्योऽप्यहमिवजनो य पराधीन वृत्ति । पू० मे० ८ ।
ख—तेनार्थित्व त्वयिविधि वशा द् रबन्धुर्गतोऽह
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ पू० मे० ६
ग—अगेनाग प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्त
सास्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ।
उष्णोच्छ्वास समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्त्ती
सकल्पै स्त्वा विशति विधिना वैरिणारुद्धमार्ग ॥ उत्तर मेघ ९९

७ परक्रौर्यात्मदोषाद्यै शकाऽनर्थस्य तर्कणम्
वैवर्ण्यकम्पवैस्वर्यपार्श्वलोकास्यशोषकृत् ॥ सा० द० का १६१
क—प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीविताालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयी हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रै. कुटजकुसुमै. कल्पितार्धाय तस्मै
प्रीत. प्रीतिप्रमुखवचन स्वागत व्याजहार । पूर्व मेघ० ४ ।
ख—तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तु
ब्रूया एव तव सहचरो रामगिर्या श्रमस्थ. ।
अव्यापन्न कुशलमबले पृच्छति त्वा वियुक्त:
पूर्वाभाष्य सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ उत्तर मे० ९८ ।

तथा उन्माद[1], स्वप्न[2] आदि संचारियों का ही, अधिक वर्णन हुआ है। फलतः उपक्रम और उपसंहार में प्रधानता[3] को प्राप्त विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत सभोग शृंगार सम्बन्धी ये कतिपय पद या वाक्य पाठक के हृदय पर कितना प्रभाव डालते हैं इसका निर्णय सहृदय स्वयं ही कर सकते है।

रघुवंश में शृंगार

काव्यो में रघुवश कवि की अन्तिम कृति है। इसकी रचना उसने अपने जीवन के अन्तिम भाग में की प्रतीत होती है। तब तक वह व्यक्तियो तथा राज्यों के जीवन के अनेक उतार चढावो को अपनी आँखो से, और वह भी अत्यन्त निकट से देख चुका था। कुछ आश्चर्य नही कि उन दिनो उसकी रुचि

---

१ क—चित्तसमोह उन्माद. कामशोकभयादिभि:
अस्थानहासरुदितगीतप्रलपनादिकृत्। सा० द० का १६०

ख—उन्मादश्चापरिच्छेदश्चेतनाऽचेतनेष्वपि ॥ सा० द० ३ का १९१

यथा. क—इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्त ययाचे
कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु। पूर्व० मे० ५।

ख—भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणा
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ता।
आलिंग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाता
पूर्वं स्पृष्टं यदि किलमेभवेदगमेभिस्तवेति ॥ उ० मे० १०।

२ स्वप्नोनिद्रामुपेतस्य विषयानुभवस्तुयः। सा० द० ३ १५२

यथा—मामाकाश प्रणिहितभुजनिर्दयाश्लेषहेतो
र्लब्धायास्ते कथमपि मयास्वप्नसदर्शनेषु।
पश्यन्तीना न खलु बहुशो न स्थलीदेवताना
मुक्ता स्थूलास्तरू किसलयेष्वश्रुलेशाःपतन्ति ॥ उ० मे० १०३

३. क—स्रक्सूत्रवृत्या भावानामन्येषामनुगामकः
न तिरोधीयते स्थायी, तैरसौ पुष्यते परम् ॥

ख—अविरुद्धाविरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः
आस्वादाकुरकन्दोऽसौभावः स्थायीति समतः ॥ सा० द० ३ का १७४

कुछ कुछ योग आदि की ओर भी रही हो जिसका आभास आठवें[1] सर्ग मे रघु के वानप्रस्थ बनने तथा उसकी योग साधना के वर्णन में मिलता है। यद्यपि योग के सिद्धान्तो तथा योगियों से उसका परिचय इस से पूर्व भी रहा होगा जैसा कि कुमार सभव के प्रथम[2] सर्ग तथा तृतीय[3] सर्ग के अध्ययन से प्रकट होता है, किन्तु जीवन मृत्यु आदि के सम्बन्ध मे विचारो की प्रौढता तथा भावनाओ की जो परिपक्वता रघुवश के आठवे सर्ग मे ऋषि वशिष्ठ के उपदेश मे पाई जाती है वह अन्यत्र नही।

रघुवश के उन्नीसवे सर्ग मे राजा अग्निवर्ण की विलास लीलाओ का जो विस्तृत विवरण कवि ने दिया है, वह कुछ समीक्षको की दृष्टि मे कही कही

---

१ (क) अजिताधिगमाय मन्त्रिभि र्युयुजे नीतिविशारदैरज
अनपायिपदो पलब्धये रघुराप्तै: समियाय योगिभि ॥ रघु सर्ग ८ पद्य १७

ख—नृपतिःप्रकृतीखेक्षितु व्यवहारासन माददे युवा।
परिचेतुमुपाशु धारणा कुशपूतप्रवयास्तु विष्टरम्।
रघु० सर्ग ८ पद्य १८

ग—अनयत्प्रभुशक्तिमपदा वशमेको नृपतीनन्तरान्।
अपर प्रणिधानयोग्यया मरुत.पच शरीरगोचरान् ॥ रघु सर्ग ८ व १९

घ—न नव प्रभुराफलोदयात् स्थिरकर्माविराम कर्मण:।
न च योगविधेर्नवेतरः स्थिरधीरापरमात्मदर्शनात् ॥ रघु सर्ग ८ प० २२

२. क—तत्राग्नि माधाय समित्समिद्धस्वमेवमूर्त्यन्तर मष्टमूर्ति.।
स्वय विधाता तपस फलाना केनापि कामेन तप श्चचार ॥
कुमार० सर्ग १ पद्य ५७

३. क—पर्यकबन्धस्थिर पूर्वकाय मृज्वायत सन्नमितोभयासम्।
उत्तानपाणिद्वय सन्निवेशात्प्रफुल्लराजीव मिवाकमध्ये ॥
कुमार० सर्ग ३ पद्य ४५

ख—अवृष्टि सरम्भमिवाम्बुवाह मपामिवाधार मनुत्तरंगम्।
अन्तश्चेराणा मरुता निरोधान्निवात निष्कम्पमिवप्रदीपम् ॥
कुमार० सर्ग ३ पद्य ४८

ग—मनो नवद्वारनिषिद्धवृत्ति हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवश्यम्।
यमक्षर क्षेत्रविदो विदुस्तमात्मान मात्मन्यव लोकयन्तम् ॥
कुमार० सर्ग ३ प० ५०

मर्यादा या औचित्य को लाँघ गया है। यह तो स्वीकार करना ही चाहिए कि उसमे शृंगार रस ऐसा लबालब भरा हुआ है कि पद पद पर उसके छलक जाने का डर लगा रहता है। पर यह भी भूलना न चाहिए कि सुरुचि तथा कुरुचि और औचित्य के मानदण्ड प्रत्येक देश तथा जाति मे एक से नही होते। और एक ही देश या जाति मे भी वे समय समय पर बदलते रहते हैं। आज भी लोलिता तथा लेडी शैटर लेज लवर्स जैसी पुस्तके अश्लील हैं या नही, यह प्रश्न सभ्य संसार के साहित्य-समीक्षको के लिए समस्या बना हुआ है। कई देशों मे उनकी बिक्री पर प्रतिबन्ध लगा हुआ हैं जबकि दूसरे विचारक उनमें कुछ भी बुराई नही देखते और कहते है कि ऐसे साहित्य का अध्ययन मनोवैज्ञानिक या किसी समस्या के समाधान की दृष्टि से करना चाहिए। शरीर के जिन अंगो का खुला प्रदर्शन समाज मे शोभन नही माना जाता, एक कलाकार के कला भवन और शवच्छेदन की टेबल पर उन्हे क्रमशः सुन्दर और आवश्यक समझा जाता है। यह भी जान पड़ता है कि बीसवी शताब्दी के बहुत से साहित्यकारो पर फरायड़ महोदय की छाप की तरह किसी युग मे सस्कृत साहित्य के प्राचीन कवियो पर वात्स्यायन के काम शास्त्र का गहरा प्रभाव पड गया था। साथ ही, सदा से, काव्य का एक प्रयोजन व्यवहार-ज्ञान भी माना जाता रहा है, सभवतः इसीलिए कालिदास तथा उसके परवर्त्ती भारवि, माघ, श्री हर्ष आदि कवि अपनी रचनाओ मे इस विषय को अधिकाधिक महत्व देते चले गए।

रघुवंश का उन्नीसवां सर्ग

रघुवश के अन्त में इस सर्ग को रखने का उद्देश्य कवि की दृष्टि मे, सभवतः यह भी रहा हो कि वह जिस राजा या राजवंश के आश्रय मे रहता था उसके बल तथा प्रताप शीघ्रता से ह्रासोन्मुख हो रहे थे और उसका मुख्य कारण राजाओं की भोग परायणता थी। कवि यह बतलाना चाहता था कि किस प्रकार रघु जैसे राजा मिट्टी के पात्रो मे भोजन करते हुए अपनी दिग्विजयों और प्रचण्ड शौर्य से साम्राज्यों की स्थापना करते है और किस प्रकार अग्नि वर्ण जैसे विषयी शासक अपने स्त्रैण जीवन से उनकी चिता तैयार कर देते है। अग्नि वर्ण का वर्णन करता हुआ वह लिखता है कि वह अग्नि के समान तेजस्वी[1]

---

१. क—अग्निवर्ण मभिषिच्यराघवः स्वे पदे तनयमग्नितेजसम्।
शिश्रिये श्रुतवतामपश्चिम. पश्चिमे वयसि नैमिषं वशी॥
रघु १९—१

था अत प्राप्त राज्य की रक्षा करने में उसे कुछ भी प्रयास न हुआ। इसलिए वह निश्चिन्त हो गया और राजकाज की देखभाल मन्त्रियों को सौंप भोग विलास मे डूब गया। स्त्रियों के बिना उसे क्षण भर भी चैन न पडती थी। वह सदा अन्तःपुर मे ही बना रहता था और यदि कभी मन्त्रियों ने आग्रह किया तो वह उनकी बात रखने को, अपना एक पैर राजभवन की खिड़की से बाहर लटका देता और प्रजा उसी के दर्शनो से अपने को कृतार्थ समझ लौट जाती। कभी वह विलासिनी स्त्रियो के साथ खिले हुए कमलो वाली उन वाटिकाओ मे विहार करता हुआ ही सारा दिन निकाल देता था जिनके बीच मे गुप्त विलास भवन बने हुए थे, तो कभी उन मदिरा गृहो मे पहुँच जाता था जहाँ शराब के दौर पर दौर निरन्तर चलते रहते थे। उसकी गोद मधुर स्वर वाली वीणा या किसी प्रेमिका से सदा अलंकृत रहती थी। कभी वह नृत्यशाला मे चला जाता तो स्वय मृदग ले बैठता और उसे ऐसी चतुराई से बजाता कि बडी बडी कुशल नर्तकिया भी उसके साथ नाचने मे ताल से चूक जाती[3]। कभी वह अपनी प्रणयिनी से रात को मिलने की बात पक्की करके भी केवल तमाशा देखने के लिए कही पास ही छिप कर बैठा रहता और जब वह उसकी प्रतीक्षा करती, हार कर कातर हो जाती और उसे उलाहने देने लग जाती तो उन्हे सुनने मे

ख—सोऽधिकारमभिक. कुलोचित काश्चन स्वयमवर्तयत्समा।
सन्निवेश्य सचिवेष्वत' पर स्त्री विधेयनवयौवनोऽभवत् ॥ पद्य ४

ग—इन्द्रियार्थपरिशून्यमक्षम सोढुमेकमपि स क्षणान्तरम्।
अन्तरेवविहरन्दिवानिश न व्यपेक्षत समुत्सुका. प्रजा ॥ पद्य ६

घ—गौरवाद्यदपि जातु मन्त्रिणा दर्शन प्रकृतिकांक्षित ददौ।
तद्गवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणेन कल्पितम् ॥ पद्य ७

ङ—यौवनो त्रविलासिनी स्तनक्षोभलोलकमलाश्चदीर्घिका.।
गूढमोहनगृहास्तदम्बुभिः स व्यगाहत विगाढमन्मथ. ॥ पद्य ९ ॥

१. घ्राणकान्त मधुगन्धकर्षिणी पानभूमिरचना प्रियासख·
अभ्यपद्यत स वासितासख पुष्पिता. कमलिनी रिव द्विप। पद्य ११।

२. अकमङ्कपरिवर्तनोचिते तस्य निन्यतुरशून्यतामुभे।
वल्लकी च हृदयगमस्वना वल्गुवागपि च वामलोचना ॥ पद्य १३।

३. स स्वयप्रहत पुष्कर कृती लीलयाल्पवलयो हरन्मन.।
नर्तकी रभिनयातिलङ्घिनी. पार्श्ववर्तिषु गुरुष्वलज्जयत् ॥ पद्य १४।

उसे बडा[1] मजा आता था। कभी-कभी उसके लिए लता गृहों में फूलों की सेज बिछा दी जाती थी जहाँ वह दूतियो की सहायता से पहुँचकर, रानियो के डर से चोरी चोरी दासियों से मिला[2] करता था। कभी वह स्त्रियो के चरणो को स्वय ही महावर से रगने के लिए बैठ तो जाता था पर उसकी आँखे उनके उन अगों को देखने के लिए मचलती रहती थी जो मेखला के शिथिल हो जाने पर वस्त्र के सिकुड जाने से उघड़ जाते थे और तब वह चचल हो उठता[3] था। वह जब उन्हे चूमना चाहता था तो वे मुंह फेर लेती, और यदि वह उनकी मेखला को खोलने का यत्न करता तो वे उसका हाथ पकड़ लेती थी। इस प्रकार हवस पूरी न होने से उसकी काम वासना और भी भडक[4] उठती थी।

इस तरह, प्रत्येक ऋतु[5] के अपनी तरह के सुख भोगो मे फँस कर, राज काज से विमुख हुए उसके वर्ष पर वर्ष बीतते चले गए, पर पुराने प्रभाव के कारण कोई शत्रु उस पर आँख न उठा[6] सका। किन्तु अन्त से विषयासक्ति की अधिकता के कारण, एक दिन राजयक्ष्मा रोग ने उसे ऐसे धर दबाया जैसे दक्ष के शाप ने चन्द्रमा को। यद्यपि वह इसके दुष्परिणाम को खूब समझता था तो भी अपने को न रोक सका और एक दिन वैद्य भी उसके सम्बन्ध मे आशा छोड़[7]

---

१. तेन दूतिविदित निषेदुषापृष्ठन. सुरतवारराञिषु ।
शुश्रुवे प्रियजनस्य कातर विप्रलम्भपरिशकिनोवच । पद्य १८ ॥

२ क्लृप्तपुष्प शयन्नाल्लतागृहान् एत्य दूतिकृतमार्ग दर्शन. ।
अन्वभू त्परिजनागनारत सोऽवरोधभयवेपथूत्तरम् ॥ पद्य २३ ॥

३. स स्वय चरणरागमादधे योषिता न च तथा समाहित.
लोभ्यमाननयन. श्लथाशुकैर्मेखलागुणपदैर्नितम्बिभिः ॥ २६

४ चुम्बने विपरिवर्त्तिताधर हस्तरोधिरशना विघट्टने ।
विघ्नितेच्छमपि तस्य सर्वतो मन्मथेन्धनमभूद्वधूरतम् ॥ यथा २७

५ एवमिन्द्रिय सुखानि निर्विशन्नन्यकार्यविमुख. स पार्थिव. ।
आत्मलक्षण निवेदितान् ऋतूनत्यवाहयदनङ्गवाहित. ॥ पद्य ४६

६. त प्रमत्तमपि न प्रभावतः शेकुराक्रमितुमन्यपार्थिवाः
आमयस्तु रतिरागसभवो दक्षशाप च इव चन्द्रमक्षिणोत् । पद्य ४८

७. दृष्टदोषमपि तन्नसोत्यजत्सगवस्तुभिषजामनाश्रवः ।
स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते । पद्य ४९

बैठे । तब इस राज कुल की दशा उस आकाश की सी होगई जिसमे कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की केवल एक ही कला बच रही हो, या ग्रीष्म ऋतु के उस सूखे तालाब सी जिसमे कीचड ही शेष रह गया हो ।[१] अन्त मे एक दिन जब उसका जीवन-प्रदीप बझ गया तब मन्त्रियो ने उसके शव को राजभवन के किसी उद्यान मे ही चुप चाप फूंक दिया ।[२]

उन्मत्त आमोद प्रमोद का यह कारुणिक अवसान कवि ने एक छोटे से सर्ग मे इस प्रकार चित्रित किया है कि पाठक के हृदय मे उठा क्षणिक उफान तुरन्त शान्त हो जाता है और उस पर विषाद की गहरी छाया आ पडती है। यहाँ दो चरम सीमाएं, कवि ने एक साथ ही ऐसे दिखलादी है कि यह इस हाथ दो उस हाथ लो वाला सौदा सा प्रतीत होता है। कवि कहना चाहता है कि ससार मे मर्यादा का उल्लघन भी होता है और वह भी एक सत्य है, उससे आँखे मूँदी नही जा सकती। किन्तु उस ओर चलने वाले को उसके परिणाम का भी ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

इस उन्नीसवे सर्ग को छोड, शेष रघुवश मे शृगार के एक दो ही प्रसग आए है और उन्हे छोड जाने को मन नही मानता। छठे सर्ग मे इन्दुमती वरमाला लिए स्वयवर[३] सभा मे प्रविष्ट होती है और अनेक राजाओ को देखती हुई अन्त मे अयोध्या के राजकुमार अज[४] के सम्मुख जा पहुँचती है। उसके सर्वांग सुन्दर रूप को देखकर वह उस पर मुग्ध हो जाती है और उसका पैर आगे नही बढ़ता। सखी सुनन्दा उसके हृदय के भाव को ताड लेती है और अज का परिचय बडे शानदार ढग से देती है। परिचय को सुनकर इन्दुमती लज्जा के

---

१ व्योम पश्चिमकलास्थितेन्दु वा पकशेषमिव घर्मपल्वलम् ।
राज्ञि तत्कुल मभूत्क्षयातुरे वामनार्चिरिवदीपभाजनम ।। पद्य ५१

२. त गृहोपवन एव सगताः पश्चिमक्रतुविदा पुरोधसा ।
रोगशान्ति मपदिश्य मन्त्रिण. सभृते शिखिनि गूढमादधुः ।। पद्य ५४

३. सचारिणीदीपशिखेव रात्रौ यव्यती व्याय पतिवरासा ।
नरेन्द्रमार्गादृट्व प्रपेदे विवर्णभाव स स भूमिपालः ।।
रघु० सर्ग० द० पद्य ६७

४ तं प्राप्य सर्वावयवानवद्य व्यावर्त्ततान्योपगमात्कुमारी ।
नहि प्रफुल्लसहकारमेत्य वृक्षान्तर काक्षति षट्पदालिः ।।
रघु० सर्ग ६ पद्य ६९

बन्धन को तनिक शिथिल कर अपनी प्रेम भरी दृष्टि से उसे ऐसे निहारने लगती है मानो अपने हाथों की वर माला उसे पहना[1] रही हो। यद्यपि शालीनतावश, वह अज के प्रति अपने अनुराग को वह मुँह पर नही ला सकती तो भी पुलकावली के बहाने वह मानो उसके रोम रोम को भेद कर[2] प्रकट हो जाता है। यह देख सखी सुनन्दा परिहास पूर्वक कहती है, 'आओ अब आगे चले,' इस पर इन्दुमती असूया भरी तीखी दृष्टि से उसे देखती है और उसके अभिप्राय को समझ कर सखी वह वरमाला अज के कण्ठ मे डाल देती है जो वहाँ इन्दुमती के मूर्तिमान् अनुराग के समान प्रतीत होती है। और अज भी उस माला को अपने कण्ठ मे पड़ा इन्दुमती का कोमल बाहुपाश ही समझता है।

कुमारसंभव में शृंगार

कुमारसंभव मे वर्णित सयत शृगार के सम्बन्ध मे पहले लिखा जा चुका है अत. यहाँ उसके विषय में अधिक लिखना पिष्टपेषण मात्र होगा, तो भी सातवे सर्ग के अन्तर्गत विवाह वर्णन मे कवि ने जिस माधुर्य तथा महनीयता का मिश्रण किया है वह अद्भुत है। जो पार्वती तथा शिव इस सर्ग मे वधू वर और आदर्श प्रेमी के रूप में चित्रित किए गए है वे कवि की भावना के अनुसार जगत् के माता पिता तथा उसके लिए परम पूज्य है। ऐसे प्रसग में अपनी इन दोनों भावनाओं के साथ पूरा न्याय कर सकना हँसी खेल नही। इस कारण तुलसी अपने रामचरित मानस के बाल काण्ड मे शिव विवाह के प्रसंग मे .—

बहुरि मुनीशन उमा बुलाई। करि शृगार सखी लै आई।
जगदम्बिका जानि भव वामा। सुरन मनहि मन कीन्ह प्रणामा।
सुन्दरता मर्याद भवानी। जाइ न कोटिहु बदन बखानी।
छन्द—कोटिहु बदन नहि बनै बरनत, जगजननि शोभा महा।
सकुचहि कहत श्रुति शेष शारद, मन्दमति तुलसी कहा।

---

१. ततः सुनन्दा वचनावसाने लज्जा तनूकृत्य नरेन्द्रकन्या।
दृष्ट्या प्रसादामलया कुमार प्रत्यग्रहीत्सवरण स्रजेव॥
रघु० सर्ग ६० पद्य ८०

२. सा यूनि तस्मिन्नभिलाषबन्धं शशाक शालीनतया न वक्तुम्।
रोमांचलक्ष्येण स गात्रयष्टिभित्वा निराक्रामदरालकेश्याः॥
रघु० सर्ग ६ पद्य ८१

छविखानि मातु भवानी गमनी मध्य मण्डप शिव जहाँ,
अवलोकि सकहि न सकुचि, पति-पद कमल मन-मधुकर तहाँ।

कह कर ही चुप हो गए, जबकि सूर ने सभोग शृंगार प्रधान वर्णनो में अपने आराध्य देव राधा कृष्ण को बिलकुल ही सामान्य नायक नायिकाओं के स्तर पर लाकर खडा कर दिया। किन्तु कालिदास ने कुमारसभव मे इन दोनों का अत्यन्त सुन्दर समन्वय किया है।

दुलहा बने शिव हिमालय के राजभवन मे पहुँचे तो हिमालय ने मधुपर्क[1] से उनका स्वागत किया। जब अन्त पुर के अधिकारी उन्हे विवाह-मण्डप में ले गए तो वहाँ दुलहन के सुन्दर मुख रूपी शरत्चन्द्र की कान्ति से उनके नेत्र-कुमुद विकसित हो गए और हृदय इस प्रकार प्रसन्न हो गया जैसे शरद के आगमन से जगत् के जल निर्मल[2] हो जाते है। दोनो प्रेमी परस्पर दर्शन के लिए कब से आतुर थे, अब अवसर मिला भी तो इतने गुरुजनो के बीच में। बडी कठिन समस्या थी। वहा शालीनता को तिलाजलि दे खुलमखुल्ला देखना निर्लज्जता था और देखे बिना भी चैन न था। न केवल औरो से, पर आपस मे भी आँख चुराना आवश्यक था। कभी, ऐसा क्षण मिलते ही एक ने दूसरे को कनखियो से ताका, तो देखा कि दूसरा भी वही कर रहा है। एक चोर ने दूसरे चोर को चोरी करते पकड लिया, और दोनो लजा गए। दोनो के ललकते लोचन सहसा सकपका[3] गए। पाणिग्रहण की विधि होने लगी तो एक दूसरे

---

१. तत्रेश्वरो विष्टर भाग्यथावत्सरत्नमर्घ्यं मधुमच्च गव्यम्।
नवे दुकूले च नगोपनीतं प्रत्यग्रहीत्सर्वममन्त्रवर्जम् ॥
दुकूलवासा स वधूसमीप निन्ये विनीतैरवरोधदक्षै
वेला समीप स्फुटफेनराजिर्नवैरुदन्वानिव चन्द्रपादै. ॥

कुमार० सर्ग ७ पद्य ७२-७३।

२. तया प्रवृद्धाननचन्द्रकान्त्या प्रफुल्ल चक्षु. कुमुद कुमार्या।
प्रसन्नचेत सलिल शिवोऽभूत्संसृज्यमान शरदेव लोक ॥

कुमार० सर्ग ७ पद्य ७४।

३. तयोरपाङ्ग प्रति सारितानि क्रियासमापत्तिषु सहृतानि।
ह्रीयन्त्रणा मानशिरे मनोज्ञान्यन्योन्य लोलानि विलोचनानि ॥

कुमार० सर्ग ७ पद्य ७५।

यहा पर यह भूलना न चाहिए कि ये वही शिव है जो पाचवे सर्ग मे ब्रह्मचारी

के कर स्पश से दोनों के शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। प्रेम के देवता ने भीतर-ही-भीतर दोनों के हृदयों को एक सूत्र मे बाँध दिया। परिक्रमा और लाजाहोम की विधि हो चुकने पर पुरोहित ने वधू को उपदेश दिया कि हे बेटी यह पवित्र यज्ञाग्नि तुम्हारे विवाह का साक्षी है। तुमने एक दूसरे का साथ अन्त तक निभाना है और सारे धर्मकार्य मिलकर करने हैं। इस उपदेश को उन्होंने कान खोलकर सुना और प्रिय दर्शन पति ने जब ध्रुव दर्शन के लिए कहा तो, सकोच वश दबी जा रही उन्होंने लज्जारुद्ध कण्ठ से किसी तरह 'देख लिया' यह कहा। संस्कार हो चुकने पर वर वधू ने पद्मासन पर विराजमान पितामह ब्रह्माजी को प्रणाम किया और सब उपस्थित बन्धुजनो ने अक्षत तथा रोली से नवदम्पती के मस्तक पर तिलक किया। विवाह के इस समस्त वातावरण मे आदि से अन्त तक पवित्रता तथा गभीरता मिश्रित उल्लास व्याप्त है। पाणिग्रहण विधि में नैषधीय चरित के सोलहवे सर्ग के पन्द्रहवे पद्य के भद्दे शृंगार का लेश भी नही।

अब केवल एक प्रश्न शेष रह जाता है—वह है कुमारसभव का आठवा सर्ग। इस सर्ग मे शिव पार्वती के सभोग शृगार का वर्णन विस्तार पूर्वक दिया गया है यदि यह सचमुच ही कालिदास की रचना है तो कुछ आश्चर्य अवश्य होता है कि जिसकी लेखनी अन्यत्र इतनी सयत तथा सतर्क रही है वह यहाँ इतनी चचल कैसे हो गई। यद्यपि कुछ विद्वान इसे कालिदास की कृति नही मानते क्योंकि कुमारसभव की अनेक हस्तलिखित[1] प्रेमियों मे यह सर्ग नही पाया

का वेश धारणकर पार्वती के आश्रम मे उसके प्रेम की परीक्षा लेने गये थे और वहाँ उन्होंने उसके मुख की तरफ देखते हुए, आँख से आँख मिलाकर सीधी बात चीत की थी क्योंकि तब वे दुल्हा न थे और उनका उस समय शरमाना उनके नटराज पन के अनुरूप न होता। उनका तब का वर्णन देखिए .

विधि प्रयुक्ता प्रतिगृह्य सत्क्रियां परिश्रम नाम विनीय च क्षणम्।
उमा स पश्यन् ऋजुनैव चक्षुषा प्रचक्रमे वक्तुमनुज्झितक्रम ॥ कु० स० ५

१. बहुत सो हस्तलिखित प्रतियों मे यही पर (सातवे सर्ग पर) समाप्ति हो जाती है। अन्य पोथियों मे दस सर्ग और हैं। इन सर्गो में आठवाँ सर्ग काम शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार विवाहित दम्पती के आमोद प्रमोद का वर्णन करता है; ऐसी स्पष्टवादिता निःसन्दिग्ध रूप से पाश्चात्य रुचि के लिए वैरस्योत्पादक है; परन्तु इसके कालिदास द्वारा रचित

जाता तो भी यहा इस विवाद मे न पडकर यही स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है कि सभवत कवि ने उस समय की रुचि तया परम्परा का अनुसरण करते हुए इस सर्ग की रचना की होगी। पहले लिखा जा चुका है कि उस समय के कवियो पर काम शास्त्र का विशष प्रभाव था।

होने मे जो सन्देह उपस्थित किए गए है वे पूर्णतः निराधार है (सस्कृत साहित्य का इतिहास कीयकृत हिन्दी अनुवाद पृ० १०९।)

सौन्दर्य का स्वरूप'
तथा
कालिदास द्वारा उसका चित्रण

सौन्दर्य मानव को स्वभाव से ही प्रिय है। खुदाई से प्राप्त पुरानी सामग्री को देखने से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि अत्यन्त प्राचीन काल का मानव भी सुन्दर असुन्दर में भेद कर सुन्दर की ओर आकृष्ट होता और असुन्दर से बचना चाहता था। जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति होते ही इस ओर उसका ध्यान और भी अधिक तीव्रता से गया कि उसके व्यवहार की वस्तुएँ उपयोगी होने के साथ-साथ सुन्दर भी हों। इसलिए उसने अपने हथियारों और निवास की गुफाओं को चित्रों से तथा अपने शरीर को पक्षियों के परों, फूल-पत्तियों, या तरह-तरह के रंगों से सजाना शुरु किया। इस कार्य के लिए उसने हड्डी, काँच, पत्थर या मिट्टी के मनको आदि का भी निर्माण किया। सजाने के लिए उसने, पहले पहल, रंग दार तथा चमकीली चीज़ों को पसन्द किया, किन्तु धीरे धीरे उसका झुकाव कला और भाव व्यजना की ओर बढता गया। रुचि के परिष्कार के साथ साथ उसकी सौन्दर्य भावना भी सूक्ष्म होने लगी और उसकी कला कृतियों मिट्टी की मूर्तियों या चित्र आदि में रगों की अपेक्षा सजीवता तथा भाव व्यंजना का महत्व बढ चला। और धीरे धीरे क्रमिक विकास करती हुई ये ललित कलाए भवन निर्माण, मूर्ति रचना, चित्रण, संगीत तथा काव्य कला—अपनी वर्तमान उन्नत अवस्था तक पहुंच गई। सौन्दर्य ललित कलाओं के लिए अनिवार्य तत्व है। जो सुन्दर नही उसे कला कृति नहीं कहा जा सकता।

मानव का स्वभाव से ही सौन्दर्य प्रेमी होना और उसके कारण ललित कलाओं का जन्म

सभी कलाएँ बाह्य इन्द्रियों—आख या कान को प्रभावित करती हुई ही हृदय

सूक्ष्मता के आधार पर कलाओ का तारतम्य और उनमे काव्य कला का स्थान

पर अपना असर डालती है। इन कलाओ की प्रगति स्थूल से सूक्ष्म की ओर देखी जाती है। भवन निर्माण कला मे कला का आधार ईट पत्थर, लकडी आदि तीन विस्तारो वाला अर्थात् लम्बा, चौडा और मोटा होता है। भवन प्राय विशाल भी होते है। मूर्त्ति मे विशालता तो कुछ कम हो जाती है किन्तु तीनो विस्तार—लबाई, चौडाई मोटाई बने रहते है। चित्र मे विशालता का तो कोई महत्त्व होता ही नही, विस्तार भी केवल दो—लबाई और चौडाई ही रह जाते है, मोटाई जाती रहती है और उसका प्रदर्शन छाया द्वारा अथवा वस्तु के आकार को छोटा बडा करके किया जाता है। सगीत मे तीनो ही विस्तारो का लोप हो जाता है और रूप का स्थान भी शब्द ले लेता है। कण्ठ या किसी बाजे से निकले शब्द या ध्वनि का उतार चढाव ही उसका बाह्य आधार होता है। किन्तु इस सगीत से भी सूक्ष्म वह काव्य-कला है जिसमे बाह्य आधार का प्राय सर्वथा ही अभाव हो जाता है। साक्षात् व्यक्ति या वस्तु नही किन्तु वक्ता द्वारा बोले गए या लेखक द्वारा लिखे गए केवल वे शब्द ही जो उन अर्थों—व्यक्ति, वस्तु या घटना—के वाचक होते है, कवि द्वारा किसी रस के विभाव अनुभाव या सचारी भाव बनाकर इस खूबी से रख दिए जाते है कि उनसे हृदय तरगित हो उठता है और यही सर्वश्रेष्ठ कला है।

संगीत कला का प्रभाव

कला जितनी सूक्ष्म होती जाती है, उसकी प्रभावक शक्ति उतनी ही बढती जाती है। हृदय मे हिलोर उठा देने का जितना सामर्थ्य सगीत तथा कविता मे है उतना मूर्ति या चित्र मे नही। यद्यपि कला के प्रभाव से किसी भवन मे मानव की भावना—शोक भक्ति, प्रेम आदि को ऐसा प्रति-बिम्बित किया जा सकता है कि बिना कहे भी, देखने वालो का हृदय उसे अनुभव कर ले, तो भी उसमे वह सजीवता नहीं आ सकती जो मूर्ति या चित्र मे देखी जाती है। सगीत की असीम शक्ति का वर्णन ड्राइडन ने इस प्रकार किया है —दिव्य सगीत के प्रभाव से इस विश्व का निर्माण हुआ था। जब प्रकृति अस्त-व्यस्त परमाणुओ के ढेर के नीचे पडी थी और उसमे अपना सिर उठाने की शक्ति नही थी तब ऊपर से एक मधुर तान वाला सगीत सुनाई पडा कि 'हे मनो से भी गए बीतो उठो।' तभी शीतल उष्ण, आर्द्र तथा शुष्क—सभी अपनी अपनी स्थिति के अनुसार उठ खड़े हुए और उन्होने सगीत

के आदेश का पालन किया। दिव्य संगीत से इस विश्व की रचना हुई, और इसकी प्रत्येक कोटि में वह ओतप्रोत है, किन्तु उसकी पूर्णता मानव में हुई। हृदय का ऐसा कौन सा सवेग है जिसे सगीत उठा या शान्त नही कर सकता। जब जूबल ने अपने तार वाले वाद्य से स्वर निकाला तो उसके साथी आश्चर्य चकित हो गए और उस दिव्य सगीत का समान करने के लिए उन्होंने सिर झुका दिया। उनका विश्वास था कि उस वाद्य के खोल मे जो शक्ति छिपी हुई है और ऐसा मधुर सगीत उत्पन्न कर रही है वह देवता से कम नही हो सकती।[१] भारतीय संगीत परम्परा मे दीपक राग से दीपक जल उठना तथा मलार से वर्षा होना प्रसिद्ध है।

काव्य का प्रभाव

कविता की शक्ति के विषय मे विशेप लिखना अनावश्यक है। प्रसिद्ध है कि बिहारी[२] के एक दोहे ने किस प्रकार राजा जयसिंह को नई रानी के मोहपाश से मुक्त कर दिया था और किस प्रकार कवि के एक शेर ने नादिरशाह की

---

१. From Harmony, from heav'nly Harmony
This universal Frame began :
When Nature underneath a heap
Of jarring Atoms lay,
And could not heave her head,
The tuneful Voice was heard from high,
Arise, Ye more than dead.
Then cold and hot and moist and dry
In order to their stations leap,
And Music's pow'r obey.
From harmony, from heavenly Harmony
This universal Frame began :
From Harmony to Harmony
Through all the Compass of the Notes it ran,
The Diapason closing full in Man.
What Passion can not Music raise and quell ?
When Jubal struck the chorded Shell,
His listening Brethren stood around,
And wondering on their faces fell
To worship that Celestial Sound ·
Less than a God they thought there could not dwell
Within the hollow of that Shell,
That spoke so sweetly and so well.
What Passion cannot Music raise and quell ?

२. नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इह काल।
अली कली ही सों बंध्यो आगे कौन हवाल॥

तलवार को करले आम से विरतकर म्यान मे डलवा दिया था । कौन नही जानता कि काव्य में वह विलक्षण प्रभाव है जो सहृदय को मूर्त्ति या चित्र की तरह निश्चेष्ट और अवाक् बना देता है ।

यद्यपि चिर विस्मृत अतीत मे अनेक कलाकार अपनी कृतियों में सौन्दर्य का निरूपण करते चले आ रहे है किन्तु सौन्दर्य है क्या

सौन्दर्य विषयिगत है इसका लक्षण करने की चिन्ता उन्हे मानो कभी हुई ही नही । कुछ की दृष्टि मे तो उसका लक्षण इस प्रकार असम्भव है जिस प्रकार मृग द्वारा झाडियो मे कस्तूरी की खोज क्यों कि वे उसे विषय गत नही, प्रत्युत विषयि गत मानते है और कहते है कि "समै-समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोय । मन की रुचि जेती इतै, तित तेती रुचि होय ।। अर्थात् समय-समय पर सभी पदार्थ सुन्दर या असुन्दर हो जाते है, स्वभाव से कुछ भी सुरूप या कुरूप नही । देखने वाले की रुचि ही उसका कारण है । संस्कृत के एक कवि भी इसी का समर्थन करते हुए कहते है कि दही मीठा है, शहद मीठा है, अगूर मीठा है और मिश्री तो मीठी है ही । जिसका मन जिससे जा लगता है उसके लिए वही मीठा हो जाता है ।[1] सूरदास का विष[2] कीडा अगूर को छोड कर विष को ही पसन्द करता है । एक वेदान्ती[3] विद्वान किसी वस्तु के प्रिय लगने का कारण सौन्दर्य को नही किन्तु द्रष्टा के मोहमय स्नेह को मानते है । नैषधीय चरित मे श्रीहर्ष[4] लिखते है कि अत्यन्त सुन्दर युवति का रूप भी बालक को वैसा आकृष्ट नही करता जैसा युवक को । और युवक के मन

१ दधि मधुर मधु मधुर द्राक्षा मधुरा सिताऽपि मधुरैव ।
तस्य तदेव हि मधुर यस्य मनो यत्र सलग्नम् ।

२. ऊधो मनमाने की बात ।
दाख छुहारा छाडि, अमृत-फल विषकीडा विष खात ।।
जो चकोर को दै कपूर कोउ तजि, अंगार-अघात ?
सूरदास जाको मन जासों सोई ताहि सुहात ।।

३ अधिकतर प्रिय मेतन्ममेति बुद्धि र्न वस्तु सौन्दर्यात् ।
नूनमनपेक्षितगुणो मोहघन स्नेह एवेह ।। भर्तृहरिनिर्वेद-अ० श्लो० ९ ।।

४ यथायूनस्तद्वत्परम रमणीया रमणी
कुमाराणामन्तःकरणहरण नैव कुरुते । सर्ग २२ पद्य २५२ ।।

को भी जब प्रेम की प्यास[१] न हो या किसी अन्य कारण से उसका चित्त खिन्न[२] हो तो वह नारी-सौन्दर्य से प्रभावित नही होता। दूसरे व्यक्ति से प्रेम करने लगी स्त्री का रूप उस प्रेमी को सुन्दर नही लगता जिसका हृदय उसकी बेवफाई के कारण घृणा से भर जाता है। महाकवि भारवि[३] भी गुणों का निवास वस्तु में नही किन्तु प्रेमी के हृदय में मानते है।

सौन्दर्य विषयगत है।

किन्तु ऐसे सहृदयों का भी अभाव नही जो सौन्दर्य को विषयगत स्वीकार करते हैं। महाकवि माघ[४] की वह प्रसिद्ध उक्ति इसी मत का समर्थन करती है जिसमे उन्होने कहा है कि वास्तविक सौन्दर्य तो वही है जो प्रति-क्षण नया ही नया लगता है। महाकवि पद्माकर ने भी 'पल-पल मे पलटन लगे जाके अग अनूप। ऐसी इक ब्रज बाल को कहि नहि सकत सरूप।" कह कर सौन्दर्य को प्रतिक्षण नया लगने वाला तथा विषय गत स्वीकार किया है। उर्दू कवि अकबर ने भी इसकी पुष्टि यह युक्ति देकर की है कि तुम्हारा सौन्दर्य प्रतिक्षण बदलता रहता है। यदि इसमे किसी को सन्देह हो तो वह तुम्हारी तसवीर को साथ रखकर तुम्हे देखे। वे कहते हैं :—

लहज़ा लहज़ा है तरक्की पर तेरा हुस्नो जमाल।
जिसको शक हो तुझे देखे तेरी तसवीर के साथ ॥

सौन्दर्य उभयगत है

तीसरे विचारक सौन्दर्य को उभयगत अर्थात् कुछ वस्तु का गुण तथा कुछ देखने वाले का गुण स्वीकार करते है और कहते है कि 'रूप रिझावन हार यह, वे नयना रिझवार।' अर्थात् तुम्हारा सौन्दर्य तो रिझाने वाला है ही, पर उस प्रेमी की

---

१. शुद्धान्तसभोगनितान्ततुष्टे न नैषधे कार्य मिदनिगाद्यम्।
अपा हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा ॥

२. त्वया निधेया न गिरो मदर्था क्रुधा कदुष्णे हृदि नैषधस्य।
पित्तेन दूने रसने सितापि तिक्तायते हंस कुलावतंस ॥
नैषधीय० सर्ग ३, पद्य ९३, ९४।

३. वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुषु ॥

४ क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया.। माघ सर्ग ४ पद्य १७।

आंखे भी कम नही, वे रूप पर रीझना जानती है।' रूप को समझने के लिए भी दृष्टि चाहिए और वह दृष्टि सरस हृदय तथा सुसस्कृत मन से ही प्राप्त हो सकती है तभी तो शकुन्तला' नाटक मे सानुमती ने विदूषक के लिए कहा था कि यह मूर्ख शकुन्तला के सौन्दर्य को भला क्या समझ सकता है क्योकि यहाँ तो इसकी आखे ही बेकार है। अत्यन्त उच्चकोटि का सौन्दर्य उन आँखो को चौधिया देता है जिनके पीछे पारखी मन नही, वे उसकी बारीकियो को अनुभव नही कर सकती। सस्कृत के एक कवि ने तभी तो लिखा है कि 'वह सुन्दरी कैसी है यह तो पता ही नही चलता ? हमे तो वहा केवल एक तरल आभा जगमगाती दीखती है, उसका आधार नही।'[2]

सौन्दर्य भावना और रुचि भेद

भिन्न भिन्न देशो ओर जातियो की सौन्दर्य -भावना मे अन्तर पाया जाता है। कही गौर वर्ण, नुकीली नाक और पतले होंठ सुन्दर समझे जाते है तो कही काला रग, चपटी नाक और मोटे होंठ। चीन मे स्त्रिया के छोटे पैर ही सौन्दर्य के परिचायक माने जाते थे। इस बुद्धि भेद का कारण वह रुचि है जिसका विकास विभिन्न जातियो मे अपनी परिस्थितियो के अनुसार धीरे धीरे हुआ करता है। बहुत सभव है कि एक आदर्श आर्य सुन्दरी भी चीन या अफ्रीका के किसी निवासी को अपनी जाति की साधारण स्त्री से भी हीन प्रतीत हो, क्योकि बाबा सूरदास के अनुसार यह तो मनमाने की बात ही ठहरी।

सौन्दर्य तथा अंगों का सुडौलपन या रेखा

प्राचीन ग्रीस निवासी अत्यन्त सौन्दर्य-प्रिय थे। उनकी बनाई मूर्तियाँ इसकी साक्षी है। अगो की बनावट, नापतौल, गठन, तथा सुडौलपन पर वे बहुत बल देते थे और उनकी दृष्टि मे ये ही सौन्दर्य के मुख्य माप दण्ड थे। आज भी सभ्य ससार मे सौन्दर्य प्रतियोगिताओ का बहुत चलन है और उनमे शरीर के विभिन्न अगो—छाती, कमर आदि की उपर्युक्त बनावट व नापतोल आदि को ही प्रधानता दी जाती है। सस्कृत

१. सानुमती-अनभिज्ञ. खल्वीदृशस्य रूपस्य मोघदृष्टिरय जनः।

अक ६ पद्य १४ के आगे।

२. कीदृशी सा भवत्येष विवेक केन जायते।
प्रभामात्रहि तरल दृश्यते न तदाश्रयः।

साहित्य मे इसका नाम रेखा[1] है। सगीत रत्नाकर मे रेखा का लक्षण करते हुए लिखा है कि सिर, नेत्र, हाथ आदि के उचित अनुपात मे मिलने से शरीर मे एक ऐसा सुडौलपन आ जाता है जो, आँखों को बड़ा लुभावना प्रतीत होता है, उसे ही रेखा कहते है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत सौन्दर्य का लक्षण

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी सौन्दर्य का आधार बहुत अंश तक रूप रंग को ही माना है और लिखा है कि "कुछ रूप रग की वस्तुएँ ऐसी होती है जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उसका (हमे अपनी सत्ता का) ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप मे परिणत हो जाते है। हमारी अनन्त सत्ता की यही तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है। 'जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से (यह) तदाकार परिणति जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही, वह हमारे लिए सुन्दर कही जाएगी।'

आचार्य आनन्द वर्धन का मत

आचार्य आनन्दवर्धन ध्वनि पर विचार करते हुए, प्रसग से कहते हैं कि महाकवियो की वाणी मे ध्वनि ऐसी शोभित होती है जिस प्रकार वह लावण्य[2] जो युवति के अग, उनकी गठन या रूप रग, आदि से सर्वथा भिन्न होता हुआ भी उनमे ऐसे झलका करता है जैसे मोती मे आभा।

इस सौन्दर्य के सम्बन्ध मे विचार करते हुए एडमण्ड स्पेन्सर महाशय

---

१. (क) शिरोनेत्रकरादीनामगाना मेलने सति।
अगश्री: कथ्यते रेखा चक्षुः पीयूषवर्षिणी ॥ अभिज्ञान शकु०
अक ६ श्लो. १४ की टीका मे राघवभट्ट। निर्णयसागर
(सस्करण पृ० २१६)

(ख) उपमानोपमानं या भूषणस्यापिभूषणम्।
अग श्रीः कथ्यते रेखा चक्षुः पीयूषवर्षिणी।
नैषधीय० सर्ग ५-७४ की टीकामे नारायण पण्डित।

२ प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्तिवाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्त विभाति लावण्य मिवाङ्गनासु ॥
ध्वन्यालोक—१ का ४

स्पेन्सर और सौंदर्य

लिखते हैं कि वे लोग भी कितने अनजान है जो कहते है कि सौन्दर्य तो एक जगह गौर वर्ण और गुलाबी आभा के उस सुन्दर मिश्रण के सिवाय कुछ नही जो ग्रीष्म की कमनीय कान्ति के समान देखते देखते बिला जाता है। (वे अनजान लोग) यह भी कहते है कि सौन्दर्य तो विशेष नाप तोल वाले सुडौल अगों का संतुलित विन्यास मात्र है। पर क्या श्वेत और गुलाबी रगों मे ऐसी आश्चर्यजनक शक्ति हो सकती है कि वे आँखो की राह भीतर घुस कर हृदय पर जादू करदे और उसमे ऐसी हलचल मचादे कि उनकी बेचैनी को मृत्यु के सिवाय कोई शान्त ही न कर

Hyman to beauty

1. How vainly then do idle wits invent,
That Beauty is nought else, but mixture made
Of colours fair and goodly temperament,
Of pure complexions, that shall quickly fade
And pass away, like a summer's shade,
Or that it is but comely composition
Of parts well measured, with meet disposition.
Hath white and red in it such wondrous power,
That it can pierce through th' eyes unto the heart,
And therein stir such rage and restless stour,
As nought but death can stint his dolour's smart?
Or can proportion of the outward part
Move such affection in the inward mind,
That it can rod both sense and reason blind?
Why do not then the blossoms of the field,
Which are arrayed with much more orient hue,
And to the sense most dainty odours yield,
Work like impression in the looker's view?
Or why do not fair pictures like power show.
In which oftimes we nature see in art
Excelled, in perfect limning every part?
But ah! believe me, there is more than so
That works such wonders in the minds of men.
I that have often proved, too well it know;
And who so list the like assays to Ken,
Shall find by trial, and confess it then,
That Beauty is not, as fond man misdeem,
An outward show of things, that only seem.

सके। क्या बाह्य अंगों का संतुलन प्रेमी के अन्तःकरण मे ऐसा प्रेम उत्पन्न कर सकता है जिससे प्रेमी की चेतना और विवेक भी अंधे हो जाएँ। यदि यह सत्य है तो उद्यानों में खिलने वाले वे फूल जिनके रंग और भी अधिक उज्वल हैं और जिनकी महक अत्यन्त मोहक है, वैसा प्रभाव क्यो नही उत्पन्न कर सकते ? और वे सुन्दर चित्र जिनमें हम कला को प्रकृति से कही बढ़ी चढ़ी देखते हैं, हम पर वैसा चमत्कार क्यो नही करते ? इसलिए, मेरे इस कथन पर विश्वास करो कि सौन्दर्य इनसे कुछ भिन्न ही वस्तु है जो मानव मन पर विलक्षण प्रभाव डाल देता है। मैने इसे खूब परख लिया है और जान लिया है। यदि कोई अन्य भी यत्न करेगा तो वह इसी परिणाम पर पहुंचेगा कि सौन्दर्य इन वस्तुओ का वाह्य प्रकाशन मात्र नही, जैसा कि वे अनजान समझते हैं।

स्पेंन्सर के अनुसार पवित्र आत्मा वह साँचा है जिसमें ढल कर शरीर सुन्दर हो जाता है

अपनी इस कविता के उपसहार मे स्पैन्सर महोदय लिखते है कि सत्य तो यह है कि जो आत्मा जितनी अधिक पवित्र तथा दिव्य प्रकाश से युक्त होती है उसे अपने निवास के लिए यहाँ उतना ही सुन्दर शरीर मिलता है और वह उसे भी प्रसन्न मुद्रा तथा मधुर रूप से सजा लेती है क्योकि आत्मा ही वह साचा है जो शरीर को अपने अनुसार ढाल लेता[1] है।

कालिदास का भी यही अभिमत है कि सौन्दर्य और पवित्रता सदा साथ

1. Thereof it comes that those fair souls, which have
The most resemblance of that heavenly light,
Frame to themselves most beautiful and brave
Their fleshly bower, most fit for their delight,
And the gross matter by a sovereign might
Tempers so trim that it may well be seen
A palace fit for such a virgin queen.
So every spirit as it is most pure,
And hath in it the most heavenly light,
So if the fairer body doth procure
To habit it, and it more fairly dight
With cheerful grace and amiable sight.
For of the soul the body form doth take :
For soul is form and doth the body make.

कालिदास भी शारीरिक सौन्दर्य तथा धर्म का सम्बन्ध स्वीकार करता है

रहते है। कुमारसभव के पांचवे सर्ग में उसने ब्रह्मचारी वेशधारी शिव के मुख से पार्वती को कहलवाया है कि यह कथन सर्वथा सत्य है कि सौन्दर्य और पाप का मेल नही हो सकता। देखो तुम्हारा रूप तो प्यारा था ही, और अब यह शील भी तपस्वियो के लिए आदर्श हो गया है।[1]

नैषधीय चरित में सौन्दर्य तथा गुणों का सम्बन्ध

नैषधीय चरित मे श्री हर्ष भी इसकी पुष्टि हस को कही राजा नल की इस उक्ति से करते है कि 'सुन्दर रूप मे सुन्दर गुणों का निवास होता है।' सामुद्रिक शास्त्र के इस निष्कर्ष के उदाहरण तुम ही हो।[2]

किन्तु चचल चित्त वाली बेवफ़ा सुन्दरियो से खिन्न टॉमसरिचर्डसन[3]

---

१. (क) यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वच ।
तथाहि ते शीलमुदारदर्शने, तपस्विनामप्युपदेशता गतम् ॥

कुमार० सर्ग ५ पद्य ३६

(ख) न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति ॥
अर्थात् ऐसे सुन्दर स्वरूप वाले व्यक्ति बुरा काम नही कर सकते।

शकुन्तला अंक ४

२. (क) त्वदुदाहरणाऽऽ कृतौगुणा इति सामुद्रकसारमुद्रणा। नैषधीय० सर्ग २, पद्य ५१

(ख) यत्राकृतिस्तत्रगुणा वसति ॥

3. Take heed of gazing over much on damsels fair unknown,
For oftentimes the snake doth lie with roses overgrown :
And under fairest flowers do noisesome adhers lark,
Of whom take heed, I thee agreed, lest that thy cares they work
What though that she doth smile on thee ?
Perchance she doth not love,
And though she smack thee once or twice
she thinks thee so to prove :
And when that thou dost think She loveth none but thee,
She hath in store perhaps some more
which so deceived be.
Trust not therefore the outward show
beware in any case :
For good conditions do not lie where is a pleasant face.
But if it be thy chance a lover true to have,
Be sure of this, thou shalt not miss each thing that
thou wilt crave
(A Pageant of English Poetry Page 4-5)

टामस रिचर्डसन द्वारा इसका विरोध

महाशय कहते है कि हसीन नाजनियों की ओर अधिक ताक झाक न करनी चाहिए क्योकि गुलाब की घनी झाड़ियों मे प्राय: साप छिपा रहता है। तुम्हे देख कर वह मुसकरा दी तो क्या हुआ ? सभव है कि उसे तुमसे कुछ भी प्रेम न हो। तुम्हे बहकाने के लिए, वह भले ही तुम्हे एक दो बार चूम भी ले, पर जब तुम यह समझ रहे होगे कि वह तुम्हे छोड, किसी और से प्यार नही करती, तभी, न जाने उसके कितने प्रेमी तुम्हारी तरह ही धोखा खा कर हाथ मल रहे होगे। इसलिए तुम बाहरी रूप रग पर विश्वास न करना और खबरदार रहना कि सुन्दर चेहरे के पीछे हृदय भी सुन्दर नही होता।

सौन्दर्य भावना के आधार में जातीय संस्कार तथा वैयक्तिक रुचियां

ऊपर की गई चर्चा से ज्ञात होता है कि ऐसे विचारको का भी अभाव नही जो सौन्दर्य को विषयगत और सर्वथा निरपेक्ष (absolute) नही मानते। उनके अनुसार सौन्दर्य एक ऐसा धर्म है जो द्रष्टा के जातीय सस्कारो तथा वैयक्तिक रुचियों के भेद के कारण किसी वस्तु मे प्रतिभासित होकर उसे सुन्दर और प्रिय बना देता है। किन्तु ऐसा आरोप कोई द्रष्टा, किसी वस्तु पर, अपनी इच्छानुसार नही करता, वह उन सस्कारो तथा रुचि भेद के कारण, अनजाने मे और स्वत. ही हो जाया करता है[1]। इसीलिए भवभूति[1] ने उसे अकारण तक कह दिया है। दर्पण, मणि या इसी प्रकार की किसी निर्मल वस्तु पर ही प्रतिबिम्ब पडता है, लकडी या पत्थर पर नही। लाल फूल जिस प्रकार सबके लिए लाल है उस प्रकार सबके लिए सुन्दर नही। कोई चित्र भी जो एक को सुन्दर लगता है वह दूसरे को नहीं। एक जातिके स्त्री पुरुषों का रूप रग दूसरी जाति के लोगो को वैसा सुन्दर नही लगता, यह ऊपर लिखा जा चुका है। यदि सौन्दर्य केवल विषयगत होता और उसके सम्बन्ध में जातीय सस्कारो तथा वैयक्तिक रुचि का कुछ महत्व न होता तो उपर्युक्त भेद न होनाचाहिए था। किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उसे केवल विषयिगत अर्थात् देखने वाले के हृदय की ही सृष्टि नही माना जा सकता। यदि ऐसा होता तो उस हृदय को सभी रूपरंग सुन्दर लगते। अत: मानना पड़ता है कि सौन्दर्य अंशत: विषयगत तथा अशत: विषयिगत है।

---

१. अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया ॥

उत्तररामचरित अं० ५, पद्य १७।

सौन्दर्य का लक्षण

अब इस पर भी कुछ विचार कर लेना चाहिए कि सौन्दर्य क्या है और वह क्यो आनन्द देता है ? देखा जाता है कि बाह्य जगत् के साथ सपर्क होने पर हमारे जातीय संस्कार तथा वैयक्तिक रुचिया, अनजाने ही, अपनी मधुकरी[1] वृत्ति से तिलतिल चुनकर अनेक वस्तुओ की तिलोत्तमा[2] अथवा आदर्श प्रतिमाएं हमारे मानस में बनालेती है, और जो बाहरी वस्तु हमारी बनाई उस (वस्तु) की मानस प्रतिमा से जितना अधिक सादृश्य रखती है वह हमे उतनी ही सुन्दर तथा प्रिय लगती है क्योकि उसके रूप रग आदि हमारे अन्तःकरण के घटक सत्त्व[3] के

---

१ जिस प्रकार भौरा फूल फूल पर जाकर उनमे से रस चूस लेता है उसी प्रकार मानवमन अनेक व्यक्तियों को देखकर तथा प्रत्येक के सुन्दर अशो को मिलाकर एक काल्पनिक, आदर्श प्रतिमा का निर्माण कर लिया करता है। कवियो चित्रकारो तथा मूर्तिकारो मे इस विधायक कल्पना का विकास विशेष रूप से देखा जाता है।

२. पुराणो मे लिखा है कि ब्रह्माजी के मन मे यह विचार उठा कि उनकी बनाई कोई भी वस्तु सर्वांग सुन्दर नही, किसी का कोई अंश सुन्दर है तो किसी का कोई। अत उन्होंने जहाँ जहाँ जो सबसे सुन्दर था उसे तिलतिल जुटाकर एक सर्वांग सुन्दरी नारी का निर्माण किया। वही तिलोत्तमा थी।

३. साख्य शास्त्र के अनुसार सारा ससार, सत्त्व रज तथा तम—इन तीन गुणो के योग मे बना हुआ माना जाता है। सत्व ज्ञानात्मक तथा सुखमय है। रज दु.खात्मक तथा प्रवर्त्तक या क्रियाशील और तम मोहात्मक तथा स्थिति शील होता है। अन्त. करण भी इन्ही तीन तत्वों का बना है। उसमे सत्वगुण की प्रबलता होने पर बुद्धि खूब काम करती है और सुख की अनुभूति होती है। रजोगुण की प्रबलता से मनुष्य दुख का अनुभव करता है और क्रियाशील होकर तरह तरह की दौड धूप मे लगा रहता है। किन्तु जब तमोगुण बुद्धि को दबा लेता है तब वह कुछ काम नही करती। मनुष्य को नीद आती है या वह पड़ा रहना चाहता है। यह तमोगुण ही सत्व तथा रज का नियन्त्रण भी करता है और उन्हे सीमा मे रखता है।

प्रीत्यप्रीति विषादात्मका : प्रकाश प्रवृत्ति नियमार्थाः।
अन्योन्याभिभवाश्रय जननमिथुन वृत्तयश्चगुणाः ॥ सांख्य कारिका १२ ।

आनन्दाश को उसके ज्ञानाश की अपेक्षा अधिक उत्तेजित कर देते हैं। वस्तुतः हमारे हृदय का वह आनन्दाश ही सौन्दर्य है जो किसी वस्तु के साक्षात् दर्शन या उसके ध्यान से उद्बुद्ध होकर हमे तन्मय कर देता है और उस वस्तु पर पड़कर उसे सुन्दर तथा प्रिय बना देता है।

क्या कोई रूप सबकी रुचि के अनुकूल हो सकता है ?

सौन्दर्य के निर्णय मे रुचि भेद के महत्त्व को समझ लेने पर कलाकार के सामने यह समस्या उपस्थित हो जाती है कि क्या सौन्दर्य का ऐसा चित्रण सभव है जो सब जातियो की रुचि के अनुकूल हो और उनके हृदय को समान रूप से आकृष्ट कर सके।

मूर्तिकार को अपनी कलाकृति मे रूप का ऐसा ठोस तथा यथार्थ चित्रण

सत्व के ज्ञानाश के कारण फूल का ज्ञान होता है, किन्तु, यदि उसे देखकर सुख भी होता है तो वह उसके (सत्व के) आनन्दाश के कारण। किसी अप्रिय घटना का ज्ञान तो सत्व के ज्ञानाश के कारण है किन्तु उससे होने वाली दुःखानुभूति का कारण चित्त का रजोगुण है। संभव है कि उसी घटना से हमारे किसी शत्रु को सुख हो और तब उस सुख का कारण उस (शत्रु) के चित्त का सत्वगुण होगा। तमोगुण की प्रबलता से बुद्धि बेकार हो जाती है। कुछ समझ में नही आता। दुर्घटना यदि अत्यन्त घोर हो तो उसे देख या सुनकर मनुष्य मूर्छित हो जाता है। 'रति ने जब अपनी आँखो के सामने ही कामदेव को जल कर भस्म होते देखा तो आघात की प्रबलता से उत्पन्न मोहने उसकी चेतना को स्तब्ध कर दिया और वह मूर्छित हो गई'' कुमार सभव सर्ग ३ पद्य ७३।
इस प्रकार, हमारी समस्त सुखानुभूति का कारण यह सत्व ही है। इस सत्व के आनन्दांश के प्रकाश मे ही कोई वस्तु सुन्दर लगती है और उससे हमे सुख मिलता है। उस वस्तु के न मिलने से यदि किसी को दुख होता है तब उसके चित्त के सत्व से वह सुन्दर तो लगती है किन्तु साथ ही रजोगुण प्रबल होकर दुख की अनुभूति को उत्पन्न कर देता है।
सत्वं लघु प्रकाशकमिष्ट मुपष्टम्भकं चलं च रज.।
गुरु वरणकमेव तम· प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः॥ साख्य कारिका॥ १३॥

कला के क्षेत्र में मूर्तिकार की कठिनाई

करना होता है जो आगे पीछे, दाएँ बाएँ, सब तरफ से पूर्णतया देखा जा सकता है और जिसमे आँख, नाक, कान, हाथ पैर आदि निश्चित आकार और नाप जोख के होते है, उसमे दर्शक की कल्पना शक्ति को इस बात का कम से कम अवकाश मिलता है कि वह उस रूप को अपनी भावना के रग मे रग कर देख सके। इस लिए यह अत्यन्त कठिन है कि कोई आदर्श मूर्ति भी सब के लिए समान आकर्षण रखती हो।

मूर्तिकार की अपेक्षा चित्रकार को कुछ सुविधा

किन्तु चित्रकार स्थानक[1] अर्थात् pose, झीने मुखावरण, तीव्रप्रकाश, झुटपुटे या अन्धकार आदि उपायो की सहायता से ऐसे चित्र का निर्माण कर सकता है जिसमे रूप रग तथा अग प्रत्यग का सूक्ष्म विवरण न देकर, दर्शक की कल्पना को, अपनी रुचि के अनुसार उनकी पूर्ति के लिए, अधिक से अधिक छूट देदे। इस लिए मूर्ति की अपेक्षा चित्र की सर्वप्रियता अधिक व्यापक क्षेत्र मे हो सकती है।

कवि का शब्द चित्र और भी व्यापक रुचियों के अनुकूल

कवि को पत्थर और छैनी या रग तथा तूलिका आदि की आवश्यकता नही होती। वह इनके बदले केवल शब्दो का प्रयोग करता है और वे शब्द ही सहृदय के चित्रपट पर ऐसे सौन्दर्य की रूपरेखाए खीच देते है जिनमे वह अपनी रुचि तथा भावना का रग भर कर उसे पूर्ण कर लेता है। कवि के शब्द-चित्र मे क्रिया तथा गति का प्रदर्शन भी किया जा सकता है जो मूर्ति तथा रेखा चित्र मे सभव नही। इसलिए कवि का शब्द-चित्र साक्षात् न होता हुआ भी अधिक सजीव तथा अधिक रुचियों के अनुकूल हो सकता है।

अनेक कवि विस्तृत विवरण के पक्षपाती होते है और नख से शिखा तक

---

१ स्थानकभेद —संमुख, पराङ्मुख, सपूर्णावयवरूपम्, पार्श्वागतम्। ततो भागद्वयेनैकन. पततान्यत्रच चटता क्रमेण ऋजु ऋज्वागत द्वयर्धाक्षार्ध-ऋजुसज्ञानि चेतिस्थितस्थानकानि पंच। गमनं, आलीढं, त्वरित, त्रिभंग-मित्याख्यानि च चत्वारि गच्छत्स्थानकानीति। एवं च नवाना स्थानकाना भेदश्चित्रेषु। नल्चपूकी चण्डपालकृत्तटीका, प्रथम उच्छ्वास।
पृ० १४, १५ (काशी सस्कृत सिरीज नं० ९८। सन् १९३२)

सौन्दर्य चित्रण में उपमा आदि अलंकारों की आवश्यकता

प्रत्येक अग का विवरण विस्तार से देते है। कुछ पाठक भी ऐसे वर्णन को ही पसन्द करते हैं क्योंकि पात्र के मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा चरित्र को समझने के लिए वे इसे आवश्यक समझते है, तथा यथार्थवादी चित्रण में इस शैली का अनुसरण ठीक ही है। किन्तु अधिकतर कवि प्रकृति की चित्रशाला मे से, सुन्दर अगों के प्रसिद्ध उपमान चन्द्र, कमल, मोती आदि की सहायता से ही अपने सौन्दर्य-चित्रो का निर्माण करते चले आ रहे है. वे उन अगो की आकृति आदि का विस्तृत विवरण नही देते। महाकवि कालिदास भी इसी कोटि के अन्तर्गत है। उत्तर मेघ के १९वे पद्य[1] मे, उनका किया यक्ष पत्नी का वर्णन देखिए.--यक्ष मेघ से कहता है, 'वहाँ (अलकापुरी वाले मेरे घर मे) तुम्हारी दृष्टि एक ऐसी दुबली पतली श्यामा[2] युवति पर पडेगी जो भरी जवानी मे होगी और जिसे देख तुम अवश्य ही कह दोगे कि विधाता की नारी सृष्टि में उसके जोड की दूसरी नही हो सकती। उसके दाँत हीरे की तरह और होट पकी कदूरी जैसे होगे। वह डरी हुई हरिणी की तरह चचल नेत्रो से निहारती होगी और स्तनो के बोझ से जब वह कुछ आगे को झुक कर धीरे धीरे चलती होगी तो उसकी पतली कमर लचक जाती होगी' इस वर्णन मे कवि ने नायिका के मुख, आख, आदि अवयवो के आकार प्रकार या रूप रग का निर्देश नही किया। सामान्य रूप से केवल इतना ही कहा कि उसका शरीर पतला है और उसकी जवानी उभार पर है। उसके दाँत चमकीले और होठ लाल है। उसकी कमर पतली और वक्ष पुष्ट है तथा कोई अन्य स्त्री सौदर्य मे उसकी बराबरी नही कर सकती। सभवत', ससार का कोई भी देश या समाज ऐसा न होगा जिसे इस प्रकार का नारीरूप रुचिकर न हो। ऊपर लिखा जा चुका है कि रग तथा नाक और

---

१. तन्वीश्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्येक्षामा चकित हरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रास्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टि राद्येव धातुः॥ मेघदूत, उत्तरमेघ, पद्य १९

२. 'श्यामा यौवन मध्यस्था'
यह वाक्य उत्पलमाला' ग्रंथ का है इसका तात्पर्य यह है कि सोलह साल से ऊपर की तथा चढती जवानी वाली युवती को श्यामा कहा जाता है क्योंकि नव रोम निकल आने से शरीर के विशेष अंग श्याम हो जाते हैं।

होंठ आदि की आकृति के विषय में रुचि भेद हो सकता है पर अनार[1] या हीरे से चमकीले दाँत, हरिणी के से भोले नेत्र, पतली कमर, पुष्ट स्तन और उस पर चढ़ती जवानी किसे अच्छी न लगेगी ?

एक अंग्रेजी कविता में सौन्दर्य चित्रण के लिए उपमानों का प्रयोग

अंग्रेजी[2] के एक कवि द्वारा किया गया नारी सौन्दर्य का वह चित्रण देखिए जिससे पता चलता है कि सौन्दर्य के घटक कुछ ऐसे तत्त्व अवश्य है जिनके सम्बन्ध मे संसार के पूर्व पश्चिम तथा उत्तर दक्षिण एक मत है। टामस केरयू महाशय अपनी "Inquiry" नामक कविता मे लिखते है "मैं जब मेंहदी की झाडियो मे घूम रहा था तब मेरी तथा प्रेम की निम्नलिखित बात चीत हुई। मैंने बहुत उदास होकर पूछा, "यह तो बताओ कि मै अपनी प्रेमिका को कहाँ पा सकूंगा ? इस पर प्रेम ने कहा "अरे मूर्ख, तू नही जानता कि वह तो प्रत्येक सुन्दर वस्तु मे छिपी बैठी है ? सामने खिल रहे उन ट्यूलिप के फूलो मे जाकर देख कि उसके होठ और गाल वहाँ विद्यमान है। और दूर पर विकसित पैंसी के उन चमकीले कुसुमो मे उसकी अद्भुत आँखे है। खिले हुए आलुबुखारो और गुलाब की कलियो मे तुझे उसके अरुण रक्त की आभा फूटती दीखेगी और वह दूर फूल

---

१. पके हुए अनार के बीज जैसे माणिक्य या हीरे को शिखर कहते है। अभिधान चिन्तामणि मे लिखा है।
पक्वदाडिमबीजाभ माणिक्य शिखर विदु ।।
मेघ दूत उत्तरमेघ मे १९ वे पद्य की टीका मे चरित्रवर्धन ।।

2. Amongst the myrtles as I walk'd :
Love and my sighs, thus intertalk'd .
"Tell me" said I, in deep distress,
"Where may I find my shepherdess ?"
"Thou fool" said Love "Know'st thou not this,
In everything that's good, she is ?
In yonder tulip go and seek,
There thou may'st find her lip her cheek;
In yon enamelld pansy by,
There thou shalt have her curious eye;
In bloom of peach, in rosy bud;
There wave the streamers of her blood,
In brightest lilies that there stand,
The emblems of her whiter hand;

रही कुमुदिनी उसकी गोरी बाहों की प्रतीक है। सामने उभरी हुई उस पहाड़ी मे तुझे वह (प्रेम) माधुरी मिलेगी जो उसके हृदय मे बसी हुई है।

"अरे बिलकुल ठीक!" कहकर ज्योही मैने उस बिखरे हुए सौन्दर्य को एकत्र करने के लिए उन फूलों को तोड़ना चाहा, त्योही वह तो देखते देखते उड़ गया। मुझे स्तब्ध देखकर प्रेम फिर बोला कि "ऐ मूर्ख, तेरा भी यही हाल होगा। तेरा आनन्द इन फूलो की तरह ही, पल भर मे नष्ट हो जाएगा और इस सुन्दर सामग्री को एक जगह गूंथने के तेरे प्रयास की तरह ही, अपनी प्रेयसी को पाने की तेरी आशा भी क्षण भर मे छिन्नभिन्न हो जाएगी।"

मेघदूत में नायिका के सौन्दर्य का चित्रण

मेघदूत के यक्ष ने भी अपनी प्रियतमा के प्रत्यंग सौन्दर्य को इसी प्रकार जगह जगह बिखरे देख कर बड़े विषाद से कहा था कि बातबात पर रूठ जाने वाली ऐ प्यारी, तुम्हारे शरीर की शोभा श्यामलता में, कटाक्षों की छटा डरी हुई हरिणी की चितवनों मे, मुखमण्डल की माधुरी चन्द्रमा मे और केशपाश की सुषमा मयूर के लम्बे बर्ह मे मिल जाती है। नदी की हलकी लहरियों मे तुम्हारे बाँके भ्रूविलासो का आभास भी देख पाता हू पर तुम्हारे समूचे सौन्दर्य की उपमा कही अन्यत्र[1] नही मिलती।

कालिदास ने कुमार सभव मे, संभवत. इस कमी को पूरा करने के लिए

In yonder rising hill there smell
Such sweets as in her bosom dwell.
" 'Tis true" said I And thereupon
I went to pluck them one by one,
To make of parts an union;
But on a sudden all was gone.
With that I stop Said Love, "These be,
Fond man, resemblances of thee;
And as these flowers, thy joy shall die,
E'en in the twinkling of an eye;
And all thy hopes of her shall wither,
Like these short sweets thus knit together.

१. श्यामास्वङ्गं, चकित हरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातं,
वक्त्रच्छाया शशिनि, शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि, सादृश्य मस्ति ।। उत्तर मेघ, पद्य १०१

कुमारसंभव में सौन्दर्य चित्रण

ही लिखा है कि ब्रह्मा[1] जी के हृदय में यह कुतूहल उत्पन्न हुआ कि इन सब प्रसिद्ध उपमानों—चन्द्रमा, नील कमल और बिम्बाफल आदि-को यदि एक जगह संवार कर आदर्श रूप की रचना की जाए तो वह कैसा हो और मानो इसी निमित्त से उन्होंने पार्वती जी का निर्माण किया।

पार्वती का नखशिख वर्णन

मुखादि उपमेयों मे सौन्दर्य आदि धर्मों की अधिकता प्रकट करने के लिए कवि ऐसे उपमानो की (चन्द्रमा कमल आदि) योजना करता है जिनमे वे धर्म और भी अधिक होते हैं तथा जो उनके कारण विशेष प्रसिद्ध होते हैं। 'फूल सा सुन्दर मुखडा' सुनकर जो मूर्त्त सौ दर्य हमारी आँखो के आगे झलक जाता है वह केवल 'सुन्दर मुखडा' सुनकर नही। 'राजा हरिश्चन्द्र सा सत्यवादी' यह सुनकर हमारे हृदय-पटल पर एक ऐसे व्यक्ति का चित्र अंकित हो जाता है जो सत्य की रक्षा के लिए बडी से बडी विपत्ति झेलने को उद्यत है। यह काम केवल 'सत्यवादी' शब्द से नही हो सकता, क्योकि सत्यवादिता एक अमूर्त विचार है। इसीलिए ससार के सब कवियो ने अपनी रचनाओं में उपमा आदि अलकारो का सहारा लिया है। कालिदास भी अपनी सुन्दर उपमाओ के लिए प्रसिद्ध है और कहा जाता है कि उपमा मे कोई कवि उसकी बराबरी नही कर सकता[2]। जान पडता है कि वह जब किसी वस्तु का वर्णन करना चाहता है तभी एक से एक बढ कर अनेक सुन्दर उपमान उसके आगे हाथ बाँध कर खडे हो जाते है और कवि उनमे से अपनी रुचि के अनुसार चुनाव कर लेता है। रघु के तरुण हो जाने पर उसके सहयोग से राजा दिलीप की शक्ति बढ गई, इसका वर्णन करता हुआ कवि लिखता है कि जिस प्रकार पवन की सहायता पाकर अग्नि प्रचण्ड हो जाता है, बादलो के हट जाने से सूर्य में उग्रता आ जाती है और मद के फूट पड़ने पर, जैसे गन्ध गज उत्कट हो जाता

---

१. सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेश विनिवेशितेन
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थ सौदर्यदिदृक्षयेव ॥
कुमारसभव सर्ग १ पद्य ४९

२. उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्
दण्डिन पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

है, उसी प्रकार रघु के कारण राजा दिलीप भी शत्रुओं के लिए दुर्धर्ष हो गये।[1] कुमारसंभव के प्रथम सर्ग मे पार्वती का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि पढ़ने लिखने की आयु मे पहुँचते ही, पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण उसमें सब विद्याएँ इस प्रकार अवतीर्ण होने लगीं जैसे शरदागम से गंगा में हंसमालाएं, या रात होते ही हिमालय की दिव्य ओषधियों में उसकी स्वाभाविक ज्योति[2]। और जब बचपन समाप्त कर, उसने धीरे-धीरे, आयु के उस भाग मे पदार्पण किया जो देह-रूपी लता का स्वाभाविक शृंगार है, जो मदिरा न होता पर मन को मतवाला बना देता है, और फूल न होता हुआ भी कामदेव का तीखा तीर है, तब उस नवयौवन मे उसका सुडौल शरीर ऐसा खिल उठा जैसे तूलिका से रग भर देने पर तसवीर या सूर्य की किरणो के स्पर्श से कमल का फूल।[3],[4] उसके चरण इतने सुकुमार थे कि पृथिवी पर धरते ही उनके नखो से अरुण आभा फूट पडती थी और जब वह चलती थी तो उसके लाल चरणों की कान्ति के पडने से ऐसा प्रतीत होता था मानो जगह जगह स्थल-कमल खिल उठते हो।[5] हाथी की सूंड और कदलीस्तम्भ आकार मे भले ही उसकी जाँघो के समान थे किन्तु उनमे से एक तो खुरदरी तथा कर्कश और दूसरा एक दम बहुत ठंडा। इसलिए वे उनकी बराबरी नही कर सकते[6] थे। उसकी कमर बहुत पतली थी और नवयौवन उभार पर था। उसके पेट पर पडी तीन रेखाए ऐसी प्रतीत होती थी मानो कामदेव के चढने के लिए नवयौवन ने वहा नसैनी

१. विभावसु सारथिनेव वायुना घनव्यपायेन गभस्तिमानिव।
बभूव तेनातितरा सुदुःसह. कटप्रभेदेन करीव पार्थिवः॥

रघु, सर्ग १ पद्य ३७

२. तां हंसमालाः शरदीव गगां, महौषधि नक्तमिवात्मभासः।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्म-विद्याः॥

३. असंभृतं मण्डनमङ्गयष्टेरनासवाख्य करणं मदस्य
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्परं साथ वय. प्रपेदे॥

४. उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन॥

५. अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिर्निक्षेपणाद्रागमिवोद्गिरन्तौ।
आजह्रतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम्॥

६. नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात्कदली विशेषाः
लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः॥

कुमार सभव सर्ग १ पद्य ३०-३३, ३६

लगा[१] दी हो। उसकी बाहे शिरीष के कुसुम से भी अधिक सुकुमार थीं, जान पडता था कि इसी लिए कामदेव ने पराजित होकर भी उन्हे ही कण्ठपाश बनाकर शिवजी को बन्दी कर लिया[२]। पहले, रात पडने पर, निवास के लिए सुषमा जब चन्द्रमा मे जाती थी तो वहा पर वह कमल की कोमलता और सौरभ आदि से वचित हो जाती थी, और दिन के समय कमल मे आने पर उसे चन्द्रमा के सुखो से हाथ धोने पड जाते थे। किन्तु पार्वती के मुख मे स्थान पाकर उसे दोनो सुख एक साथ मिल गए।[३] उसके लाल होठो पर छिटकी हुई मीठी मुसकान की धवलिमा ऐसी प्यारी लगती थी जैसे लाल कोपलो मे सफेद फूल खिला हो या चमक दार मूगो के बीच मे मोती जडा[४] हो। उसका कण्ठ अत्यन्त सुन्दर था। उसमे से स्तनों पर लटकता हुआ गोल गोल मोतियों का हार ही उसकी शोभा को नही बढा रहा था, किन्तु उस कण्ठ मे पडने से हार की भी शोभा बढ जाती[५] थी। साधारण सुन्दर शरीर की शोभा आभूषण से बढ जाती है किन्तु असाधारण सुन्दर शरीर की शोभा उससे यदि घटती नहीं तो बढती भी नहीं। बिहारी ने ठीक ही लिखा है कि हे सुन्दरी, तुम आभूषण पहनती हो, उनसे क्या लाभ है? वे तो तुम्हारे स्वाभाविक रूप पर दर्पण के दाग से दीखते[६] है। कालिदास ने विक्रमोर्वशीय नाटक मे दूसरे अक के तीसरे पद्य मे

१ मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रय चारु बभार बाला।
आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिवप्रयुक्तम्॥

२ शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति मे वितर्कः
पराजितेनापि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन॥

३ चन्द्र गता पद्म गुणान्नभुक्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्
उमामुख तु प्रतिपद्य लोला द्विसश्रया प्रीतिमवाप लक्ष्मी.॥

४ पुष्प प्रवालोपहित यदिस्यान्मुक्ताफल वा स्फुट विद्रुमस्थम्
ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचे. स्मितस्य॥

५. कण्ठस्य तस्या स्तन बन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य।
अन्योन्यशोभाजननाद्बभूव साधारणो भूषणभूष्यभाव॥
कुमार, सर्ग १ पद्य ३९, ४१, ४३, ४४, ४२।

६ पहिर न भूषण कनक के कहि आवत इहि हेत।
दर्पण के से मोरचा देह दिखाई देत॥
और इसी आशय को उर्दू के एक कवि ने यों कहा है:—
नहीं मुहताज ज़ेवर का जिसे खूबी खुदा ने दी।
कि आखिर बदनुमा लगता है देखो चाँद को गहना॥

उर्वशी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि "उसकी देह तो आभूषणो की भी आभूषण, सजावट की सामग्री को उलटा सजा देने वाली और उपमानो की भी प्रत्युपमान[1] है।" पहले लिखा जा चुका है कि उपमान चन्द्र आदि को उपमेय मुखादि से अधिक समझा जाता है तभी तो उपमेय के गुण को बढ़ाने के लिए उस उपमान की योजना की जाती है आम या अमरूद बहुत मीठे हों तो उन्हे मिशरी सा कहा जाता है न कि मिशरी की मिठास बतलाने के लिए उसे उन जैसा। महाकवि भवभूति[2] ने भी उत्तर रामचरित मे राजा जनक द्वारा कौशल्या के विषय मे कहलाया है कि ये दशरथ के गृह मे लक्ष्मी के समान थी, अथवा 'समान' क्यो कहा जाए, साक्षात् लक्ष्मी ही थी।

उपमानों आदि की सहायता से सौन्दर्य चित्रण की सार्वभौमता

अभी कुमारसभव के प्रथम मर्ग से पार्वती के नखशिख वर्णन के कुछ अश उद्धृत कर यह दिखलाया गया है कि कवि ने उपमानो की योजना कर किस प्रकार सौन्दर्य का चित्रण किया है। किन्तु सौन्दर्य वर्णन की यह शैली भारत में ही नही सर्वत्र प्रचलित है। टी० लौज[3] महाशय की रोज़ेलिड शीर्षक वाली कविता मे भी इस उपमान

---

१ आभरणस्याभरण प्रसाधन विधे. प्रसाधनविशेषः ।
उपमानस्यापि सखे, प्रत्युपमान वपुस्तस्या. ।। विक्रमोर्वशीय अक २ का ३

२. आसीदिय दशरथस्य गृहे यथा श्रीः, श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैषा ।
कष्ट बता न्यदिव दैववशेन जाता, दुःखात्मक किमपिभूतमहोविकारः ।।
अक ४ का ६

Rosalynde

३. Like to the clear in highest sphere
Where all imperial glory shines,
Of self same colour is her hair
Whether unfolded, or in twines :
Heigh ho, fair Rosalynde !
Her eyes are sapphires set in snow,
Resembling heaven by every wink;
The Gods do fear when as they glow,
And I do tremble when I think
Heigh ho, would she were mine !
Her cheeks are like the blushing cloud
That beautifies Aurora's face,
As like the silver crimson shroud
That Phoebus' smiling looks doth grace;
Heigh ho, fair Rosalynde !

की योजना को देखिए---[1]'उसका केश पाश निर्मल नील गगन के उस उच्चतम प्रदेश के समान है जहाँ तारे जगमगाते है। उसके नेत्र हिम मे जटित नीलम है और कपोल उस अरुणाभ धवल मेघ-खण्ड जैसे जो उषा के मुख को अलकृत कर रहा हो, या उस लाल रूपहले हलके धूप छाँही आवरण जैसे जो मुसकराते बाल सूर्य के मुख की शोभा को बढ़ा दिया करता है। उसके होंठ गुलाब की उन दो कलियो से है जिनके चारो ओर कुमुद खिल रहे है। उसकी गरदन वह शानदार मीनार है जिसमे प्रेम बन्दी है और वहाँ बैठा हुआ वह उसकी दिव्य तथा पवित्र कटाक्षो की छटा को निहारा करता है उसके स्तन अन्तरिक्ष मे भ्रमण करने वाले ग्रह नक्षत्रों के समान है और उनको घुडिया आनन्द के

---

१ Her lips are like two budded roses
Whom ranks of lilies neighbour nigh,
Within which bounds she balm encloses
Apt to entice a deity :
Heigh ho, would she were mine !
Her neck is like a stately tower,
Where Love himself imprisoned lies,
To watch for glances every hour
From her divine and sacred eye :
Heigh ho, for Rosalynde !
Her paps are centres of delight,
Her breasts are orbs of heavenly frame,
Where Nature moulds the dew of light
To feed perfection with the same :
Heigh ho, would she were mine !
With orient pearl, with ruby red,
With marble white, with sapphire blue
Her body every way is fed
Yet soft in touch and sweet in view :
Heigh ho fair Rosalynde !
Nature herself her shape admires
The Gods are wounded in her sight;
And Love forsakes his heavely fires
And at her eyes his brand doth light :
Heigh ho, would she were mine :
Then muse not, Nymphs, though, I be moan
The absence of fair Rosalynde,
Since for a fair there's fairer none,
Nor for her virtues so divine :
Heigh ho, fair Rosalynde;
Heigh ho, my heart ! would God that she were mine !

गोल्डन ट्रैजरी—पृ० १०, ११।

केन्द्र। उसकी देह का निर्माण चमकीले मोती, लाल पद्मराग, श्वेत स्फटिक और नीले नीलमो से हुआ है तो भी वह कोमल और मधुर सौन्दर्य वाली है, इत्यादि। विभिन्न देशो तथा जातियो की ऐसी कविताओं को पढ कर और यह अनुभव करके कि मानव हृदय की अनुभूतियों तथा उनके प्रकाशन मे कितनी समानता है, एक उल्लास तथा सार्वभौम आत्मीयता की लहर सी दौड़ जाती है।

कालिदास की व्यंजना-प्रधान शैली

ऊपर, कालिदास द्वारा किए, पार्वती जी के नखशिख के विस्तृत वर्णन का कुछ नमूना देखा जा चुका है किन्तु कवि की प्रिय शैली वह है जिसमे वह वर्णनीय रूप की थोडी सी रूपरेखा देकर अपने नपे तुले किन्तु अत्यन्त व्यजक शब्दों द्वारा पाठक की विधायक कल्पना शक्ति को ऐसा उत्तेजित कर देता है कि शेष चित्र को वह आप ही पूर्ण कर उसे सहृदय की भावना के रग से रग देती है, और इसमे कवि सिद्धहस्त है। रघुवश के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ मे ही दिलीप[1] का वर्णन है कि उसकी छाती उभरी हुई तथा विशाल थी, सुदृढ कन्धे वृषभ की तरह के, डील डौल शाल वृक्ष के समान तथा भुजाएँ लम्बी थी। ऐसा प्रतीत होता था। मानो अपने कार्यों को करने मे समर्थ शरीर में साक्षात् क्षत्रिय धर्म ही आ बैठा हो। इस वर्णन मे एक लम्बे तडगे, शक्ति-शाली, वीर पुरुष के शरीर की सक्षिप्त रूप-रेखा मात्र है; आँख नाक सूरत शकल और रग आदि का निर्देश नही। ऐसा वर्णन पाठक की कल्पना शक्ति को जगाकर वह सामग्री दे देता है जिसका उपयोग कर, वह कुछ तो अपने पहले देखे ऐसे एक या अनेक बलवान व्यक्तियो के शरीर की बनावट के आधार पर, जिनका चित्र उसकी आँख के आगे एक दम आ जाता है, और कुछ आदर्श कल्पना के आधार पर दिलीप का ऐसा चित्र बना डालती है जो पाठक की रुचि के अनुकूल होता है। रघुवश के उक्त वर्णन को पढ़ कर भारतीय, रूसी, चीनी अफ्रीका-वासी या युरोपियन पाठक दिलीप का जो चित्र बनाएँगे वह तीन चौथाई के लगभग उनकी भावना की सृष्टि होने के कारण उसके अनुकूल और उन्हे रुचिकर होगा।

रघुवंश के छठे सर्ग मे पूर्वजन्म की अप्सरा राजकुमारी इन्दुमती के

---

१. व्यूढोरस्को वृष स्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः॥

कालिदास के सौन्दर्य-चित्र सार्वभौम और सदा नए रहने वाले हैं वे किसी देश या जाति तक सीमित नहीं और समय उन्हें पुराना नहीं कर सकता

स्वयंवर का वर्णन है। जिससे विवाह की कामना कर, इतने राजकुमार दूर दूर से एकत्र हुए, वह अवश्य ही अभूतपूर्व सुन्दरी रही होगी। किन्तु कवि ने उसके सम्बन्ध मे केवल इतना ही कहा कि वह विधाता की असाधारण रचना थी। सैकडो नेत्रों ने उसे एक टक देखा और देखते ही उनके केवल शरीर ही अपने स्थानो पर पडे रह गए, हृदय[1] तो उस सुन्दरी के रूप की भूल भुलैया मे खो गए। यहाँ भी कवि ने विश्व के प्रत्येक सहृदय को पूरी छूट दे दी कि वह अपनी कल्पना की आदर्श सुन्दरी के साँचे मे इन्दुमती को ढाल ले। अत कालिदास की इन्दुमती केवल भारतीय सुन्दरी नही अपितु विश्व सुन्दरी है। कालिदास के बनाए ये सौन्दर्य कभी पुराने नही पड सकते और इन पर माघ कविकृत सौन्दर्य की वह परिभाषा खूब चरितार्थ होती है जिसमे कहा गया है कि सौन्दर्य वही है जो प्रतिक्षण नया ही नया झलकता है।

कालिदास की शकुन्तला

शकुन्तला असाधारण सुन्दरी थी। उसका जन्म भूतपूर्व राजा विश्वामित्र द्वारा अप्सरा मेनका के गर्भ से हुआ था। तभी तो उसे देखकर रूप विस्मित दुष्यन्त ने कहा था,

"मानुषियो मे रूप यह सभव है किस भाँति ?
नही प्रकटती भूमि से प्रभा तरल यह कान्ति।"

शाकु १—२४।

कवि ने इन्दुमती की तरह ही शकुन्तला का वर्णन भी नखशिख वाली शैली से नही किया। इस कार्य के लिए उसे विधायक कल्पना की अपेक्षा सूक्ष्म आदर्श कल्पना का सहारा लेना पडा। शकुन्तला के सौन्दर्य-चित्र की पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए कवि विदूषक से कहलवाता है, "जैसे मीठी खजूरो से मन उकता जाने पर किसी का मन इमली के लिए ललचाने लगता है, वैसे ही एक से एक बढिया रमणी रत्न के रहते भी उसे देख आपके मुँह मे पानी भर आया !" राजा बोले, 'अरे तुमने उसे देखा नही, तभी ऐसा कह रहे हो।' विदूषक ने कहा— 'तब तो वह अवश्य ही अपूर्व सुन्दरी होगी जिसे देखकर आप को भी अचम्भा हो रहा है।' इस पर राजा ने उत्तर दिया 'मित्र अधिक क्या कहूँ:

---

१. तस्मिन् विधनातिशये विधातुः कन्यामये नेत्र शतैकलक्ष्ये।
निपेतुरन्तः करणै र्नरेन्द्रा देहै स्थिता केवल मासनेषु॥

रघु० सर्ग ६ पद्य ११

अंकित कर वह रूप चित्र मे फूंक दिए क्या उसमें प्राण ?
क्या लावण्य राशि ले, मन से किया विधाता ने निर्माण ?
विधि के वैभव और रूप वह—दोनों पर देता हूँ ध्यान,
तो दिखती स्त्रीरत्न सृष्टि वह मुझे और ही रूप निधान ।।"
शाकु० अंक २ पद्य ९

सौन्दर्य चित्रण में अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग

दुष्यन्त का भाव यह है कि जब वह एक ओर शकुन्तला के उस अनूठे सौन्दर्य को देखता है और दूसरी ओर ब्रह्मा जी की रूप निर्माण क्षमता पर विचार करता है तब ललनाओं मे रत्न समान वह (शकुन्तला) कोई नई ही रचना प्रतीत होती है। जान पडता है कि एक आदर्श सुन्दरी के रूप का कल्पना चित्र बना उसमे जान फूंक दी है या फिर विधाता ने ही पाँच भौतिक उपादानो—अस्थि मज्जा मास आदि के स्थान पर सौन्दर्य राशि को लेकर (हाथो से नही) अपने केवल मानसिक व्यापार से ही उसकी रचना की है। कालिदास की इस सूझ की व्याख्या करते हुए बाण[1] लिखते है कि हाथो से छू जाने पर तो लावण्य की अक्लिष्टता (अछुवायापन) नष्ट हो जाती है।

कालिदास की मान्यता थी कि चित्रकार अपनी कला कृति में यथार्थ (नायिका आदि के रूप) के दोषो को सुधार कर उसे आदर्श की ओर बढ़ा सकता है। किन्तु यह सुधारना सँवारना वहाँ तक सह्य है जहाँ तक वह उस यथार्थ का चित्र रहे, नई चीज न बन जाए। सुघड स्त्रियाँ काजल बिन्दी तथा बहुत हल्के पाउडर आदि से अपने रूप को सँवारती है जिससे उनका यथार्थ सौन्दर्य खिल उठता है, सर्वथा ढक या बदल नही जाता। कालिदास यह भी स्वीकार करता है कि एक बार बनाए चित्र मे यदि कुछ कसर रह जाए तो उसे ठीक

---

१. मन्ये च मातङ्गजातिस्पर्शदोषभयादस्पृशतेय मनसैवोत्पादिता प्रजापतिना, अन्यथा कथमियमक्लिष्टता लावण्यस्य। नहि करतल स्पर्श-क्लेशिताना मनायवानामीदृशी भवति कान्तिः ।।
अर्थात् मै समझता हूँ कि प्रजापति ने चण्डाल जाति के स्पर्श से बचने के लिए इसे, बिना छुए, मन से ही बनाया है। नही तो लावण्य का ऐसा अछूतापन सभव नही। हाथो के लग जाने से तो सौन्दर्य की कान्ति म्लान हो जाती है। (कादम्बरी पृ० २४ निर्णय सागर प्रेस, चतुर्थ संस्करण सन् १९१२)

किया जा सकता है किन्तु दुष्यन्त अपने बनाए शकुन्तला के चित्र को देख कर कहता है कि इसमें तो उसके यथार्थ सौन्दर्य का लेश भर ही आ सका है[1] जबकि सानुमती उसके सम्बन्ध मे कहती है कि ऐसा प्रतीत होता है कि प्रिय सखी (शकुन्तला) ही मेरे सामने खडी है। इस दृष्टि भेद का रहस्य देखने वालों की भावना मे निहित है। दुष्यन्त पुरुष है और बिछुडा प्रेमी, किन्तु सानुमती स्त्री है और सखी । तुलसी ने लिखा है कि 'मोहि न नारि नारि के रूपा, पन्नगारि यह नीति अनूपा ।'

उर्वशी का चित्रण

कालिदास को ब्रह्मा जी से नाराज़गी है जिसका कुछ प्रकाशन उसने उक्त पद्य मे किया है किन्तु विक्रमोर्वशीय[2] मे तो कवि ने उन्हें बिल्कुल ही अयोग्य ठहरा दिया है। उर्वशी को देखकर पुरुरवा कहता है, यह बेचारे उस बूढे तापस की रचना नही हो सकती, क्योकि वेद पढ पढ कर पत्थर हो गए महाठूँठ खूसट मुनि के शिथिल हाथ भला ऐसे रूप का निर्माण कर सकते है ? इसके लिए तो, हो न हो, कमनीय कान्ति वाले चन्द्रमा ने प्रजापति का स्थान ग्रहण किया होगा या शृगार रस के देवता स्वय कामदेव अथवा प्रचुर पुष्प सपत्ति वाले वसन्त ने इसकी रचना की होगी।

भवभूति द्वारा कालिदास का अनुसरण

बहुत सभव है कि महाकवि भवभूति के मन मे भी तब कालिदास का यही पद्य कुछ स्फुरणा दे रहा हो जब मालती के सौन्दर्य के सम्बन्ध मे वे माधव मे कहलवा रहे थे कि वह मानो रमणीयता की अधिष्ठात्री देवी है या सौन्दर्य किसी ने सार के समग्र समुदाय को एकत्र कर दिया है ! उसके शरीर का निर्माण स्वय कामदेव ने ब्रह्मा बन कर और चन्द्रमा, अमृत, मृणाल तथा चन्द्रिका

---

१. क—यद्यत्साधु न चित्रेस्यात्क्रियते तदत्तयन्था ।
तथापि तस्याः सौन्दर्य रेखय किं चिदान्वितम् ॥ — शाक अंक ६ पद्य
(ख) जाने सखी अग्रतो मे वर्तते इति । — शकुन्तला अंक ६ में

२ अस्या. सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रद:
शृगारैकरसः स्वय नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ।
वेदाभ्यासजड. कथ नु विषयव्यावृत्त कौतूहलो
निर्मातु प्रभवेन्मनोहरमिद रूप पुराणो मुनि ॥ विक्रमो० अंक १, पद्य १०

आदि सामग्री लेकर[1] किया होगा।

इस प्रसंग में महाकवि तुलसीदास की कल्पना की उडान भी देखने योग्य है। वे लिखते है कि सीताजी के सौन्दर्य का वर्णन

अतिशयोक्ति की सहायता से तुलसीदास द्वारा सौंदर्य का चित्रण

सभव नही क्योकि एक तो वे जगत् की माता और दूसरे समस्त रूप गुणों की खान। मुझे तो उनके लिए सभी उपमाएं तुच्छ प्रतीत होती है क्योकि कवियो ने साधारण नारियो के अंगो की उनसे तुलना कर उन्हे जूठा कर दिया है। अब उनकी आवृत्ति कर कौन कुकवि होने का कलक अपने माथे ले ? मुझे तो ससार की कोई भी नारी ऐसी सुन्दर नही दीखती जिसे उनसी कह सकूँ। सरस्वती बोलती बहुत है, पार्वती का शरीर आधा ही है, रति विधवा होने से जनम दुखिया है और वह लक्ष्मी जिसके भाई बहिन विष तथा मदिरा आदि है, उनकी समता कैसे कर सकती है ? पर यदि कोई समुद्र केवल सौन्दर्य-सुधा से भरा हो, उसमे शृगार रस रूपी मन्दर पर्वत को परम रूपमय कच्छप भगवान् की कमर पर रखकर और शोभा रूपी रस्सी से लपेट कर, यदि कामदेव अपने कर कमलो से स्वय मथे तो सौन्दर्य और सुख की निधान जिस लक्ष्मी का जन्म होगा उसे भी कवि-गण बड़े संकोच के साथ, सीताजी से कुछ मिलती जुलती[2] कह सकेगे।

---

१. (क) सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतन वा।
तस्या सखे नियतमिन्दुसुधामृणालज्योत्स्नादिकारणमभून्मदनश्च वेधाः॥
मालतीमाधव

(ख) सिय शोभा नहि जाइ बखानी, जगदम्बिका रूप गुण-खानी।
उपमा सकल मोहि लघु लागी, प्राकृत नारि अंग अनुरागी।
सीय तरुणि केहि उपमा देई, कुकवि कहाय अयश को लेई।
जो पटतरिय तियन सम सीया, जग अस युवति कहां कमनीया ?
गिरा मुखर, तनु अरध भवानी, रति, अति दुखित अतनु पति जानी।
विष वारूणी बन्धु प्रिय जेही, कहिय रमा सम किमि वैदेही ?
जो छवि सुधा पयोनिधि होई, परम रूप मय कच्छप सोई,
शोभारजु, मन्दर शृंगारू, मथै पाणि पकज निज मारू,
यहि विधि उपजे लच्छि जब सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत कवि कहहिं सीय सम तूल॥
राम० च० मा० बालकाण्ड

जनकपुरी की वाटिका मे उन्हे सखियो सहित देखकर श्री राम कहते है "इनसे तो उलटी सुन्दरता ही सुन्दर हो उठी है। अपनी सखियों के बीच मे ये ऐसी दमक रही है जैसे किसी चित्रशाला मे दीपावली जल रही हो। सब जानते है कि तसवीर अन्धकार मे तो दीखती ही नहीं, और दिन के प्रकाश मे भी उस की वह शोभा नही होती जो रात्रि के समय दीपक के प्रकाश मे। अत. कवि का यह कथन कुछ असगत-सा प्रतीत होता है, पर बात ऐसी नही। सीता जी की सब सखिया सभवत एक से एक बढकर थी जैसी कि शकुन्तला की प्रियवदा आदि जिन्हे देखकर राजा ने कहा था "आहा! कैसा प्यारा है इनका रूप"[1] उनमे भी शकुन्तला की तरह ही सीता जी सब से सुन्दर रही होगी। देखा जाता है कि किसी अत्यन्त सुन्दर रूप को देख कर उसकी आनन्दमयी मोहिनी से देखने वाले की आलोचना शक्ति कुण्ठित हो जाती है, जिससे उसके समीप के कुछ उन्नीस रूप भी उसी तरह खिल उठते है जैसे दीपक के प्रकाश मे तसवीरे।

दीपशिखा वाली इस उपमा के लिए तुलसीदास रघुवश मे कालिदास की उस प्रसिद्ध उपमा के ऋणी है जिसमे इन्दुमती को उस सचारिणी[2] दीपशिखा के समान कहा गया है जो रात्रि के समय, किसी भवन के सामने पहुँच क्षण भर को उसे आलोकित कर आगे बढ़ जाती है। क्योकि इन्दुमती जिस राजा के सम्मुख पहुँचती थी उसका चेहरा भी क्षण भर के लिए आशा से खिल उठता था पर फिर निराशा की निशा मे निमग्न हो जाता था। कालिदास की इस उपमा को जयदेव[3] कवि ने अपने नाटक प्रसन्न राघव मे ग्रहण किया और वहाँ से तुलसीदास ने रामचरित

दीपशिखा की उपमा

---

१. अहो मधुरमासां दर्शनम्। (आहा! इनका रूप कैसा प्यारा है?
शाकु० अंक १ पद्य १६ के आगे।

२. सचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं य व्यतीयाय पतिवरा सा
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्ण भावं स स भूमि पालः॥ रघु० सर्ग ६ पद्य

३. केय श्यामोपलविरचितोल्लेखहेमैकरेखा
लग्नैरंगै कनककदली कन्दली गर्भगौरैः।
हारिद्राम्बु द्रवसहचरं कान्तिपूर वहद्भि
कामक्रीडाभवनवलभीदीपिकेवाविरस्ति॥ प्रसन्नराघव अक

मानस में कुछ सहृदयों को यह उपमा इतनी पसन्द आई कि उन्होंने इसके आधार पर ही कालिदास का उपनाम 'दीप शिखा' रख दिया।

कालिदास की सौन्दर्य चेतना बडी सूक्ष्म तथा परिष्कृत है। उसकी दृष्टि बाह्य रूप की चका चौंध से झपकती नही किन्तु उसे भेद कर भीतर चली जाती है। उसके लिए रूप माधुरी वह वर है जो व्यक्ति के प्राक्तन पुण्यों का परिणाम है किन्तु यदि उसके पीछे सुन्दर हृदय नही तो वह अपूर्ण ही है। हृदय का सौन्दर्य निष्पाप हाव भाव, मधुर बोल चाल तथा साधु व्यवहार मे झलका करता है। कालिदास ने जिन पात्रो की सृष्टि की है वे बाहर भीतर दोनों तरफ से सुन्दर है। कवि ने उनके उस सौन्दर्य चित्रण के लिए जिस कथा वस्तु, कथा कथन शैली, भाव व्यजना, वाक्य रचना, एव गुण तथा अलकारों का प्रयोग किया है वे भी सर्वात्मना सुन्दर है और यही उसकी बड़ी विशेषता है।

कालिदास द्वारा प्रेम का परिष्कार

१ अभिज्ञान शाकुन्तल का विषय मानवीय प्रेम का चित्रण

राजा दुष्यन्त प्रणय के क्षेत्र मे पुराने अनुभवी तथा मँजे हुए खिलाडी थे। नए नए शिकार फँसा कर उनसे थोडा-सा दिल-बहलाव करना और फिर उन्हे इरावती[१] या हसपदिका[२] की तरह, सदा के लिए तडपते छोड देना, उनके लिए बिल्कुल साधारण सी बात थी, इसीलिए कवि ने नाटक के प्रारम्भ मे ही उनका परिचय चचल प्रेमो के प्रतीक भ्रमर तथा शिकारी के रूप मे दिया है और प्रथम अक के अन्त मे फिर स्मरण करवाया है कि 'हे तपोवन के निवासियो, मृगया[३] बिहारी राजा दुष्यन्त आ पहुँचा है अत आश्रम के प्राणियो की रक्षा के लिए सावधान हो जाओ। किन्तु फिर भी सखियो की मगल कामनाएँ तथा ऋषि की साधनाएँ शकुन्तला को आपत्ति से न बचा सकी। कवि, सभवत यह चाहता भी न था, क्योकि इस नाटक मे तो उसे मानव-लोक के प्रेमियो के व्यवहार का चित्रण अभीष्ट था। भूल कर करके गिरना और गिर-गिर कर उठना ही तो मानवता है। भूल न करना और न गिरना देवत्व मे ही सभव है और उस देवत्व का चित्रण कवि कुमारसभव मे पार्वती तथा शिव के व्यवहार द्वारा कर चुका था।

वहाँ उसने वर्णन किया है कि 'पार्वती अपूर्व सुन्दरी थी। जान पडता है कि विधाता के चित्त मे कुतूहल उत्पन्न हुआ कि संसार

---

१. मालविकाग्निमित्र नाटक मे राजा की उपेक्षिता एक रानी

२ अभिज्ञान शाकुन्तल के पाँचवे अक में राजा की उपेक्षिता रानी

३. शिकार का शौकीन राजा दुष्यन्त आ पहुँचा है।

अभिज्ञान शाकुन्तल अंक १ पद्य २९ के आगे।

२ कुमारसंभव का विषय दिव्य प्रेम का चित्रण शिव बाह्य रूप पर नहीं रीझते

के समग्र सौन्दर्य को यदि एकत्र कर दिया जाए तो वह कैसा हो ? और इसीलिए उसनें बड़े यत्न से उस सारी सामग्री को सँजोकर तथा एक जगह संवार कर उसकी रचना[१] की थी।' 'तभी तो रति को भी लजा देने वाले उनके रूप को देखकर कामदेव के मन में भी एक बार तो यह आशा बंध गई थी कि शायद जितेन्द्रिय शिव पर भी उसका जादू[२] चल जाए किन्तु वह सफल न हुई। 'तब पार्वती मन ही मन अपने शारीरिक सौंदर्य की निन्दा करती हुई उसे तप की अग्नि में तपाकर और भी अधिक उज्वल तथा अमोघ बनाने मे लग गई, क्योकि वैसा अलौकिक[३] पति तथा उस प्रकार का दिव्य प्रेम तपस्या के बिना मिल सकना भला कहाँ संभव है।'[४]

तप से पार्वती ने प्रेमी के हृदय को जीता

'पिता की अनुमति से वह अपनी सखी के साथ हिमालय के उस शिखर पर आश्रम बना कर रहने लगी, जिसका नाम, पीछे से उसके कारण ही गौरीशिखर[५] प्रसिद्ध हो गया।' 'जो कभी गेंद खेलते भी थक जाया करती थी वही अब मुनियो के समान कठोर व्रत के पालन मे तत्पर हो गई

---

१ सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थ सौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥
कुमार० सर्ग १ श्लोक ४९'

२. तां वीक्ष्य सर्वाऽवयवानवद्यां रतेरपि ह्रीपदमादधानाम्।
जितेन्द्रिये शूलिनि पुष्पचापः स्वकार्यसिद्धिं पुनराशशंसे ॥
कुमार० सर्ग ३ श्लोक ५७'

३. तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्न मनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती, प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥
कुमार० सर्ग ५ श्लोक १

४. इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यतेवा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेमपतिश्च तादृशः ॥
कुमार० सर्ग ५ श्लोक २'

५. अथानुरूपाभिनिवेशतोषिणा कृताभ्यनुज्ञा गुरुणा गरीयसा
प्रजासु पश्चात्प्रथितं तदाख्यया जगाम गौरीशिखरं शिखण्डिमत् ॥
कुमार. सर्ग. ५ श्लोक ७

क्योंकि उसकी देह उस स्वर्ण कमल के समान थी जो सुकुमार होता हुआ भी दृढ[1] होता है। शिव के वियोगानल में जल रही जिसे एक दिन चंदन के लेप और हिमगृहों की बर्फीली चट्टानों[2] मे भी चैन न पड़ती थी, उसे अब जेठ की दुपहरी मे पचाग्नि तापन[3] सा कठिन तप करते देख आश्चर्य होता था। बरसात की अँधेरी रातें, बिजली रूपी अपनी आँखो से उनकी उग्र तपस्या को देख दयार्द्र हो आँसू बहाने लगती[4] थी। माघ की रातो में, भीषण तुषार पडने से जब सब कमल जल गए, तब भी वह जब गले-गले पानी मे खडी होकर तपस्या करती थी तब शीत से काँपते होठों वाले और स्वभाव से सुगन्धित उसके मुख से शोभित वह जल ऐसा प्रतीत होता था मानो उसमे एक कमल[5] बचा रह गया है। और वह उस अवस्था में भी, पास ही विछोह से व्याकुल होकर क्रन्दन[6] करते चकवे चकवी के जोड़े को देखकर कातर हो जाया करती थी। उसे नित्य स्नान किए, वल्कल वस्त्र पहने, और अग्निहोत्र तथा स्वाध्याय के

---

१. क्लम ययौ कन्दुकलीलयाऽपि या, तया मुनीना चरित व्यगाह्यत।
ध्रुव वपु काचनपद्मनिर्मित मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च॥
कुमार सर्ग ५ श्लोक. १९

२ तदा प्रभृत्युन्मदना पितुर्गृहे ललाटिकाचन्दनधूसरालका।
न जातु बाला लभते स्म निर्वृति तुषार सघातशिलान्तरेष्वपि॥
कुमार सर्ग ५ श्लोक. ५५

३. शुचौ चतुर्णा ज्वलता हविर्भुजां शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा।
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनी प्रभामनन्यदृष्टि सवितारमैक्षत॥
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक २०।

४. शिलाशया तामनिकेतवासिनी निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयैर्महातप. साक्ष्य इव स्थिता क्षपाः।
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक० २५

५. मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना।
तुषारवृष्टिक्षत पद्मसम्पदां सरोज सधानमिवाकरोदपाम्॥
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक २७

६. निनाय साऽत्यन्त हिमोत्किरानिला: सहस्य रात्रीरुदवासतत्परा:।
परस्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयो पुरो वियुक्ते मिथुने कृपावति॥
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक २६

साथ ऐसी कठोर तपस्या करती देखकर ऋषि-गण[1] भी श्रद्धा से उसके दर्शनो के लिए आने लगे क्योकि धर्म के क्षेत्र मे बड़प्पन का कारण आयु नहीं समझी जाती।'

सच्चे प्रेम का शिव पर प्रभाव

अन्त मे जब एक दिन स्वयं शिव भी ब्रह्मचारी का प्रच्छन्न वेष बना, परीक्षा के लिए उसके यहाँ पहुँचे तब अतिथियों का सत्कार करने वाली, वह उठ[2] खडी हुई और बड़े सम्मान के साथ उसने आगन्तुक का सत्कार किया न कि दुष्यन्त के प्रेम मे डूबी हुई शकुन्तला की तरह वह बेखबर ही बैठी रही। जो अनन्य प्रेमी भगवान् शंकर एक दिन उसके सुकुमार सौन्दर्य का तिरस्कार करके चले गए थे वे ही उसके तपस्या से मुरझाए, रूखे रूप पर रीझ गए, क्योंकि उन्होंने परीक्षा करके देख लिया कि वह इन्द्रादि[3] लोक पालों के दिव्य रूप तथा ऐश्वर्य की भूखी नही। वह मन ही मन उनके साथ पूर्ण-तादात्म्य भाव प्राप्त कर उनके चरणो पर आत्मसमर्पण कर चुकी है। तब उन्होंने स्पष्ट शब्दों मे कह दिया कि 'तुमने जिसे अपनी तपस्या से जीत लिया है वही तुम्हारा यह दास तुम्हारे सम्मुख उपस्थित[4] है।'

पार्वती ने हृदय दे दिया किन्तु शरीर नहीं

इस पर शकुन्तला की तरह पार्वती एक दम फिसल नही पडी। उसने सखी द्वारा कहलवा दिया कि 'यदि आप मुझसे विवाह करना चाहते है तो मेरे पिता पर्वतराज हिमालय से प्रार्थना कीजिए[5]।' हृदय उसका अपना था वह उसने

१. कृताभिषेका हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीमधीतिनीम् ।
दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन्न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ॥
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक १६

२. तमातिथेयी बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती ।
भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसा वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः ॥ ३१ ॥

३. इय महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रियश्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी
अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात्पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति ॥
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक ५३

४. अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज, क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ॥
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक ८६

५. अथ विश्वात्मने गौरी संदिदेश मिथः सखीम् ।
दाता मे भूभृतां नाथः प्रमाणी क्रियतामिति ॥ कुमार० सर्ग० ६ श्लोक १

शिव के चरणों मे अर्पित कर दिया, किन्तु शरीर पर वह पिता का अधिकार समझती थी अत लौकिक मर्यादा के पालन के लिए उसने अपने अलौकिक पति से भी अनुरोध किया।

शकुन्तला तथा पार्वती में अन्तर

यहा किसी पक्ष को भी उस अवधीरणा[1] की आशका न थी जो दुष्यन्त तथा शकुन्तला के मिलन मे बाधक बनी थी, क्योकि शकुन्तला तो पति के कुल मे दास्य तक[2] के लिए तय्यार न थी। राजरानी तथा राज माता[3] पद के लोभ ने उसके पैरो को डगमगा दिया था। वहा पर वह निःस्वार्थ प्रेम न था जिसमे अभिमान तथा द्वित्व के लिए स्थान नही रहता और जिसका वर्णन कबीर ने इस प्रकार किया है :—

पीया चाहे प्रेम रस राखा चाहे मान,
एक म्यान मे दो खड़ग-देखा सुना न कान।

प्रेम का प्रारभ उस वासना से होता है जो प्रेमी को प्रेमभाजन के प्रति ऐसा आकृष्ट कर देती है कि प्रेमी उसे केवल अपनी ही सपत्ति बना कर तथा छिपा कर रख लेना चाहता है। वह उसे अपने मे विलीन कर लेने की इच्छा रखता है और कहता है कि

नैनो अन्तर आव तू, नैन झाप तोहि लेव।
ना मै देखों और को, ना तोहि देखन देव।।

---

१. अय स ते तिष्ठति सगमोत्सुको विशकसे भीरु यतोऽवधीरणाम्।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रिय, श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्।।
अभि० शा० अक ३ श्लोक १६

२. यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि; कि पुनरुत्कुलया त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्।।
अभि० शा० अक ५ श्लोक ३०

३. शकुन्तला उवाच—यदि धर्मपथस्त्वेषः, यदि चात्मा प्रभुर्मम
प्रदाने पौरवश्रेष्ठ, शृणु मे समय प्रभो।
सत्यं मे प्रतिजानीहि यथा वक्ष्याम्यह रह।
मयि जायेत यः पुत्रः स भवेत्त्वदनन्तरम्,
युवराजो महाराज, सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।
यद्येतदेवं दुष्यन्त, अस्तु मे संगमस्त्वया ।।
महाभारत आदि पर्व अध्याय ७३, पद्य १५—१७।

किन्तु ज्यों ज्यों प्रेम परिपक्व होता है त्यों त्यों पासा पलटता जाता है तथा प्रेमी प्रेम भाजन का ध्यान करते-करते अपने आपको उसमे विलीन कर देता है और कहता है—

तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हू ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँ ।।

इस अवस्था मे पहुँच कर वासना का लोहा आत्मसमर्पण-रूपी पारस के स्पर्श से प्रेम-रूपी खरा सोना बन जाता है। जब 'अहं' ही न रहा तब अभिमान का तो प्रश्न ही नही उठता । क्योकि

जब मैं था तब हरि नही, जब हरि तब मैं नाहि।
प्रेम गली अति साँकरी तामें दो न समाहिं ।।

ऐसे प्रेम के मार्ग पर चलना खाँड की धार पर चलने के समान है क्योकि—

सीस उतारे, भुइ धरे, तापर राखे पाँव ।
दास कबीरा यों कहे ऐस होय तो आव ।।

प्रेम के देवता का मन्दिर उस टापू मे है जिसके चारो ओर आँसुओ का खारा समुद्र लहराया करता है और जिसमे सदा आहो का तूफान उठता रहता है। तभी तो—

हँस हँस कन न पाइया, जिन पाया तिन रोय ।
हाँसी खेले पिय मिले, कौन दुहागिन होय ।।

प्रिय को रोकर प्राप्त किया जाता है हँस खेल कर नहीं

पार्वती ने भी आँसुओ के इस समुद्र को पार करके ही शिवजी को प्राप्त किया था तभी तो उसकी सखी ने ब्रह्मचारी को कहा था कि प्रेम-मग्न हो, महादेव जी के गुण गीत गाते-गाते, जब इनका गला रुँध जाता था, तो साथ गाने वाली किन्नर राजकुमारिया भी इन के दुःख से दुखी हो, रोने लगती[1] थी। इन्हे यहा आकर तप करते हुए इतने दिन हो गए है कि इनके लगाए जिन वृक्षो ने शुरू से ही साक्षी बन इनके कठोर तप को देखा है वे तो फलने लगे किन्तु प्रिय-मिलन के इनके मनोरथ मे अभी तक अकुर भी जमते नही दीखते[2]। इन्हे इस अवस्था मे देख कर, हमारी आँखे

१. उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः सवाष्पकण्ठस्खलितैः पदैरियत् ।
अनेकशः किन्नरराजकन्यका वनान्तसंगीतसखीररोदयम् ।

२. द्रुमेषु सख्या कृतजन्मसु स्वयं फलतपः साक्षिषु दृष्टमेष्वपि ।
न तु प्ररोहाभिमुखोऽपि दृश्यते मनोरथोऽस्याः शशिमौलिसंश्रयः ।।

भी रह रह कर, डबडबा आती हैं पर सूखा पड़ने से झुलस रही जुती भूमि पर प्रथम वृष्टि की तरह, इन पर इनके प्रेम भाजन के कृपाकण कब बरसेंगे यह पता नहीं ? (कुमार सर्ग ५ श्लोक ५६ तथा ६०, ६१)

पार्वती ने प्रेम में कर्त्तव्य की उपेक्षा नहीं की।

उधर शकुन्तला को फुलवारी में घूमते हुए और हँसते खेलते ही राजा का जो प्रेम मिल गया था, और जिसके प्रभाव से अभिभूत हो वह अपने कर्त्तव्य कर्मों को भी भूल दुर्वासा[2] ऋषि के शाप का पात्र बन गई थी, वह उसी प्रकार जाता भी रहा और उसके बदले मे मिले कलक[3] तथा घोर तिरस्कार। किन्तु पार्वती ने प्रेम विभोर होकर भी कभी धर्म की—अपने कर्त्तव्य कर्मों की उपेक्षा नही की। कवि ने उन्हे, अतिथियों[4] की सेवा करने वाली तथा शकुन्तला को अतिथिपरिभाविनी[5] लिखा

---

१. न वेद्मि स प्रार्थितदुर्लभः कदा सखीभिरस्रोत्तरमीक्षितामिमाम् ।
तपः कृशामभ्युपपत्स्यते सखी वृषेव सीता तदवग्रहक्षताम् ॥

कुमार० सर्ग ५ के श्लोक ६१

२. दुर्वासा—अरी ओ, अतिथि का अनादर करने वाली,
तू होकर एकाग्र, सोचती जिसे निरन्तर,
नही रही है जान उपस्थित मुझे यहाँ पर,
तुझे जायगा भूल, प्रबोधन होगा निष्फल,
जैसे बीती बात भूल जाता है पागल ॥

अ० शा० अक ३ पद्य १

३ राजा (कान मूँदकर)
शिव ! शिव ! भगवान ऐसे काम से बचाए,
क्यों इस भाँति कलकित करती हो, अपने कुल का शुभनाम,
और हमे भी पतित बनाकर किया चाहती हो बदनाम,
जैसे-कूल पातिनी सरिता कलुषित करती निर्मल नीर,
और गिरा देती है तरु को, खड़ा हुआ जो उसके तीर ॥

अभि० शा० अंक ५ श्लोक २१

४. अतिथियो का सत्कार करने वाली पार्वती ने बड़े आदर के साथ उसकी अगवानी की।

कुमार० सर्ग० ५ श्लोक ३१

५. इसी पृष्ठ पर पहला फुटनोट।

है—इसमें उसका विशेष अभिप्राय प्रतीत होता है । शकुन्तला, उर्वशी[1] तथा (मेघदूत के) यक्ष[2] के प्रेम मे जो कर्त्तव्य विमुखता या लोक धर्म की अवहेलना देखी जाती है वह पार्वती की प्रेम साधना में नही। तभी शिव जी ने उसे देखकर कहा था "हे प्रेममयी, मुझे तो धर्म भी आज त्रिवर्ग में से इसलिए विशेष प्रिय लग[3] रहा है क्योंकि तुमने अर्थ तथा काम को छोड़ कर उसे ही अपना लिया है।' ऐसे धर्म-युक्त प्रेम का ही तो लोक अभिनन्दन करता है तथा देवता और ऋषि भी उसमें शाप आदि द्वारा बाधा न डाल कर उलट सहायक ही बनते हैं ।

अनुराग का प्रारम्भ वासना से होता है और उसको पूर्णता प्रेम में । वह निष्कारण होता है

प्रम, प्रारम्भ मे प्राय इद्रियजन्य अर्थात् वासनात्मक हुआ करता है, क्योकि उसका आधार प्रेमभाजन के केवल बाह्य रूप रग, बोल चाल, बाँकी-चितवन या मीठी मुस्कान आदि ही हुआ करते है। इसीलिए भवभूति ने उसे अहेतुक[4] कहा है और लिखा है कि जो प्रेम बिना ही कारण उत्पन्न हो जाता है उसे कोई कैसे हटा सकता है क्योकि वह तो दो हृदयो को भीतर ही भीतर सी देता है ? प्रेम प्रेमभाजन के गुणो या अनुकूल कार्यों पर नही प्रत्युत प्रेमी के हृदय पर निर्भर होता है। प्रेम भाजन को देख

१. (क) भरत मुनि उर्वशी से 'तूने मेरे उपदेश को अवहेलना की अतः तुझे दिव्यलोक से गिरना पड़ेगा।'

विक्रमोर्वशीय अक ३, में विष्कम्भक।

(ख) चित्रलेखा—'तब वह (उर्वशी) पति के मनाने की परवाह न करती हुई, गुरुजी के शाप के कारण हतबुद्धि हो, स्कन्द देवता की बनाई मर्यादा का उल्लघन कर, उनके उन तपोवन में चली गई जहाँ स्त्रियो का जाना निषिद्ध था, और वहाँ जाते ही वह लता बन गई।'

विक्रमो० अंक ४ का प्रवेशक।

२. एक यक्ष अपनी पत्नी के प्रेम मे ऐसा अन्धा हो गया कि उसे अपने कर्त्तव्यों का भी ध्यान न रहा। इस पर यक्षराज कुबेर ने रुष्ट होकर उसे एक वर्ष तक अपनी पत्नी से अलग, परदेश में रहने का शाप दे दिया।

मेघदूत पद्य १

३. अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनि ।
त्वया मनोनिर्विषयार्थकामया यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते ।।

कुमार० सर्ग० ५ पद्य ३८

कर वह तो प्रेमी के अपने हृदय में से स्वयं ही ऐसे प्रकट हो जाता है जैसे सूर्य का उदय होने पर कमल खिल उठता है या चन्द्रमा को देखकर चन्द्रकान्त[1] मणि द्रवित होकर जल टपकाने लगती है। यह भी संभव है कि प्रेम भाजन प्रेमी के प्रेम का कुछ भी प्रतिदान न करे या उलटे उसका तिरस्कार[2] ही कर दे और तो भी प्रेमी का प्रेम शिथिल न पड़े।। भवभूति[3] ने प्रेमभाजन को बैंक में, या भूमि में दबाकर धरे उस धन के समान कहा है जो किसी उपयोग में न आता हुआ भी आनन्द का कारण बनता है। कभी कभी यह प्रेम आँख में आँख मिलते पर प्रथम दर्शन में ही उत्पन्न हो जाता है और अनेक अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में से निकलता हुआ चरम उत्कर्ष तक पहुँच जाता है किन्तु कभी आँखों से ओझल होते ही वह काफूर भी हो जाता है। इस विविधता का कारण प्रेमी का हृदय ही है। यदि उसके स्वभाव में स्थिरता है तब तो किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति उत्पन्न हुआ उसका आकर्षण लोभ या वासना के निम्न स्तर से उठ कर स्नेह और प्रेम के उस दर्जे तक पहुँच जाता है जिसका वर्णन भवभूति ने श्री राम के मुख में इस प्रकार करवाया है—

"यह हमारी एकान्त कामना है कि हमारा तथा सीता देवी का यह दाम्पत्य सम्बन्ध अविच्छिन्न चलता रहे जो सुख तथा दुख में बदलता नहीं, जो जीवन के सब उतार चढ़ावों में समान बना रहता है, जिसकी छाया में पहुँचकर

---

४. अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया।
स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति॥
उत्तर० रा० च० अंक ५ श्लोक १७

१ व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुर्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः॥
उत्तर राम० अंक ६ श्लोक १२

२. (क) कुर्वन्नपि व्यलीकानि यः प्रियः प्रिय एव सः।
अनेकदोषदुष्टोऽपि कायः कस्य न वल्लभः॥
(ख) So true a fool is love, that in your will,
Though you do any thing, he thinks no ill.
शेक्सपीयर, सो० ट्रे० पृ० ७

३. न किंचिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः॥
उत्तर रामचरित० अंक ६ श्लोक ५

व्यथित हृदय को विश्राम मिलता है, बुढापे में वाह्य सौन्दर्य के नष्ट हो जाने पर भी जिससे जीवन-रस मे कमी नही आती, और जिसका आधार वह प्रेमसार है जो बहुत दिनो साथ रहने के कारण, हृदय के सब पर्दों के हट जाने से परिपक्वता को प्राप्त हो जाया करता[1] है।"

श्री केरियू महोदय ने अपनी 'दि ट्रू ब्यूटी' नामक कविता मे कहा है कि 'जो व्यक्ति गुलाबी गालो से प्रेम करता है या मूगे जैसे लाल लाल होठो पर फ़िदा हो जाता है, जिसे अपने प्रेम की आग को सुलगती रखने के लिए तारों जैसी आँख के सौन्दर्य-रूपी ईंधन की जरूरत पडती है, उसके प्रेम की ज्वाला तो तभी बुझ जाती है जब बुढ़ापा इनके सौन्दर्य को नष्ट कर देता है। किन्तु कोमल और दृढ मन, सुन्दर विचार और भद्र अभिलाषाएँ तथा दोनों तरफ से होने वाले प्रेम से आबद्ध हृदय जिस प्रेम को उत्पन्न करते है वह कभी नही मरता। जहा ये नही उन सुन्दर गालो, होठो या आँखो से मुझे तो नफरत[2] है।' ऐसा प्रेम विघ्न बाधाओ से रुकता नही, प्रत्युत और तीव्र हो जाता है। कालिदास ने विक्रमोर्वशीय नाटक में लिखा है कि[3] 'जैसे पहाड़ की ऊँची नीची चट्टानो के बीच

सच्चे प्रेम पर केरयू का कथन

कालिदास

१. अद्वैत सुखदुखयोरनुगत सर्वास्ववस्थासु यत्
विश्रामो हृदयस्य यत्र, जरसायस्मिन्न हार्यो रस
कालेनाऽऽवरणात्ययात्परिणते यत् प्रेमसारे स्थित
भद्र तस्य सुमानुषस्य कथमप्येक हि तत्प्राथ्यते ॥
उत्तर राम० प्रथम अंक २ श्लोक ३९

2. He that loves a rosy cheek
Or a coral lip admires,
Or From star like eyes doth seek
Fuel to maintain his fires;
As old time makes these decay
So his flames must fade away
But a smooth and stead fast mind
Gentle thoughts and calm desires,
Hearts with equal love combined,
Kindle never dying fires :
Where these are not, I despise
Lovely cheeks or lips or eyes. G.T. Page 75

३. नद्याइव प्रवाहो विषमशिला संकटस्खलितवेगः।
विघ्नितसमागमसुखो मनसि वशयः शतगुणो भवति ॥
विक्रमो० अंक ३ श्लोक ८

में आ पड़ने से नदी का वेग और भी बढ़ जाता है वैसे ही मिलन के मार्ग में आई बाधाएँ प्रेम नदी के प्रवाह[1] को अधिक प्रबल बना देती है।' अँग्रेजी कवि शेक्सपीयर ने भी लिखा है 'मैं तो यह स्वीकार नहीं करता कि कोई भी बाधा सच्चे प्रेमी हृदयों के मिलने को रोक सकती है। वह प्रेम ही क्या जो अवसर देख कर बदल जाए या विरोध के सामने सिर झुका ले। प्रेम तो वह स्थिर लक्ष्य है जो बड़े तूफानों में भी ओझल नहीं होता। समुद्र मे जा रही नौकाओं के लिए वह ऐसा ध्रुव तारा है जिस की ऊँचाई भले ही नप जाए, पर उसका मूल्यांकन संभव नहीं। समय प्रेम को ठग नहीं सकता, यद्यपि गुलाबी गालों और लाल होठों का सौन्दर्य उसकी लपेट में आकर नष्ट हो जाता है। घण्टे, सप्ताह आदि समय की छोटी इकाइयाँ प्रेम को बदल नहीं सकती, वह तो प्रलय पर्यन्त स्थिर रहने वाला है।

सच्चे प्रेम के विषय शेक्सपीयर के भाव

पर, जिन प्रेमियों के स्वभाव में इस प्रकार की स्थिरता नहीं होती वे सदा ही रंग बदला करते है। ऐसी ही एक प्रेमिका का मनोरंजक चित्र किसी अँग्रेजी कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों मे चित्रित किया है —
"जब[2] सूर्य अपनी उष्ण किरणों से पर्वतों तथा घाटियों में फलों को दग्ध कर रहा था तब फिलन नामक चरवाहा

चंचल अस्थिर प्रेम प्रेम नहीं, केवल क्षणिक वासना है

---

1. Let me not to the marriage of true minds
   Admit impediments Love is not Love
   Which alters when it alteration finds,
   Or bends with the remover to remove :
   O no ! it is an ever fixed mark
   That looks on tempests, and is never shaken;
   It is the star to every wandering bark,
   Whose worth's unknown although his height be taken.
   Love's not times fool, though rosy lips and cheeks
   Within his bending sickle's compass come;
   Love alters not with his brief hours and weeks
   But bears it out ev'n to the edge of doom :
   If this be error, and upon me proved
   I never writ not man ever loved. G.T. Page 15

2. While that the sun with his beams hot
   Scorched the fruits in vale and mountain,

(प्रेमी), जिसे लोग बहुत दिनों से भुला चुके है, एक हरे बाँझ (ओक) वृक्ष के नीचे, निर्मल, स्रोत के किनारे बैठकर, अपनी बाँसुरी पर यह राग निकाल रहा था—

'जा जा जा विश्वास घातिनी कुटिल प्रेमिका अरी चपल,
देख नये प्रेमी को तेरा जाता है मन मचल मचल । जा जा जा · · ·
जब तक मै था तेरे आगे, मै ही था तेरा प्यारा,
मै था तेरा दिलोजान, मै तेरी, आँखो का तारा,
मेरे लिए तडपती थी तू, कितनी आहे भरती थी ?
जलती मेरी प्रेम ज्वाल मे, मुझ पर ही बस मरती थी,
पर वह तेरा प्रेम तीन दिन ही मुझ पर केवल बरसा,
सूख गया फिर तीन दिनो मे, प्यासा ही मुझ को तरसा ।।
जा जा जा · · ·

Philon the shepherd, late forgot,
Sitting beside a crystal fountain,
In shadow of a green oak tree
Upon his pipe this song played he .
Adieu Love, adieu Love, untrue Love ·
Untrue Love, untrue Love, Adieu Love ;
Your mind is light, soon lost for new Love.
So long as I was in your sight
I was your heart your soul and treasure :
And ever more you sobb'd and sigh'd
Burning in flames beyond all measure :
Three days endured your love to me,
And it was lost in other three ! Adieu Love, Adieu Love ..
Another shephered you did see
To whom your heart was soon enchained
Full soon your love was leapt from me
Full soon my place he had obtained.
Soon came a third, your love to win
And we were out and he was in.
Adieu Love, Adieu Love............
Sure you have made me passing glad,
That you your mind so soon removed,
Before that I the leisure had
To choose you for my best beloved :
For all your love was past and done
Two days before it was begun :
Adieu Love, adieu Love......
Golden Treasury Page 25

इन्ही दिनो एक नया चहेता तेरी नजरो मे आया,
फिसल गया दिल तेरा उस पर, वह ही था तुझको भाया,
मुझे निकाल दिया तब तूने दिल से, बाहर खड़ा किया,
पर तब ही आ एक तीसरे ने दिल तेरा चुरा लिया
हम दोनो रह गए देखते हमने कड़वा घूंट पिया। जा जा जा · ·

इस प्रकार के चचल प्रेम तथा एक कुलटा की भावना मे क्या अन्तर है जो किसी से कह रही है कि जब मे कुवारी थी तब भी अकेली नही सोई, और कोई भी ऐसा पुरुष नही जिसे मेने अपना प्रेमी न समझा हो। इस तत्परता से अपने कुल की मर्यादा का पालन करने के कारण, जगत का उपकार करने वाले देवता[1] अवश्य ही मुझ पर कृपा करेगे।

मालविकाग्निमित्र में प्रेम

सभव है कि कालिदास ने जब मालविकाग्निमित्र नाटक की रचना की थी तब तक उसने अपने जीवन मे उस गभीर तथा स्थायी प्रेम के रस का साक्षात् अनुभव न किया था जिसका चित्रण कुमारसभव तथा शाकुन्तल मे हुआ है। इसीलिए उसका नायक वह शठ[2] है जो चुपके चुपके किसी स्त्री के प्रेम मे फस कर अपनी पत्नियो की उपेक्षा करने लगता है और भेद खुलजाने पर भी वह इरावती को कहता है कि तुमने शठ कह कर जो मेरा तिरस्कार किया है वह तो कोई नई बात[3] नही, क्योकि मे तो तुम्हारा जाना बूझा ही हू। जब वह नाराज होकर अपनी करधनी से राजा को पीटना चाहती है तो वह उसका हाथ पकड लेता है और उसे मनाने लगता है। पर जब वह वहा से रूठी ही चल देती है तब राजा अपने मित्र विदूषक से कहता है कि यह

---

१. मया कुमार्याऽपि न सुप्तमेकया न जारमुत्सृज्य पुमान् विलोकित.।
अनेन गोत्रस्थितिपालनेन मे सदा प्रसन्नाऽस्तु भवोपकारिणी॥

२. शठ नायक का लक्षण· · ·शठोऽयमेकत्र बद्धभावो यः।
दर्शितबहिरनुरागो विप्रियमन्यत्रगूढ माचरति॥
सा० द० परि० ३ श्लोक ६७

३. शठ इति मयि तावदस्तु ते परिचयवत्यवधीरणा प्रिये।
चरणपतितया न चण्डिता विसृजसि मेखलयापि याचिता॥
माल० मि० अक ३ पद्य २०

भी अच्छा ही हुआ क्योकि कुछ देर के लिए उससे पीछा तो छूटा'[1]। इस नाटक मे प्रेम के उसी रूप का वर्णन हुआ है जो तात्कालिक समाज मे या राजाओ के अन्त:पुरो मे प्राय: चलता था। इसमे नायक को यथार्थवाद से उठा कर आदर्शवाद की ओर ले चलने का प्रयत्न कवि ने नही किया। रानी के व्यवहार मे उस आत्म-त्याग की कुछ झलक अवश्य पाई जाती है जो पति की प्रसन्नता के लिए, भारतीय नारियां सदा से करती आ रही है।

विक्रमोर्वशीय में प्रेम विक्रमोर्वशीय नाटक की नायिका उर्वशी एक अप्सरा है। उसकी उद्दाम वासनाएँ सयम की सीमाओं को स्वीकार नही करती। पुरुरवा के साथ प्रथम परिचय के कुछ क्षणों मे ही उसका व्यवहार शालीनता को लाँघ जाता है। इन्द्र सभा मे खेले जा रहे नाटक मे अपने प्रेमोन्माद के कारण वह प्रमाद कर बैठती है और भरतमुनि के शाप से मर्त्यलोक मे उतरती है। थोड़े से ही परिचय के बाद वह राजा के साथ आँख मिचौनी खेलने की धृष्टता करती है जो कि किसी नई कुल वधू के लिए सभव नही। वह पति-समागम सुख के लिए पुत्र का त्याग कर देती है जैसा कि मेनका ने अपनी पुत्री का कर दिया था। इस नाटक का नायक पुरुरवा वीर अवश्य है। वह भी असुरो का सहार करता है और राज काज को मन्त्रियो पर छोड चल देता[2] है किन्तु दुष्यन्त की तरह दुर्जय दानव गणो से युद्ध करने के लिए नही पर स्वर्ग के वनो मे उर्वशी के साथ सुहागराते मनाने के लिए। वहा भी उर्वशी स्कन्द[3] के शाप का पात्र बन कर जड हो जाती है। और जब उस शाप से उसकी मुक्ति होती है तो वह राजा के साथ पुन: मर्त्य भूमि पर आ जाती है।

---

१. मन्ये प्रियाहृतमनास्तस्याः प्रणिपातलङ्घनं सेवाम्।
एवहि प्रणयवती सा शक्यमुपेक्षितु कुपिता॥
माल० मि० अंक ३ श्लोक २३

२. चित्रलेखा—राजा पुरुरवा ने राजकाज सचिवों पर छोड दिया है और उर्वशी उसे सुहागरात के लिए गन्धमादन पर्वत पर ले गई है ..... ।

३. वहाँ पर वह पति के मनाने की परवाह न करती हुई रूठकर कुमार वन में चली गई जहाँ स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध था और जाते ही उपवन की लता के रूप में बदल गई। विक्रमा० अंक ४ प्रवेशक।

अभिज्ञान शाकुन्तल में प्रेम

जान पड़ता है कि राजा दुष्यन्त भी अपने जीवन के पूर्व भाग मे अग्निमित्र या पुरुरवा से कुछ भिन्न न था किन्तु घटना चक्र ने तृप्ति से पूर्व ही शकुन्तला को उससे पृथक् कर दिया जिससे रघुवंश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण की रानिया डरा करती थी। वहा लिखा है कि उसका मन नित्य नई नई भोग-सामग्री के लिए लालायित रहता था जिससे उसका जी भर जाता, उसे वह छोड़ देता था। इस लिए, स्त्रिया उससे इतना ही समागम करती थी जितने से उसका मन उनसे उब न जाए'। (रघुवश सर्ग १९ पद्य १६)' शकुन्तला के विरह ने ही पश्चात्ताप की आग मे जला कर राजा के प्रेम को परिष्कृत कर दिया। परिष्कार की इस प्रक्रिया को दिखलाना ही कवि का वह लक्ष्य प्रतीत होता है जिसके लिए उसने अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक की रचना की थी।

महाभारत की शकुन्तला और कालिदास

इस नाटक के प्रारंभिक अङ्को मे शकुन्तला के प्रति राजा का प्रेम वह वासना-मात्र था जिस पर छठे अक के शुरू मे रानी हंस-पदिका ने, एक गीत गाकर तीखा व्यग्य किया था। उस वासना का कारण, युवक युवतियो की, एक दूसरे के प्रति वह रति या[2] स्वाभाविक आकर्षण हुआ करता है जो एक आयु में सभी युवक युवतियो के हृदयों को आन्दोलित कर दिया करता है। शकुन्तला भी उस चंचलता की शिकार हो गई थी, किन्तु उसके सभल न सकने का वास्तविक कारण वह स्वार्थ भावना थी जिसका पता महाभारत[3] के उस प्रसग से चलता है जिसमे वह अपने शारीरिक सपर्क के लिए राजा के सामने यह शर्त रखती है कि उसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होना चाहिए। कालिदास ने भी नाटक के छठे अक मे शकुन्तला[4] के निम्नलिखित वाक्य से इसी ओर सकेत किया

---

१. तस्य सावरणदृष्टसंधयः, काम्यवस्तुषु नवेषु संगिनः।
वल्लभाभिरुपसृत्य चक्रिरे सामिभुक्तविषया. समागमाः।
रघु० सर्ग० १९ पद्य १९

२. रतिर्मनोनुकूलेऽर्थे मनस. प्रवणायितम्।
साहित्य दर्पण परिच्छेद ३, कारिका १७६

३. महाभारत आदिपर्व अध्याय ७३, पद्य १५-१७

४. शकुन्तला--आर्यस्य परिणय एव सन्देह कुत. इदानी मे दूराधिरोहिण्याशा ?
अभि० शा० अंक ५ पद्य १९ के आगे

है, 'जब आर्यपुत्र को विवाह मे ही सन्देह है तो मेरी दूसरी बडी बड़ी आशाओं पर तो बस पानी ही फिर गया। कालिदास सौन्दर्योपासक कवि था, उसे महाभारत की शकुन्तला की यह सौदेबाज़ी अच्छी न लगी। उसने उसे बिल्कुल हटाया तो नही किन्तु अपने कौशल से ऐसा सँवार दिया कि वह अब सहृदय की आँखों मे खटकती नही। कवि की लेखनी ने महाभारत की लोह मयी या रजत-मयी शकुन्तला को हिरण्मयी बना दिया या कहिए कि केवल प्रेममयी बना दिया। छैनी की नोक से छिले बिना पत्थर और आग मे जले बिना सोना सुन्दर मूर्ति नही बन सकता।

प्रेम के परिष्कार के साधन पश्चाताप तथा विरह

शकुन्तला को प्रेम की मूर्ति के रूप मे ढालने के लिए कवि को पश्चात्ताप और विरह का सहारा लेना पड़ा। उसने लिखा है कि कुछ लोगो का कथन है कि विरह[1] स्नेह को नष्ट कर देता है, पर सच पूछो तो मनचाही वस्तु न मिलने पर उसकी चाह और भी प्रबल हो उठती है और उससे वह स्नेह निखर कर प्रेम की राशि बन जाता है। प्रेम के पारखी कहते है कि विरह के बिना प्रेम पुष्ट[2] ही नही होता। प्रेमी विरह में भी एक प्रकार का आनन्द अनुभव किया करते है और कहते[3] हैं कि संयोग तथा विरह के विकल्प मे हमे तो विरह ही अधिक भाता है। क्योकि सयोग के समय एक ही प्यारी के समागम का सुख मिलता है पर विरह मे ससार ही प्रियामय हो जाता है।

एक अंग्रेजी[4] कवि ने भी विरह की महिमा का बखान इस प्रकार किया है

---

१. स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्तेह्यभोगा—
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति। उत्तर मेघ, पद्य १०९

२. न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते।
सा० द० परिच्छेद ३, कारिका

३. सगमविरहविकल्पे वरमिह विरहो न सगमस्तस्याः।
संगे सैव तथैका, विरहे जगदेव तन्मय मन्ये॥

4. Absence, hear thou my protestation
Against they strength,
Do what thou canst for alteration :
For hearts of truest metal
Absence doth join and time doth settle.
Who loves a mistress of such quality,

विरह पर एक अंग्रेज कवि

कि 'हे विरह, तू अपनी शक्ति, मिलन में देर तथा देश की दूरी के प्रति मेरे इस प्रतिवाद को कान खोल कर सुन ले। मेरे प्रेम को शिथिल करने के लिए तू जो चाहे, कर देख, क्योंकि जो हृदय खरे तत्त्व के बने होते है उन्हे तो विरह मिला देता है और समय जमा देता है। यदि कोई ऐसी प्रेमिका से प्रेम करता है तो उसे शीघ्र ही यह अनुभव हो जाता है कि प्रेम का आधार जहा स्थित है वहा दूरी, देर तथा मृत्यु की भी पहुँच नही। जो हृदय रग बदलना नही जानते, उनका प्रेम-भाजन विरह के क्षणो मे भी उनसे अलग नही होता। मुझे विरह का एक लाभ यह भी प्रतीत होता है कि उस समय, मै उसे अपने हृदय के एक ऐसे बद कोने मे पकड पाता हू जहा और कोई उसे नही देख सकता। वहा मै उसे अपने बाहु पाश मे जकड लेता हू और उसके होंठ को चूम लेता हू। इस प्रकार विरह मे भी मुझे उसके मिलन तथा चिन्तन दोनो का आनन्द एक साथ प्राप्त हो जाता है।"

महाकवि टैनिसन[1] ने भी अपनी एक प्रसिद्ध कविता मे लिखा है कि बिगुल प्रतिध्वनि पहाड़ी घाटियों की दूरी में मन्द मन्दतर होकर अन्त मे समाप्त हो जाती है किन्तु दो हृदय की घाटियो मे उठी प्रेम की ध्वनि प्रतिध्वनि तो उत्तरोत्तर बढती ही जाती है।

He soon, hath found
Affection's ground
Beyond time, place and all mortality.
To hearts that can not vary
Absence is Present Time doth tarry.
By absence this good means I gain,
That I can catch her,
Where node can watch her,
In some close corner of my brain :
There I embrace and kiss her.
And so I both enjoy and miss her.

Golden Treasury Page 7

1 "The splendour falls . ....."
.. ..
.. ..
I love, they die in yon rich sky,
They faint on hill, or field or river :
Our echoes roll from soul to soul,
And grow for ever and for ever,
Blow, bugle, blow, set the will echoes flying.
And answer, echoes, answer dying dying dying.

विरह की प्रशंसा करते हुए कबीर[१] कहते है कि विरह को विरह न कहो, वह तो महाराज है। जिस हृदय मे कभी विरह की पीर नही उठी उसे श्मशान समझो। विरह ही वह सजीवनी है जिसने संसार के प्रेमी तथा प्रेमिकाओं को अमर कर दिया है। यदि कण्व जी द्वारा भेजी शकुन्तला को दुष्यन्त ने तुरन्त स्वीकार कर लिया होता तो आज उसका नाम भी कोई न जानता। किन्तु पाँचवे अक मे उसके अनखड उग्र रूप को देखकर कुछ आश्चर्य होता है। प्रेम तथा स्वार्थ को तनिक सी ठेस पहुँचते ही जिसके मुख से राजा दुष्यन्त के लिए 'अनार्य, औरों के हृदय को भी तुम अपने सा ही समझते हो। घास फूस से ढके कूवे जैसे, और धर्म का ढोग रचने वाले तुम सरीखे बगूले भगत से बढ कर नीच कौन हो सकता है।' ये शब्द निकल सकते है और जो उसे आर्यपुत्र (पति) कहना भी पसन्द नहीं करती और अंत में 'इस धूर्त्त ने तो मुझे ठगा ही था, अब आप (कण्व के शिष्य शारद्वत तथा शार्ङ्गरव) भी मुझे छोड चले जा रहे है।' कह कर वहाँ से चल देती है उसे सच्ची प्रेमिका नही कहा जा सकता।

किन्तु सातवे अक में वह बिल्कुल बदले हुए रूप मे दिखाई पड़ती है। जब दुष्यन्त उसके पैरो पर गिर कर क्षमा माँगता है तो वह उसे उठाकर कहती है, "आपने मेरा कोई अपराध नही किया। 'उठिए! अवश्य ही मेरे पूर्व जन्म का कोई पाप उन दिनो फल रहा था जिसने ऐसे दयालु आर्यपुत्र को भी वैसा निठुर बना दिया था।'

कालिदास के हाथों दुष्यन्त का उद्धार

कवि ने शकुन्तला का यह कायाकल्प तो दिखलाया ही, किन्तु सुन्दरियो के शिकारी उस दुष्यन्त का भी उद्धार कर दिया, जिसकी न जाने कितनी उपेक्षिता रानिया उसके विलास-भवनो मे आहे भरती उसे शाप देती होंगी। उसने एक दिन केवल वासना के वशीभूत होकर ही भोली-भाली तापस-कन्या को बहका कर उसके कौमार्य का हरण कर लिया था और फिर अन्य रानियों के तानों के डर से उसे अस्वीकार कर दिया था। उसने शकुन्तला को दुश्चारिणी तथा धोखेबाज़ तक कहने में सकोच नही किया था और यह भी न सोचा था कि परिपूर्ण गर्भ वाली अपनी पत्नी को ऐसी असहाय दशा मे निकाल कर वह उसे कैसे संकट मे धकेल रहा है। कवि ने सोचा कि

---

१. विरहा विरहा ना कहो, विरहा है सुलतान
जामें विरहा ना रहे सो हिय जान मसान॥

ऐसे स्त्री पुरुषो की आत्मा की शुद्धि मर्त्यलोक के कलुषित वातावरण में संभव नही अत. वह उन दोनों को ऊपर उठा कर मारीच ऋषि के उस आश्रम मे पहुँचा देता है जहाँ कुटिल राजनीति मे पले और स्वार्थ भावना से भरे राजा को यह देखकर आश्चर्य होता है कि यहाँ सब प्रलोभनो के बीच मे रहते हुए भी ऋषि निष्काम भाव से तप कर रहे है। वह कहता है '—

> 'पीकर केवल पवन, कल्प तरु-वन मे धारण करते प्राण,
> स्वर्ण सरोरुह केसर रजित जल मे करते पुण्य स्नान,
> सयम सुरवनिताओ के सँग, रत्नशिला पर धरते घ्यान,
> जिनके लिए अन्य तप करते, ये उनमे स्थित भी तपवान ।।
>
> अक ७ पद्य १२

इस सातवे अक मे रूप का लोभी राजा भी शकुन्तला के रूप से नही किन्तु उस साधना से प्रभावित होता है जिसमे वह लगी हुई है। और उसके मुख से पश्चात्ताप के ये शब्द निकल पडते है —

> इसने धारण नही किए है उजले साडी और दुकूल,
> कृश कपोल, बिन सँवरी वेणी एक रही पीछे को झूल,
> लगी हुई है तीव्र साधना मे वियोग व्रत के अनुकूल—
> मुझ निर्दय के लिए सती यह, गया जिसे मैं बिल्कुल भूल।।
>
> अंक ७, पद्य २१

राजा के इस हृदय परिवर्तन का प्रधान कारण भी वह विरह ही है जिसने उसे शकुन्तला से वंचित कर दिया था। यदि उसका मन शकुन्तला से भी वैसा ही ऊब जाता जैसा पिण्ड खजूर से पेट भर जाने पर खाने वाले का, तब तो विदूषक के कथनानुसार उसे फिर किसी नई इमली की आवश्यकता पडती। राजा निःसन्तान था, पर यह तो कोई नई बात न थी। फिर वह केवल शकुन्तला ही के लिए इतना व्याकुल क्यो हुआ, हसपदिका आदि के लिए नही ? क्योकि अन्त. पुर की ये कठपुतलियाँ तो उंगली के इशारे मात्र से ही उसे मिल सकती थी, पर शकुन्तला उसकी पहुँच से बाहर हो गई थी। उसके विरह ने ही सन्तान-हीनता को राजा के सामने तब तीव्र रूप मे उपस्थित कर दिया जब उसने एक धनी वणिक् के निःसन्तान मर जाने का समाचार सुना। और तब इन दोनों अभावो ने (शकुन्तला तथा सन्तान के अभाव) मिलकर उसके प्रेम को निर्मल कर दिया। ऊपर देख चुके है कि प्रेम की यह निर्मलता मारीच ऋषि के आश्रम मे ही पूर्णता को प्राप्त हुई थी। कविने

कुमार सभव के प्रथम सर्ग के अन्त मे शिवजी की साधना का वर्णन करते हुए भी इसी प्रकार का चित्र खीचा है, और लिखा है कि वहाँ पर वे शिव जो और साधको को उनके तपो का फल प्रदान किया करते है और स्वयं निष्काम है, न मालूम क्यो, अपनी अष्ट मूर्तियो मे से एक मूर्ति अग्नि का आधान कर, उसके सम्मुख बैठ कठोर तप करने[1] लगे।

मेघदूत में भी कवि ने यक्ष के वासनात्मक भौतिक अनुराग को विरह द्वारा शुद्ध करके, उसे फिर से दिव्य लोक में पहुँचा उसकी व्रतचारिणी पत्नी मे मिलन के योग्य बनाया है। मेघदूत तथा अभिज्ञान शाकुन्तल--दोनो मे ही नायक नायिका साधना द्वारा शुद्ध होकर और मर्त्य-भावना से ऊपर उठ कर स्वर्ग लोक के अधिकारी बन सके हैं। अन्त मे जर्मन महाकवि[2] गेटे के स्मरणीय प्रसिद्ध वाक्य के साथ हम इस प्रसग को समाप्त करते है :—

यदि तुम युवावस्था के फूल और प्रौढावस्था के फल तथा इसी प्रकार की अन्य सामग्री एक स्थान पर ही देखना चाहो जिनसे आत्मा प्रभावित होता है, तृप्त होता है और शान्ति प्राप्त करता है, यदि तुम स्वर्ग तथा मर्त्य लोक को एक ही जगह देखना चाहते हो तो मैं 'शकुन्तला' यह शब्द कह दूँगा और इस एक ही शब्द मे सब कुछ आ जाता है।

---

१. तत्राग्नि माधाय समित्समिद्धं स्वमेव मूर्त्यन्तर मष्ट मूर्ति.
स्वयं विधाता तपस. फलाना केनापि कामेन तपश्चचार ॥ कुमार० सर्ग १
पद्य ५७

2. Wouldst thou the young year's blossoms
And fruits of its decline,
And all by which the soul is charmed
Enraptured feasted and fed.
Would'st thou the earth and heaven itself
In one sole name combined
I name thee to Shakuntala !
And all atonce is said.

कालिदास और महाकाव्य

मानव मन की तीन स्वाभाविक प्रवृतियां– १. जिज्ञासा, २ आत्माभिव्यंजन तथा ३ सौन्दर्य प्रियता

मानव की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह बाह्य जगत् तथा दूसरे व्यक्तियो के विषय मे अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहता है। उसकी दूसरी प्रवृत्ति वह आत्माभिव्यजन है जो ज्ञानेन्द्रिय तथा बुद्धि द्वारा उपलब्ध अनुभूतियों को प्रकट करने के लिए उसे बाधित करती है और इससे उसे वैसा आराम तथा आनन्दमिलता है जैसा सतान के जन्म से माता को। ग्रीक विद्वान् अर्शमीदस को नहाते समय, ज्यो ही सोने के आपेक्षिक गुरुत्व के तत्त्व का ज्ञान हुआ, वह उसे प्रकट करने के लिए व्याकुल हो उठा और स्नानागार से नगा ही निकल पडा। महाकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस मे उस स्वात-सुख[1] का निर्देश किया है जो कवि को कविता करके प्राप्त होता है। मानवमन की तीसरी प्रवृत्ति वह सौन्दर्य प्रियता है जिससे प्रेरित होकर वह अपने शरीर, वस्त्र घर-बार, रहन-सहन तथा बोल-चाल—सब को सुन्दर बनाना चाहता है। वह अपनी भाषा को अलकारो से तथा उस द्वारा प्रतिपाद्य विषय अर्थात् अर्थ को भी अनेक अन्य उपायो से सवारता है। इतिहास, दर्शन, विज्ञान काव्य, नाटक आदि समस्त साहित्य मानव की इन तीन प्रवृत्तियो का ही विलास है। किन्तु साहित्य की जिन विधाओ मे यह सौन्दर्य प्रियता प्रधान हो जाती है वे ललित साहित्य के अन्तर्गत मानी जाती है। यह सौन्दर्य प्रियता ही कवि को ऐतिहासिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि से पृथक् करने वाली है। यद्यपि इन विषयो के ग्रन्थ भी रोचक तथा सुन्दर शैली मे लिखे जा सकते है तो भी उनमें प्रधानता आत्माभिव्यजन अथवा तथ्य निरूपण की ही होती है।

---

१. स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा—
भाषा निबन्ध मति मजुल मातनोति ॥ रामचरित मानस बालकाण्ड।

बाह्य घटनाओं तथा आन्तरिक उत्तेजनाओ का प्रभाव तो सभी पर पड़ता है किन्तु कवि[1] का हृदय औरो की अपेक्षा अधिक स्वच्छ तथा सवेदन शील होता है अत उस पर इनकी प्रतिक्रिया कुछ विलक्षण ही हुआ करती है। सूर्य की किरणें पत्थर तथा लकड़ी पर भी पडती है किन्तु इनसे रगो की वह इद्रधनुषी छटा नही छूटती। कितने ही व्यक्ति क्रौच आदि पक्षियो को तडप कर मरते देखते है, पर कविता का स्रोत किसी वाल्मीकि[2] के हृदय से ही फूटता है।

कवि हृदय

कवि का हृदय जब किसी महती घटना या प्रबल तथा उदात्त अन्त· प्रेरणा से उद्वेलित हो जाता है तो उसका वह उद्वेलन महाकाव्य के रूप मे प्रकट होता है। महाकाव्य में किसी महान् चरित्र का होना भी आवश्यक है। वह घटना मूलक होता हुआ भी वर्णन-प्रधान रहता है। सस्कृत साहित्य के आचार्यों के मतानुसार महाकाव्य[3] वह पद्यबद्ध विशाल रचना है जो सर्गो में विभक्त रहती है

महाकाव्य

१. यानेव शब्दान् वयमालपामो यानेव चार्थान्वयमुल्लिखाम।
तैरेव विन्यास विशेष भव्यै समोहयन्ते कवयो जगन्ति ॥

२ तामभ्य गच्छद्रुदितानुसारी कवि कुशेध्माहरणाय यात
निषाद विद्धाण्डज दर्शनोत्थ श्लोकत्व मापद्यत यस्य शोक।
रघु० सर्ग १४ का ७०।

३. सर्गबन्धो महाकव्य तत्रैको नायक सुर
सद्वश क्षत्रियोवापि धीरोदात्तगुणान्वित ॥
एक वश भवा भूपा कुलजा बहवोऽपिवा
शृङ्गार वीर शान्ताना मेकोङ्गीरस इष्यते ॥
एक वृत्तमयै पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकै.
नाति स्वल्पा नाति दीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ॥
सन्ध्यासूर्येन्दु रजनी प्रदोषध्वान्तवासरा
प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलर्तुवनसागरा·।
सभोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्ग पुराध्वरा ॥
रण प्रयाणोपयम मन्त्र पुत्रोदयादय।
वर्णनीया यथायोग साङ्गोपाङ्गा अमी इह ॥
सा० दर्पण ६ परि०—कारिका ३१५–३२४ तक

और ये सर्ग कम से कम ८ तथा प्रत्येक सर्ग मे २५, ३० या इससे कुछ अधिक पद्य होते है। कोई देवता या धीरोदात्तादिगुणो से युक्त सत्कुलोत्पन्न राजा इसका नायक होता है। एक ही वश के अनेक राजा भी इसमे नायक हो सकते है। इसमें शृगार, वीर या शान्त मे से कोई एक रस प्रधान तथा शेष गौण होने चाहिए।

गीतिकाव्य

पर जब किसी छोटी या सामान्य घटना अथवा तीव्र अनुभूति से उत्तेजित हुए कवि-हृदय का कोई रागात्मक तत्त्व विधायक-कल्पना की वीणा द्वारा मुखरित हो उठता है तब गीति-काव्य की सृष्टि होती है। यह गीति-काव्य भावना प्रधान होता है।

किन्तु जब कवि किसी घटना को अनुकरण अथवा अभिनय की सहायता से अधिक सजीव तथा प्रभावशाली रूप मे जगत् के समक्ष रखना चाहता है तो वह उसे रूपक के किसी भेद-नाटक, प्रकरण प्रहसन आदि का रूप देता है। यह क्रिया प्रधान होता है। इसमे वह साधारण घटनाओ को तो छोड ही देता है, किन्तु कथा-क्रम का निर्वाह करने के लिए जिन्हे छोडना सभव नही होता, वह उनका निर्देश मात्र कर देता है और उन्हे रगमच पर नही लाता। नाटक मे ५ से १० तक अक हो सकते है किन्तु वह बहुत बडा न होना चाहिए। उसका नायक कोई देवता या प्रसिद्ध राजा होता है। उसकी कथावस्तु का विकास मुख प्रतिमुख आदि ५ सन्धियो[1] द्वारा किया जाता है। कालिदास की बहुमुखी प्रतिभा ने इन सभी क्षेत्रो मे अपने अद्भुत कौशल का परिचय दिया है।

---

१. नाटक ख्यात वृत्त स्यात् पचसन्धिसमन्वितम्।

.. . .

पचादिका दशपरा स्तत्राङ्का परिकीर्त्तिता ॥
प्रख्यातवशो राजर्षिर्धीरोदात्त. प्रतापवान्
दिव्योऽथ दिव्याऽदिव्यो वा गुणवान्नायको मत ॥

सा० दर्पण षष्ठ परिच्छेद कारिका—७–९ तक

अर्थ प्रकृतय पच पचावस्था समन्विता·
यथा संख्येन जायन्ते मुखाद्या पच सन्धय ॥
अन्तरैकार्थ सम्बन्ध· सन्धिरेकान्वये सति ॥

दशरूपक प्रथम प्रकाश० कारिका २२–२३

कालिदास भारत का राष्ट्रीय कवि होता हुआ भी विश्व कवि है

कालिदास के ग्रन्थों में भारत के भौगोलिक चित्रों, प्राकृतिक दृश्यों, सामाजिक जीवन के विविध पहलुओ तथा जातीय भावनाओं का ऐसा सूक्ष्म तथा सजीव चित्रण हुआ है कि उन्हे विश्व के किसी भी कोने मे पढा जाए, भारत की झाकी अनायास ही आँखो के आगे आजाती है। उसने हिमालय विन्ध्याचल, मलय महेन्द्र, नर्मदा गोदावरी, सिन्धु सरस्वती, गगा यमुना, प्रात साय, सूर्य चन्द्रमा, षड्ऋतु, तपोवन, नगर, देव-मन्दिर राजदरबार, ऋषि राजा, शिक्षा दीक्षा, गुरुशिष्य, गोसेवा तपस्या स्वयवर, विवाह, पुनर्जन्म, सोलह सस्कार, वर्णाश्रमधर्म, धार्मिक विश्वास, दार्शनिक चिन्तन, राजनीति, युद्ध, दिग्विजय, यज्ञ, दान दक्षिणा, उत्सव, आमोद प्रमोद, नाटक, नृत्य, गीत, वादित्र, चित्रकला, पत्रलेखन, मृगया, मृत्यु, आदि किसी भी विषय को अछूता नही छोडा। किन्तु इस से यह न समझना चाहिए कि कवि का ससार भारत की सीमाओ मे ही सकुचित है। मानसिक क्षेत्र मे उसने जिस मानव के अनुराग विराग, करुणा क्रोध आशा निराशा, उत्साह अवसाद आदि का वर्णन किया है वह देश काल, तथा जाति के बन्धनो से उन्मुक्त विश्व का निवासी है।

कालिदास के साहित्य में मानवीय भावना

उसके अनेक पात्र यद्यपि देवदानव, यक्ष राक्षस, गन्धर्व अप्सरा आदि भी है और उनकी कुछ शक्तिया अतिमानव है तो भी उनके भीतर हृदय का स्पन्दन हमारे समान ही है। महादेव शकर भी नारी के प्रति आकृष्ट होते है और लोक-मर्यादा का पालन करते हुए पार्वती के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव करने के लिए ऋषियो को हिमालय के घर भेजते है। तपस्या मे विघ्न डालने वाले कामदेव पर वे क्रोध करते है और देवताओ की प्रार्थना से प्रसन्न होकर उसे क्षमा भी कर देते हैं। रघुवश मे शिव का कुम्भोदर नामक गण सिह बन कर ऋषि की गाय पर आक्रमण करता है, किन्तु पशु का देह धारण कर लेने पर भी उसका हृदय मानवीय ही रहता है। वह एक ओर कठोर कर्त्तव्य-परायण स्वामीभक्त सेवक है तो दूसरी ओर राजा की भावनाओ का प्रशसक तथा उसका हित-चिन्तक मित्र। प्रियवद नामक गन्धर्व एक ऋषि के शाप से हाथी बन गया था और अज द्वारा उसका शाप से उद्धार हुआ। इस उपकार का बदला चुकाना वह अपना कर्त्तव्य समझता है और इसके लिए अपना समोहनास्त्र प्रदान कर अज को सदा के लिए स्नेह सूत्र मे बाँध लेता है। प्रियंवद यद्यपि मानव नही तो भी उसके भीतर कृतज्ञता से भरा मानव हृदय

विद्यमान है। मेघदूत का यक्ष तो किसी भी बात मे अमानव नही प्रतीत होता।

काव्य नाटक आदि के मूलतत्त्व

किसी रचना को प्रारम्भ करते समय लेखक के हृदय मे ज्ञात या अज्ञात रूप मे कोई ऐसा विचार अवश्य रहता है जिसका प्रभाव वह पाठक के हृदय पर विशेषतया अकित कर देना चाहता है और वह विचार ही उस रचना का 'उद्देश्य' समझना चाहिए। उस उद्देश्य को मूर्त्तरूप देने के लिए लेखक जिस यथार्थ घटना अथवा कल्पित कथा की योजना करता है वह 'वस्तु' कहलाती है और जो व्यक्ति उससे सीधा सम्बन्ध रखते है वे उसके "पात्र' तथा उनकी बातचीत या सवाद 'कथोपकथन' कहलाते है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना स्वभाव होता है और वह स्वभाव उसकी बातचीत तथा कार्यकलापो मे प्रतिबिम्बित हुए बिना नही रह सकता। पात्र के इस पृथक् व्यक्तित्व का वर्णन 'चरित्रचित्रण' कहलाता है वह उस पात्र के अपने उद्गार, उसके कार्य-कलाप तथा उसके सम्बन्ध मे दूसरे पात्रो की बात-चीत के आधार पर होता है। इस व्यक्तित्त्व के बिना सब पात्र अवास्तविक तथा छायामात्र प्रतीत होते है। कथोपकथन या सवाद का महत्त्व नाटक आदि रूपको मे तो होता ही है किन्तु काव्य, आख्यायिका आदि मे भी उसकी उपेक्षा नही की जा सकती। प्रत्येक घटना किसी स्थान और समय मे ही होती है और इन दोनो का भी कुछ न कुछ प्रभाव उस पर अवश्य पडता है। अत लेखक आवश्यकतानुसार 'देश काल' का भी उल्लेख किया करते है। किन्तु इनसे भी प्रधान एक अन्य तत्त्व है जिसे 'रस' कहते है। रस के बिना कोईर चना ललित-साहित्य के अन्तर्गत नही गिनी जा सकती। काव्य नाटक आदि ज्ञान-वृद्धि के भी साधन हो सकते है किन्तु उनके अध्ययन का मुख्य उद्देश्य रस ही है। यह रस हमारे हृदय की वह विशेष दशा है जिसमें किसी कृति को पढने सुनने या किसी नाटक अथवा चलचित्र को देखते समय हमारे हृदय के भाव--प्रेम, शोक, क्रोध आदि या श्रद्धा आदि मनोवेग अपने स्वरूप को सुरक्षित रखते हुए भी हमारे लिए सुखमय हो जाते है। यह सारी सामग्री किसी भी साहित्यक रचना की आत्मा तथा उसका भाव पक्ष है। उपर्युक्त उद्देश्य, वस्तु, घटना, विचार तथा मनोवेग—ये सब इस भाव के अन्तर्गत आ जाते हैं, इस सामग्री को सुन्दर तथा प्रभावशाली बनाने के लिए लेखक जिन उपायो--शब्दशक्ति, गुण अलकार, रीति तथा छन्द आदि का उपयोग करता है वे उस रचना के शरीर अथवा कलापक्ष हैं। कालिदास ने इन्हे संक्षेप मे क्रमश अर्थ तथा शब्द कहा है और रघुवश के प्रारम्भ मे "अर्थ

तथा उसे प्रकट करने में समर्थ वाणी की सिद्धि के लिए, मैं जगत् के पिता तथा माता उन शिव पार्वती को प्रणाम करता हूँ जो उन (अर्थ तथा वाणी) की तरह ही सदा मिल कर रहते है।" कह कर इनके महत्त्व को प्रकट किया है। इन तत्त्वों को ध्यान मे रखकर यहा कालिदास के काव्यो के सम्बन्ध मे कुछ चर्चा की जाती है।

कुमार संभव महाकाव्य है

कालिदास का प्रथम महाकाव्य कुमार सभव है, इसमे ८ सर्ग है और इसके नायक नायिका शिव तथा पार्वती। इसमे पार्वती के पिता हिमालय का वर्णन चेतन जगम और जडस्थावर दोनो रूपो मे किया गया है। तारकासुर[1] का वध एक महती घटना थी जिसका निर्देश कवि ने इसके दूसरे सर्ग मे इस प्रकार किया है कि उससे शिव पार्वती के विवाह और उसके फल कुमार जन्म का महत्त्व भी बढ गया है। ग्रथ के नाम के आधार पर भी कुमार-जन्म ही इसका मुख्य विषय प्रतीत होता है किन्तु उससे पूर्व ही काव्य समाप्त हो जाता है। इसके कारण के विषय मे पहले (पृष्ठ सख्या ११९) विचार किया जा चुका है, यह रचना महाकाव्य है क्योकि इसका निर्माण कवि ने महाकाव्य की शैली पर किया है। किसी रचना के खण्डकाव्य या महाकाव्य होने का निर्णय उसके केवल छोटे या बडे आकार के आधार पर नही किया जा सकता, क्योकि दोनो की शैली मे मौलिक अन्तर रहता है। खण्डकाव्य की रचना जीवन के किसी एक ही लघु अश या घटना को लेकर की जाती है, जबकि

---

१ तस्मिन् विप्रकृता काले तारकेण दिवौकस ।
तुरासाह् पुरोधाय धाम स्वायभुवं ययुः ॥
तेषामाविरभूद् ब्रह्मा परिम्लान मुखश्रियाम् ।
सरसा सुप्तपद्माना प्रात दीधितिमानिव ॥
. ...
वाचस्पतिरुवाचेद प्राजलिर्जलजासनम् ।
भवल्लब्धवरोदीर्ण स्तारकाख्यो महासुर· ।
उपप्लवाय लोकानां धूमकेतुरिवोत्थित· ॥
तदिच्छामो विभो स्रष्टु सेनान्य तस्य शान्तये
....
गोप्तार सुरसैन्यानां यं पुरस्कृत्य गोत्रभृत् ।
प्रत्यानेष्यति शत्रुभ्योबन्दीमिव जयश्रियम् ॥ कुमार० सर्ग २ पद्य १–५२ तक

महाकाव्य का आधार कोई ऐसी महती घटना होती है जो अनेक अवान्तर अथवा आगिक घटनाओं द्वारा पूर्णता को प्राप्त होती है।

कुमार संभव की रचना में निगूढ़ उद्देश्य

जान पडता है कि इस महाकाव्य के निर्माण मे कवि का अन्तर्निहित उद्देश्य जनता के हृदय पर उस गृहस्थाश्रम की महिमा को अकित करना था जिसका गौरव बौद्धयुग मे भिक्षु वृत्ति की प्रधानता के कारण विलुप्त हो गया था और इसी लिए वीर क्षत्रियो के अभाव मे देश पर विदेशी शत्रुओं के आक्रमण का भय सदा बना रहता था। तभी तो कवि ने बृहस्पति के मुख से ब्रह्मा जी को कहलवाया था कि हे भगवन् उस असुर के सहार के लिए हमे योग्य सेनापति की आवश्यकता है जिसे अगुआ बनाकर हम विजय प्राप्त कर सके और इसके उत्तर मे उन्होंने कहा था कि परम तेजस्वी शिव के अश मे उत्पन्न पुत्र के सिवाय कोई भी उससे लोहा नही ले सकता अत तुम हिमवान् की पुत्री पार्वती से उनका विवाह करवा दो जिससे उस वीर सतान का जन्म होगा जो इस विपत्ति से तुम्हारा उद्धार कर सकेगो।

कथावस्तु प्रथम सर्ग

कुमारसभव की मूल कथा बहुत छोटी है तो भी कवि ने विविध प्रसगो तथा वर्णनो की सहायता से पल्लवित कर उसे महाकाव्य का रूप दे दिया है। कथा का निष्कर्ष यह है --भारत के उत्तर मे पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ हिमालय का प्रदेश है। हिमालय के ऊँचे शिखर हिममण्डित है। वहा नाना रत्न तथा विविध औषधिया उत्पन्न होती है। अनेक धातुओं वाले उसके शिखर इस प्रकार शोभित हुआ करते है मानो रगबिरगे मेघमण्डो से मण्डित अकाल सध्या वहा स्थिर हो गई है। उसके शिखर इतने ऊँचे है कि बादल उन तक नही पहुँच पाते अत· जब सिद्ध गण बहुत वर्षा से ऊब जाते है तो उठकर उन चोटियो पर चले जाते हैं जहा धूप चमकती होती है। चादनी के समान शुभ्र पूछ वाली चमरी गउए उस पर जहा तहा विचरा करती है और जब वे अपनी पूँछ हिलाती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो पर्वतो के महाराज पर चमर डुलाए जा रहे हैं। वहा भागीरथी के झरनों की फुआरो से शीतल पवन चला करता है जिससे देवदारुओ के सघन वन झूमने लगते है, मयूर मस्त हो अपने पर फैला देते है और मृगों के पीछे दौड कर थक गए शिकारी सुस्ताते उसका आनन्द लिया करते है। पर्वतो के राजा उस हिमवान् की पत्नी का नाम 'मेना' था जिसके गर्भ से पुत्र मैनाक तथा पुत्री पार्वती का जन्म हुआ। पड़ौस मे ही कैलास पर शिवजी का निवास था। कुछ समय पूर्व जब उनकी पहली पत्नी सती ने अपने पिता

दक्ष से रुष्ट हो उसके यज्ञ कुण्ड मे कूद कर प्राण त्याग दिए थे तभी से वे विरक्त हो तपस्या मे लग गए थे। एक दिन नारद ऋषि हिमवान् के घर आए और उन्होने नवयौवन मे पदार्पण करती हुई पार्वती को देखा तो बोले कि वह पूर्व जन्म मे शिवजी की पत्नी थी और अब भी उसका विवाह उन्ही के साथ होगा। यह सुनकर उसकी लगन शिवजी से लग गई और पिता हिमवान् ने भी इसे पसन्द किया। इस पर वह उसकी अनुमति ले सखी सहित जाकर शिवजी की सेवा करने लगी। एक क्वारी कन्या का आना जाना शिवजी अच्छा न समझते थे तो भी एक तो वे उसकी भक्ति-भावना को ठेस न पहुँचाना चाहते थे दूसरे उन्हे अपने ऊपर पूरा भरोसा था अत उन्होने उसे न रोका।

द्वितीय सर्ग

उन्ही दिनो तारक नाम के एक दैत्य की शक्ति बहुत बढ गई और उसने सब देवताओ को जीत लिया। वे सब दुखी हो पितामह ब्रह्मा जी की शरण मे पहुँचे और उन्हे अपना दुखडा सुनाया। उन्होने कहा कि शिवजी के वीर्य से उत्पन्न सतान ही उस दैत्य का सहार कर सकती है किन्तु वे कठोर तप साधन मे मग्न है। तुम यदि हिमवान् की कन्या पार्वती से उनका विवाह करवा दो तो उस वीर पुत्र का जन्म हो सकता है जो तुम्हारा सेनापति बनकर उसे यमपुर पहुँचा सके। यह सुनकर देवराज इन्द्र को ढारस हुआ और उसने कामदेव को याद किया।

तृतीय सर्ग

कामदेव जब दरबार मे पहुचा तब इन्द्र ने उसे अपने पास बिठा लिया और उसकी बडी आवभगत की। इससे वह कुछ फूल गया और बोला, 'आपने मुझे याद किया है, यही मेरे लिए कुछ कम नही पर मैं चाहता हू कि अब आप मुझे वह सेवा बताए जिससे मेरा यह गौरव और भी बढ़ जाए, सेवक की शक्ति तो आप जानते ही है कि यदि वह अपना फूलो का धनुष उठा ले तो पिनाक धारी शिव भी अपना धीरज खो बैठे, फिर औरो का तो कहना ही क्या ?' इन्द्र चाहता ही क्या था ? वह उसके मुह की बात को पकडता हुआ बोला, "बस ठीक है, तुमसे मुझे यही आशा थी। मेरे दो ही तो हथियार है—वज्र और तुम, पर वह वज्र उनका कुछ भी नही बिगाड सकता जो तप के धनी हैं, जब कि तुम कही भी नही चूकते। इस लिए तुम ऐसा उपाय करो कि वे शिव जो अपनी आत्मा को परमात्मा के ध्यान मे लीन कर समाधि लगाए बैठे है, हिमवान् की उस अनुपम सुन्दरी कन्या पार्वती को चाहने लगे जो पास ही रहकर उनकी सेवा कर रही है क्यो कि सब देवता चाहते है कि उनके(शिव के)वीर्य से उत्पन्न वीर पुत्र उनका

सेनापति बनकर असुरोंका सहार करे। इस काम में सब देवता तुम से ही आस लगाए हैं और इमसे तीनो लोको की भलाई होगी।" यह सुनकर कामदेव कुछ घबरागया क्योकि शिव जी से भिडना हसी खेल न था। पर अब करता क्या? तीर उसके हाथ से निकल चुका था। कुछ चारा न देख उसने अपनी प्यारी पत्नी रति तथा मित्र वसन्त को साथ लिया और शिवजी के तपोवन मे पहुच चारो ओर अपना जादू फैला दिया। देखते देखते मलय पवन चलने लगा, फूल खिल उठे और कोयल कूकने लगी। पशु पक्षियो की कौन कहे, स्थावर तक उसके वश मे होगए। हथिनी कमल के पराग से सुवासित जल को अपनी सूड मे भरकर प्रेम से हाथी को पिलाने लगी और चकवे ने आधी खाई मृणाल की डडी चकवी को दे दी। वे लतावधुए जिनके फूलो के बडे बडे गुच्छे स्तनो के समान तथा नवकिसलय लाल होठो से दीखते थे उन वृक्षो के बाहु पाश मे बंध गई जिन्होने अपनी शाखा-रूपी भुजाए उन पर फैला दी थी। पास ही अप्सराओ के मधुर गीत की मादक ध्वनि कानो मे पड रही थी पर इम परिस्थिति मे भी शिवजी विचलित न हुए। वे देवदारु के एक वृक्ष के नीचे, चबूतरे पर बिछे बाघम्बर पर पद्मासन जमाए बैठे थे। उनके पलक न झपकते थे, और कुछ कुछ दीखती तीक्ष्ण पुतलियो वाली उनकी आखे एकटक, नाक की नोकपर जमी थी। उन्होने श्वास रोक रक्खा था और वे बरस न रहे मेघ के घटाटोप के समान गभीर, तरग रहित महासागर की तरह निस्तब्ध तथा वातशून्य प्रदेश मे जल रहे दीपक की लौ की तरह निश्चल थे। उनके ऐसे दुर्धर्ष रूप को देख कामदेव का धैर्य छूट गया और उसके हाथ से धनुष बाण कब गिर पडे यह भी उसे पता न चला। किन्तु तभी नये सूर्य की आभा सी लाल साडी पहने तथा वासन्ती फूलो के आभूषणों से सिगार किए किसी चलती-फिरती लता-सी पार्वती वहा आ पहुंची। उसने बडी प्यारी भावभङ्गी से प्रणामकर अपने गोरे गुलाबी हाथो से मन्दाकिनी के कमल गट्टो की माला उन्हे भेट की। उसे लेने के लिए शिवजी ने हाथ बढाया ही था कि कामदेव ने साहस कर फिर धनुष सम्हाला और उस पर अपना सुप्रसिद्ध समोहनास्त्र चढा लिया। अस्त्र के प्रभाव से शिवजी भी एकक्षण को विचलित हो गए और वे ललचाए लोचनो से पार्वती के लाललाल होठो को निहारने लगे। उनका चित्त चचल हो उठा—ऐसी अनहोनी बात कैसे हो गई यह जानने को जब उन्होने इधर उधर दृष्टि घुमाई तो तीर कमान ताने कामदेव उन्हे दीख पडा और दीखते ही जल कर राख हो गया। उसकी सहायता के लिए आए देवताओ की "भगवन् क्षमा करो क्षमा करो' यह गुहार आकाश मे ही विलीन हो गई और तब स्त्री के निकट ठहरना उचित न

समझ शिव भी अन्तर्धान हो गए। इस दुर्घटना से पार्वती का हृदय टूट गया और वह अनमनी हो घर को लौट गई।

चतुर्थ सर्ग

रति ने अपनी आखो के सामने ही पति को भस्म होते देखा तो वह मूर्छित हो गई। होश आया तो वह धरती पर लोट पड़ी और विलाप करने लगी। ढारस बँधाने को जब वसन्त पास आया तो उसका शोक और भी उमड पडा। वह छाती पीट-पीट कर रोने लगी। रोते-रोते उसने कहा, "हे वसन्त, हवा के झोके से दीपक की तरह तुम्हारा मित्र तो बुझ गया, अब वह न लौटेगा, उसके शोक से मलिन मेरी दशा देखो जो काली बत्ती की तरह बच रही है। तुमने कितनी वार मिलन-रात्रियो के लिए फूलो की सेज सजाने मे मेरी सहायता की है, आज मै हाथ पसार प्रार्थना करती हू कि उन्ही हाथो से तुम मेरे लिए वह चिता तय्यार कर दो जिस पर मै अपने प्राण प्यारे के साथ सती हो जाऊँ। और इस काम को तुम जल्दी ही करो क्योंकि तुम्हारे मित्र को मेरे बिना वहा भी चैन न होगी। तुम यह भी ध्यान रखना कि हम दोनो के लिए एक ही जलाञ्जलि देनी होगी क्यो कि वह उसे मेरे साथ ही पीयेगा।" जब वह इस प्रकार प्राण त्यागने की तय्यारी कर रही थी तभी आकाशवाणी हुई, "हे रति, तू अभी अपने प्राण न त्याग। तेरा उससे पुर्नमिलन शीघ्र ही होगा। ब्रह्मा के शाप से आज उसकी यह दशा हुई है किन्तु जब शिवजी पार्वती से विवाह कर लेगे तब उसे फिर शरीर से युक्त कर देगे।" यह सुनकर उसने मरण का विचार छोड दिया और दिन मे चद्रकला की तरह कुमलाई वह किसी तरह अपनी विपत्ति के दिन काटने लगी।

पंचम सर्ग

पार्वती यह देखकर कि शिवजी ने उसके सामने ही कामदेव को जलाकर राख कर दिया. निराश हो गई और उसे अपना वह सौन्दर्य अब अच्छा न लगा जिससे वह प्यारे को न रिझा सकी थी। इस लिए उसने कठोर तप द्वारा उसके हृदय को जीतने का निश्चय किया और पिता की अनुमति ले वह हिमालय के एक शिखर पर कुटिया बना, सखी के साथ, वहा रहने लगी। उसने गले का हार उतार दिया और साड़ी की जगह वल्कल वस्त्र पहन लिया। जो कभी सेज पर बिखर गए अपनी चोटी के फूलो से भी बेचैन हो जाती थी वही बाँह को तकिया बना धरती पर सोने लगी। वह नित्य स्नान कर अग्निहोत्र करती और जप स्वाध्याय मे लग जाती। उसके इस आचरण की ऐसी धूम मची कि बड़े बड़े ऋषि भी दर्शनों को आने लगे पर उसका मनोरथ पूरा न हुआ। यह देख उसने अपनी साधना को और भी कठोर कर दिया। झुलसाने वाली गर्मियों की कड़ी

धूप मे चारो तरफ आग जला वह एकटक सूर्य को देखती रहती । पवन के प्रबल झकोरो के साथ जब मूसलधार पानी बरसता वह खुले आकाश के नीचे पत्थर की पटिया पर लेट रहती और तब सावन भादो की अधेरी राते बिजली कौधने के बहाने, मानोअपनी आखे खोल उसकी साखी भरा करती । जाड़े की रातो में जब वह गले तक पानी मे खडी हो जाती और उसके होंठ ठड से फरकने लगते तो उसका महकता मुह ऐसा जान पडता मानो पाले की मार से कोई कमल बच रहा हो । मृणालिनी के समान सुकुमार शरीर से भी उसने ऐसी साधना की कि कठोर देह वाले बडे बडे तपस्वियों का तप भी उसके सामने फीका पड गया । तब एक दिन जटाजूट-धारी कोई तरुण ब्रह्मचारी वहा आ निकला । उसने मृगचर्म पहन रक्खा था और हाथ मे लाठी थी । ब्रह्मतेज से उसका चेहरा ऐसा दमक रहा था मानो वह शरीरधारी साक्षात् ब्रह्मचर्य ही हो । वह बातचीत मे तेज तर्रार और चुलबुला था । पार्वती ने आगे बढकर उसकी अगवानी की और बैठने को आसन दिया । कुछ देर आराम कर और कुशल प्रश्न के बाद उसने पार्वती से तप का कारण पूछा । वह स्वय तो कुछ न बोली पर इशारा पाकर उसकी सखी ने कहा, कि इन्होने शिवजी से विवाह का सकल्प किया था । ये उनकी सेवा मे थी कि एक दिन उन्होने कुपित होकर कामदेव को भस्म कर दिया पर उसका तीर मानो उनकी घुड़की से डर, उधर न जा इनके हृदय मे आ लगा और गहरा घाव कर गया । तभी से ये उनके प्रेम मे ऐसी मतवाली हुई है कि घरबार छोड यहा चली आई और अब निराहार रह अपने शरीर को सुखा रही है । और वे शिव जिन के लिए ये अपने आप को इस तरह मिटा रही है, न जाने कैसे पाषाण हृदय है कि पसीजते ही नही ।" यह सुनकर ब्रह्मचारी प्रसन्न हुआ किन्तु अपने भाव को छिपाता हुआ बोला, "अरे ! ! क्या सचमुच ही, या तू हसी कर रही है ? वह बमभोला जिसके शरीर पर साप लिपटे रहते है जिसकी ओढी हाथी की खाल से खून टपकता रहता है और जो मसान मे पडा रहता है वह भी भला ब्याह के योग्य है? तीन आखो ने उसकी सूरत शकल को बिगाड़ रक्खा है, उसके पास पैसाधेला नही इस लिए नगा रहता है और उसके मा बाप का किसी को पता नही । उसमे तो ऐसी एक भी बात नही जो दुलहो मे देखी जाती है । कहा तुझ सी सुलक्षणा और कहाँ वह कुलच्छन? तेरे रेशमी दुपट्टे के साथ उसकी हाथी वाली खाल की गाठ कैसे बधेगी ? सजे हाथी पर सवारी करने वाली तू जब उसके साथ बूढे बैल पर चढकर निकलेगी तो दुनिया के लोग तुझे देखकर मुसकराया करेगे । तू अब भी सोच ले और ऐसी भूल न कर ।" ब्रह्मचारी की ये अटपटी बाते पार्वती को अच्छी न लगी, उसकी भँवो मे बल पड़गए और आखे कुछ

लाल हो गई। उसके होठ फरकने लगे और वह बोली, "तुम उनके असली रूप को नही जानते तभी ऐसा कह रहे हो। पर मुझे तो किसी से बहस नही करनी। वे जैसे भी है मेरे लिए अच्छे है। मै उनके विरुद्ध कुछ भी सुनना नही चाहती।" यह कहती हुई वह ज्यो ही वहा से उठकर जाने लगी कि ब्रह्मचारी ने अपना नकली वेश उतार दिया और पार्वती भी यह देखकर कि उसका चितचोर सामने खडा है सक पका गई। वह न आगे बढ सकी न रुक सकी। यह देखकर शिवजी बोले, "जिसे तुमने अपनी तपस्या से मोल ले लिया है तुम्हारा वह दास यहा उपस्थित है।"

षष्ठ सर्ग

इस पर उसकी सखी ने कहा कि विवाह के सम्बन्ध मे वे उनके पिता हिमवान् से बात करे और शिवजी ने भी यही उचित समझ सप्तर्षियो को याद किया। वे तुरन्त उपस्थित हो गए। उनके बीच मे वशिष्ठ जी के साथ देवी अरुन्धती को देख शिवजी की गृहस्थ बनने की इच्छा और भी प्रबल हो गई। उचित शिष्टाचार के अनन्तर ऋषियो ने निवेदन किया, "देव, जो आपको याद करते है वे धन्य है फिर जिनको आपने याद किया उनका तो कहना ही क्या ? अब आज्ञा कीजिए कि हम आपकी क्या सेवा करे ?" "शिवजी बोले, "आप जानते है कि हमारा अपना कोई स्वार्थ नही किन्तु दैत्यो से सताए देवगणो की प्रार्थना पर हम पर्वतराज हिमवान् की पुत्री से विवाह करना चाहते है। आप वहाँ जाकर क्या कहे, यह हम क्या बताए ? क्योकि शिष्टाचार की पद्धति के निर्माता तो आप ही है। और आर्या अरुन्धती जी का सहयोग तो इसमे बहुमूल्य होगा ही क्योकि ऐसे कार्यों मे स्त्रियो की बुद्धि खूब चलती है।" वहाँ से चलकर सप्तर्षि जब हिमवान् की राजधानी ओषधिप्रस्थ मे पहुँचे तो उसके वैभव को देख वे अचम्भे मे आ गए। पर्वतराज उनका सत्कार कर नम्रता से बोला, "आपका यह अचानक आगमन बिना मेघ की वृष्टि और बिना फूल के फलो के समान है। अभी तक मेरा जो सिर केवल गगाजल से पवित्र था आज आपके चरणोदक से वह और भी अधिक पवित्र हो गया। आपका कोई काम मुझसे अटका हो यह तो सभव नही, अत· आप मुझे पवित्र करने को ही यहा पधारे है।" यह सुन कर ऋषि अगिरा बोले, "तुमने ठीक कहा है तुम्हारी इन चोटियों की तरह ही तुम्हारा मन भी उच्च है, और निर्मल विस्तार वाली तुम्हारो कीर्तियो तथा नदियो ने जगत् को पवित्र कर रक्खा है। हम सचमुच तुम्हारे ही काम से यहाँ आए है। तुम्हारे अहो भाग्य हैं कि त्रिलोकी के स्वामी भगवान् शंकर तुम्हे अपना श्वशुर बनाना चाहते है। माँगने वाले हम, देने वाले तुम,

तुम्हारी पुत्री पार्वती वधू और भगवान शकर वर—तुम्हारे कुल का इससे बढकर क्या गौरव हो सकता है ?" यह सुनकर हिमवान् कृतार्थ हो गया और उसने अपनी पत्नी की तरफ दृष्टि डाली। उसे भी सहमत देखा तो वह पार्वती से बोला, "बेटी इधर आओ, मैं तुम्हे विश्व के स्वामी भगवान् शकर को भिक्षा-रूप में दे रहा हूँ।" और फिर उसने ऋषियों से कहा, "आज मेरा गृहस्थ-जीवन सफल हुआ। भगवान् शकर की भावी वधू यह मेरी पुत्री आपके चरणो मे प्रणाम करती है।" लजाती हुई पार्वती जब प्रणाम करने लगी तो देवी अरुन्धती ने उसे अपनी गोद मे खीच कर प्यार किया। अन्त मे सब ऋषि उसे आशीर्वाद दे विदा हुए।

सप्तम सर्ग

हिमवान् विवाह की तैयारियाँ धूम-धाम से करने लगा और उसका घर बन्धु-बान्धवो से भर गया। तीसरे दिन कुनबे की पूज्य सुहागिन स्त्रियो ने बाजे-गाजे के साथ पार्वती को तेल उबटन मला और मगल-स्नान करवा विवाह के वस्त्र पहना दिए। तब किसी सखी ने धूप के धुए से उसके केशो को सुखाया और जूडे को फूलमाला से सवार दिया, कोई पैरो मे महावर लगाने लगी और किसी ने आँखो मे काजल आँज दिया। तरह-तरह के जडाऊ गहनो से पार्वती की सुन्दरता फूलो से लता, तारावली से निशा तथा रग-बिरगे पक्षियों से नदी की तरह खिल उठी। माता की आज्ञा से पार्वती ने कुलदेवताओ की वन्दना की और वहाँ उपस्थित सती स्त्रियो के चरण छूए। यह सब कुछ हो चुका तो पर्वतराज बन्धु-बान्धवो के साथ बैठकखाने मे बैठ गया और वर के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा।

उधर कुबेर-शैल पर सब देवता शिवजी को भी विवाह के लिए सजाने लगे। देव-माताओ ने उनके लिए जो सामग्री प्रस्तुत की उसे शिवजी ने सादर स्वीकार तो कर लिया पर पहना नही। किसी अद्भुत शक्ति के प्रभाव से उनका वही वेश सहसा बदल कर उस अवसर के अनुरूप हो गया। शरीर पर मली राख चन्दन बन गई, और कपालमाला सफेद फूलो का गजरा। हाथी की खाल पल्लो पर गोरोचना के छीटो वाला रेशमी दुपट्टा दीखने लगी और माथे पर का तीसरा नेत्र तिलक, तथा चन्द्रमा चूडामणि बन गया। तब उनके एक अनुचर ने दर्पण के समान चमकती तलवार उनके सामने कर दी और उन्होने उसमे अपना मुख देखा। बैल की कमर पर बाघम्बर पड़ा था, वे नन्दी का सहारा ले उस पर सवार हो गए और तभी एक बडा नगाडा बजा जिसे सुनकर सब लोकपाल और देवता एकत्र हो गए। सबका वेश सादा था। नन्दी ने उनका परिचय

दिया और उन्होने उत्तर मे सिर झुका दिया। शिवजी ने सिर को तनिक हिला कर ब्रह्मा का, 'आइए' कहकर विष्णु का, मुस्करा कर इन्द्र का तथा चारो तरफ एक नजर डाल सब देवताओ का स्वागत किया। जब सप्तर्षियो ने उन्हे आशीर्वाद दिया तो उन्होने मुसकरा कर कहा, 'इस विवाह-यज्ञ मे मैने आपको ही पुरोहित वरा है।" बरात हिमवान् के नगर मे पहुँची तो वहाँ उसका खूब स्वागत-सत्कार हुआ। शिवजी जब विवाह-वेदी पर पहुँचे तो अर्घ्य, मधुपर्क, विविध रत्न तथा वस्त्र-युगल समर्पित कर उनका आतिथ्य किया गया और परिक्रमा, लाजाहोम, तथा ध्रुव-दर्शन की विधि पूर्ण कर पुरोहित ने पार्वती को उपदेश दिया। वर-वधू ने पितामह को प्रणाम किया और स्नातको ने उनके मस्तक पर अक्षतरोली से तिलक लगाया। सरस्वती ने मधुर गीत गाकर उनकी स्तुति की और अप्सराओ ने उनके मनोरजन के लिए एक नाटक खेला। बरात विदा हुई किन्तु हिमवान् ने आग्रह कर शिवजी को वही रोक लिया।

अष्टम सर्ग

सास ससुर न मानते थे तो भी, शिवजी एक मास पश्चात् उन्हें किसी तरह समझा बुझाकर पार्वती को साथ ले कैलाश चले आए और वहाँ से वे अपनी विहार-यात्रा पर निकले। पार्वती को मेरु, मन्दिर और कुवेर शैल के विविध दृश्य दिखलाकर शिव जब मलयाचल पर पहुँचे तो वहाँ लवग केसरो से सुवासित दक्षिण पवन चन्दन लताओ को नचा रहा था और उसने पार्वती के मुँह पर झलक रही पसीने की बूदो को सुख दिया। वहाँ से वे जब नन्दन वन पहुँचे और उन्होने पारिजात के फूलो से पार्वती का शृगार किया तो सुर वधुए उसके सुहाग को सराहने लगी। गधमादन पर्वत पर पहुँच कर उन्होने पार्वती को दिखाया कि सूर्य का प्रकाश मन्द पड जाने से झरनो की फुआर पर बने इन्द्र धनुष मिटते जा रहे है। मुनियो के आश्रमो मे यज्ञग्नियाँ जलने लगी, पालतू मृग आँगनो मे जमा हो गए, वृक्षो के थाँवलो मे जल दे दिया गया और चरने गई गउएँ वनो से लौट आई। अस्त हो रहे सूर्य के लाल विम्ब से पश्चिम दिशा गुलदुपहरी के फूलो से किसी सुन्दरी के मस्तक के समान सुशोभित हो गई। बादलो की लाल, पीली, नीली रेखाओ को दिखाते हुए वे कहने लगे कि यह सध्या मानो तुम्हारा मनोरजन करने को ही तूलिका से इन चित्रो को बना रही है। मुनिजन ब्रह्म का ध्यान करने लगे तो शिवजी पार्वती से छुट्टी ले सन्ध्योपासना मे बैठ गए। जब वे उठे तब अंधेरा खूब घना हो गया था उसे दिखा वे कहने लगे, 'बुरा हो इस अधकार का जिसने उजले मैले, खड़े चलते-फिरते, सीधे टेढे-मेढे सबको बराबर कर दिया। असत् के राज्य

यही हुआ करता है।" धीरे-धीरे अंधेरा कुछ छँटने लगा और पूर्व दिशा का मुख चंद्रिका से धवल हो गया, मानो उस पर किसी ने केतकी का पराग मल दिया। कुछ समय तक चन्द्रचन्द्रिका का वर्णन करते हुए शिव विश्राम के लिए पार्वती के साथ शयनागार मे चले गए।

कुमार सभव की यह कथावस्तु वस्तुत बहुत छोटी है, किन्तु कवि ने विविध प्रसगो और वर्णनो द्वारा इसका विस्तार कर दिया है। प्रसग उस साधारण घटना को कहते है जिसके सपादन मे मुख्य कथा के पात्रो से भिन्न जो व्यक्ति योग देते है उनके कार्य मुख्य कथा की प्रगति मे सहायक होते हैं किन्तु उन्हे स्वय किसी विशेष फल की प्राप्ति नही होती। इसके विपरीत, अन्तरकथा वह महत्त्वपूर्ण घटना होती है जिसके द्वारा उसके व्यक्ति या व्यक्तियो को भी कोई स्वतन्त्र फल मिलता है और वह फल प्रधान कथा के विकास मे अग बन जाता है। कुमारसभव मे तारकासुर द्वारा सताए देवताओ का ब्रह्मा की शरण मे जाना, ब्रह्मा की स्तुति करना, उसका प्रकट होना और उनकी दुरवस्था देखकर उसका कारण पूछना, उसके उपाय के रूप मे शिव पार्वती के विवाह की बात कहना, इन्द्र का कामदेव को बुलाना, उसका शिव के आश्रम मे जाकर भस्म होजाना, निराश पार्वती की कठोर तपस्या और उसके प्रेम की परीक्षा के लिए आए ब्रह्मचारी-वेशधारी शिवजी का अत्यन्त नाटकीय ढग से प्रकट होकर उसे विस्मित कर देना आदि सब घटनाए प्रसग है और इनमे यह अन्तिम प्रसग सबसे अधिक चमत्कार-पूर्ण है।

पात्र तथा चरित्र चित्रण

शिव

कुमारसभव के प्रमुख पात्र शिव पार्वती, काम रति तथा हिमवान् है। इन मे से शिव यद्यपि कवि के आराध्य देव तथा अतिमानव है तो भी उनका व्यवहार मानवोचित है। कवि की भावना के अनुसार वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् निष्काम तथा निरीह है और गीता के उस आदर्श श्रेष्ठ पुरुष की तरह है जो लोक-सग्रह के लिए सब मर्यादाओ का पालन करता है।

पहली पत्नी सती की मृत्यु के पश्चात् वे विमुक्तसग तापस का जीवन व्यतीत करने को शरीर पर राख मल लेते और ऊपर से एक खाल ओढ लेते थे। उनका सारा समय अग्निहोत्र, अध्यात्म-चिन्तन तथा साधना मे ही जाता था। तभी पार्वती उनकी सेवा के लिए वहा आने जाने लगी। वे यह पसन्द न करते थे तोभी उसे टाल न सके क्योकि वे प्रणयि-प्रिय थे। हृदय की इस कोमलता के साथ उनके चरित्र मे दृढता भी थी। उन्हे विश्वास था कि बड़े से बडा प्रलोभन भी उन्हे विचलित नही कर सकता। वे पार्वती के अत्यन्त

मनोमोहक रूप से भी आकृष्ट न हुए किन्तु उसकी साधना से उनका सिहासन डोल गया और वे उसके क्रीतदास बन गए। उन्हें गृहजीवन का अनुभव था क्योकि वे पहले भी गृहस्थ रह चुके थे किन्तु सती के दुखद अवसान से, जब उनके हृदय को ठेस पहुची तब उन्होने फिर से कोई ऐसा नया प्रिय सम्बन्ध स्थापित करना अच्छा न समझा जिसका अन्त विषाद मे हो। उन्हे वह स्वतन्त्र तथा निश्चित जीवन अधिक भला लगा और वे चैन की बसी बजाने लगे। बहुत दिन न हुए थे कि तारकासुर से सताए देवताओ को वीर सेनापति की आवश्यकता प्रतीत हुई और उस सेनापति को उत्पन्न करने के लिए इन्हे विवाह करना अनिवार्य हो गया। फिर पार्वती की साधना से भी ये प्रभावित हुए और तभी इन्होने वशिष्ठ-दम्पति को देखा जिनका जीवन इन्हे अपने से कही अधिक सरस तथा सुखी प्रतीत हुआ। इन्हे यह भी जान पडा कि सत्पन्नी धर्माचरण मे बाधक नही प्रत्युत साधक होती है। ये गृहस्थ बने और पूरे गृहस्थ, वैसे ही जैसे पहले पूरे तपस्वी थे। वे पत्नी से फिर कभी अलग न हुए। पर ये दोनो रूप भी उनके असली नही, तभी तो पार्वती ने कहा था, 'उनके यथार्थ रूप को कोई नही जानता, वे विश्वमूर्ति है। उनका कोई एक रूप निर्धारित नही किया जा सकता।'

नम्रता तथा शिष्टता

शिवजी सब ऐश्वर्यों के अधिपति थे तो भी उन मे न ममता थी न अभिमान—उनका व्यवहार शिष्ट तथा मधुर था। घर आए सप्तर्षियो का उन्होने उचित सत्कार किया। पार्वती से विवाह करने के निमित्त हिमवान् से प्रार्थना करने मे उन्होने अपनी हेठी नही समझी। बरात मे आए सब देवताओ का यथायोग्य सत्कार करना भी वे न भूले। हिमवान् के घर पहुच उन्होने अपने भावी श्वशुर को प्रणाम कर लोकाचार का पालन किया। विवाह हो चुकने पर उन्होने वहा विराजमान पितामह ब्रह्मा के चरणो मे झुक कर नमस्कार किया।

दुर्धर्ष वीरता

किन्तु उनकी उस नम्रता तथा शिष्टता की शोभा उस दुर्धर्ष वीरता के कारण थी जिसकी धाक दूर-दूर तक जमी हुई थी। उनसे लोहा लेना आसान न था। इन्द्र के दरबार मे कामदेव अपनी बहादुरी की शेखी बघारता हुआ कह तो गया कि वह शिवजी के भी छक्के छुडा सकता है, पर जब सिर पर आ पडी तो वह घबरा गया कि अब कुशल नही। इसलिए वह सिर पर कफन बाँधकर इनके आश्रम में पहुंचा। वहाँ पहुच कर उसने खूब ऊधम मचाया और सब व्यवस्था भग कर दी। पर जब उसने इन पर हाथ उठाने की हिमाकत की तो वह एक ही दृष्टि मे जल कर राख हो गया।

पार्वती की सखी ने ब्रह्मचारी को कहा था कि वे शकर न जाने कैसे कठोर हृदय है जो इनकी (पार्वती की) सुध नही लेते । वे नही देखते कि उनके ही ध्यान मे मगन इनकी ये रूखी और भूरी लटे किस तरह बिखर गई है । अभी ऊपर देखा जा चुका है कि काम को इन्होने ऐसी उग्र दृष्टि से देखा था कि वह वही ढेर हो गया । पर वह भी इनका बहुत ही ऊपर का रूप था । इनका अन्त करण अत्यन्त करुणापूर्ण था । ये आशुतोष प्रसिद्ध है । रति के विलाप पर ये तुरन्त पसीज गए और कामदेव के अपराध को क्षमा कर दिया । ये स्वभाव से मस्त तथा फक्कड थे किन्तु जब इन्होने एक कन्या का हाथ पकड ही लिया तो उसे अपनी तरह रहने को विवश नही किया, पार्वती, भले ही, इसके लिए भी प्रस्तुत थी । बरात मे जाते समय इन्होने अपना अटपटा रूप बदल डाला । वे नही चाहते थे कि उनके निहगपन के कारण उनके सास-ससुर अपनी पुत्री के भविष्य जीवन के विषय मे दुखी हो या पार्वती की सखिया ही ऐसे पति के चुनाव पर उसकी हसी उडाए । इनका शरीर खूब बलिष्ट ओर सुन्दर था । हिमवान् के नगर की नारियो ने इन्हे देखकर कहा था कि सुकुमार शरीर वाली हमारी राजकुमारी ने ऐसे वर के लिए जो दुष्कर तप किया वह ठीक ही था, क्योकि यदि कोई नारी इसकी दासी भी बन सके तो सौभाग्य की बात है फिर इसकी पत्नी के तो कहने ही क्या ? और इनके प्रसन्न चेहरे को देखकर वे विश्वास न कर सकी कि इनके ही क्रोध से कामदेव भस्म हुआ होगा । उनका विचार था कि इनके सुन्दर रूप को देखकर उसने स्वय ही आत्महत्या करली होगी । माता पिता से बिछुडने पर पार्वती को कुछ दुख होना स्वाभाविक था, अत ये उसे-ले मधुयामिनिया मनाने चल दिए और देश-देशान्तरो के विविध दृश्य दिखला उसका मनोरजन करते रहे । यदि वह कभी अकारण भी रूठ गई तो उसे मनाने मे इन्होने कसर न की ।

कृपा तथा प्रेम

शिवजी विनोदी तथा हसोड भी कम न थे । पार्वती के प्रेम की परीक्षा के लिए ब्रह्मचारी का वेश भरने की सुन्दर सूझ से ही इसका पता चलता है । वहा जाकर और शिव के विषय मे ऊल जलूल बाते कहकर पार्वती को चिढाने और उसकी मुखमुद्रा को देखने मे उन्हे बडा आनन्द आया । अपने इस नाटक मे ये खूब सफल रहे, इससे इनकी अभिनय-निपुणता भी सिद्ध होती है । शिव अच्छे नट भी थे । वे ताण्डव नृत्य के आविष्कारक माने जाते है तथा नटराज नाम से प्रसिद्ध है ।

विनोदी तथा नटराज

महायोगी

शिवजी का यह चित्र अधूरा ही रह जायगा यदि इसके उपसहार मे उनके योगिराज रूप का भी निर्देश न किया गया। कामदेव जब उनके आश्रम मे पहुचा तब वे पद्मासन जमाए, ध्यान मग्न हो अपनी अन्तरात्मा के भीतर अक्षर परमात्मा का साक्षात्कार कर रहे थे। उनका मेरुदण्ड सीधा था, कधे कुछ झुके तथा श्वासोच्छ्वास निरुद्ध थे। गोद मे तले-ऊपर धरी हथेलिया खिले कमल सी प्रतीत होती थी। न पलक झपकते थे न भँवे हिलती थी। उनकी वे आँखे नाक की नोक पर एकाग्र थी जिनकी निश्चल तीखी पुतलिया कुछ-कुछ दिखाई देती थी। ऐसे गंभीर रूप को देख कामदेव घबरा गया और उसके हाथ से तीर कमान गिर पडे। ध्यान योग के साथ कर्मयोग मे भी वे कच्चे न थे किन्तु उनके कर्म-फल की कामना से प्रेरित न थे। उन्होने सप्तर्षियो को कहा था, "आप जानते ही है कि मै कोई काम स्वार्थभावना से नही करता।" पार्वती से विवाह करके वे ससारी बने किन्तु फिर भी पद्म-पत्र की तरह निर्लिप्त रहे।

पार्वती की कुलीनता तथा रूप

इस महान काव्य की नायिका पार्वती हिमवान् की कन्या थी। उसका जन्म समृद्ध परिवार मे हुआ था अत उसका पालन-पोषण बडे लाड-प्यार से हुआ। परिवार के सब व्यक्तियो को वह पुत्रो की अपेक्षा भी अधिक प्यारी थी। उसका रूप स्वभाव से ही सुन्दर तथा आकर्षक था। तपस्या मे रत शिव यद्यपि उसके साथ सपर्क को तप के प्रतिकूल समझते थे तो भी उसे आने-जाने से न रोक सके। जब वे ब्रह्मचारी का वेश बना उसके आश्रम मे गए थे तब उन्होने कहा था, "ब्रह्माजी के उच्च कुल मे तुम्हारा जन्म हुआ है, तुम्हारी सूरत-शकल ऐसी प्यारी है कि मानो त्रिलोकी का सौन्दर्य मूर्तिमान हो उठा है, तुम्हे किसी बात की कमी नही, तुम सुन्दर युवति हो, फिर तुम्हे तप की क्या आवश्यकता है ? यह भी देखा जाता है कि कभी मनस्विनी स्त्रियाँ किसी के क्रोध या अपमान के कारण ऐसा करने लगती हैं पर तुम्हे देख कर भला कौन क्रोध करेगा और पिता के घर तुम्हारा निरादर भी सभव नही। कोई और ही आकर तुम्हारा अपमान कर जाए, मै यह भी नही मान सकता क्योकि साँप की मणि को छीनने के लिए कौन हाथ बढाता है ? रही विवाह की बात--तो रत्न को ही सब ढूढने जाते है, वह किसी को नहीं खोजता।" शिवजी के उग्र रूप को देखकर जब कामदेव निराश हो गया था तब इसके सौन्दर्य के भरोसे पर ही उसे फिर साहस हुआ था। विवाह के

अवसर पर जब उसने स्नान किया तो आँखों के अजन, होठो के रजन तथा गालो पर के पराग के घुल जाने से निखरे उसके स्वाभाविक रूप को देखकर सखियाँ भी ठिठक गई और उसे कृत्रिम शृगारो से विकृत करना उन्हे अच्छा न लगा।

तीक्ष्ण बुद्धि शिक्षा तथा शील

पार्वती का शैशव गुडिया तथा गेद से खेलने मे और फिर गगा की रेती मे बालू के घर बनाने मे बीत गया। वह कुछ बडी हुई तो पढने बैठी और पूर्व जन्म के सस्कारो के प्रभाव से सब विद्याए उसे अनायास ही आ गई। उसका चरित्र दृढ था तभी पिता ने युवति पुत्री को भी विश्वासपूर्वक अलग जा कर रहने तथा तप करने की अनुमति दे दी। उसकी तपस्या की धूम मच गई और ऋषि भी उसके दर्शनों के लिए आने लगे। ब्रह्मचारी ने उसे कहा था, "सप्तर्षियो द्वारा विसर्जित पूजा पुष्पाजलि से सुहावने इन गगाजलो ने हिमवान् और उसके कुल को इतना पवित्र नही किया जितना तुम्हारे निर्मल चरित्रो ने। तुम्हे देखकर मुझे आज यह विश्वास हो गया है कि मधुर रूप तथा पवित्र आचरण का चोली-दामन का साथ है।"

दृढ़-संकल्प तथा कष्ट सहिष्णुता

पार्वती बचपन से ही दृढ-सकल्प वाली थी। उसे कोई उसके निश्चय से विचलित न कर सकता था। शिवजी को पा सकना हँसी-खेल न था पर वह अपने उद्देश्य मे सफल हो कर ही रही। उसके सुकुमार शरीर और कठोर साधना का विचार करते ही एक सिहरन-सी दौड जाती है। कवि ने उसकी समता उस स्वर्ण कमल से की है जो कोमल होता हुआ भी भगुर नही। उसके चरित्र की इस विशेषता के कारण ही ब्रह्माजी ने उसे देवताओ के सेनापति की माता बनने योग्य समझा था।

प्रेम तथा पातिव्रत्य

पार्वती मन वाणी तथा कर्म से अपने पति की इतनी अनुगामिनी थी कि उसके विषय मे 'दो तन एक प्राण' वाली कहावत 'हीनोक्ति' समझी जाने लगी। कवि कहता है कि विवाह के अवसर पर उसने उनकी अर्द्धागिनी बन उससे कही अधिक प्राप्त कर लिया।

करुणा

भारतीय लोक कथाओ मे प्रसिद्ध है कि पार्वती किसी भी दीन दुखिया के दुःख को देख कातर हो उठती थी और उसकी सहायता के लिए शिवजी से हठ करती थी। वे कितनी भी आनाकानी करते पर अन्त मे चलती पार्वती की ही थी। उसकी

इस करुणाशीलता की सूचना कवि ने कुमार सम्भव के इस वर्णन में दी है—"भयकर जाडे वाली पौष माघ की रातो मे जल मे खडी हो तपस्या करती वह जब बिछुडे चकवे-चकवी का क्रन्दन सुनती थी तो उनके कष्ट के सामने अपने दु ख को भूल जाती थी।" सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि पार्वती का चरित्र स्मरणातीत समय से भारतीय नारियो के लिए आदर्श बना हुआ है।

जातीय महापुरुषो म देवत्व का आरोप

राम कृष्ण आदि की तरह, सभवत, शिव भी ऐसे महापुरुष हैं जिन्हे उनके लोकोत्तर कल्याणकारी कार्यों के प्रति जाति की श्रद्धा ने देवता या ईश्वर बना दिया। ऐसा कब हुआ—यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। पौराणिक युग मे परमात्मा को उसकी उत्पादक, पालक तथा सहारक—इन तीन शक्तियो के प्रतीक तीन स्वतन्त्र देवताओ—ब्रह्मा विष्णु और शिव—के रूप मे देखा जाता है।

अमूर्त्त मनोवेगो का मानवीकरण

इसके विपरीत काम और रति आदि हमारे वे अमूर्त्त मनोवेग है जिन्हे वैदिक कवि की कल्पना ने मूर्त्त रूप प्रदान कर उन्हें व्यक्ति बना दिया है। अथर्व वेद[1] मे काम तथा उसके बाण का रोचक वर्णन है जिसमे पौराणिक कामदेव के चित्र की रूपरेखा दिखाई पडती है। कोई अपनी प्रेमिका को कहता है, "काम का चुटीला बाण तुझ पर चोट करे। तुझे अपनी शय्या पर

---

१ उत्तुदस्त्वोत्तुदतु मा धृथा शयने स्वे।
इषु कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥
आधीपर्णा कामशल्यामिषु सङ्कल्पकुल्मलाम्।
ता सुसन्नता कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ॥
या प्लीहान शोषयति कामस्येषु सुसन्नता।
प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि ॥
शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याऽभि सर्पमा।
मृदुर्निमन्यु केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ॥
आजामि त्वाजन्या परि मातुरथोपितु।
यथा मम क्रतावसो ममचित्तमुपायसि ॥
व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम्।
अथैनामक्रतु कृत्वा ममैव कृणुत वशे ॥ अथर्व काण्ड ३, सूक्त २५ ॥

चैन न मिले। इस बाण में व्याकुलता के पख लगे है, कामेच्छा का फलक और सकल्पो की डटी। कामदेव तुझे इसका निशाना बनाए जिससे तुझे आग सी लग जाए। तेरा मुंह मेरी प्यास मे सूख जाए, तेरा हृदय प्रतिरोध छोड़कर मृदु बन जाए और तू अपने माता-पिता से अलग हो मेरे पास चली आए। तू मुझसे मीठे बोल बोले, तेरे सब काम मेरे अनुकूल हो और तू केवल मेरी ही बन जाए।"

कुमारसभव के काम तथा रति देहधारी प्राणी है। इनकी कुछ शक्तियाँ अतिमानव है और इन्हे देवता कहा जाता है किन्तु ये वस्तुत मर्त्य है अमर नही। ये सौन्दर्य तथा प्रेम-माधुरी के आदर्श प्रतीक है। विदर्भ की नगरनारियाँ इन्दुमती तथा अज का वर्णन करती हुई कहती है कि "ये दोनो पूर्व जन्म मे रति तथा काम रहे होगे तभी तो इसने सैकडो राजाओ मे से अज को ही चुना। क्योकि अन्त करण मे जन्मान्तर के सस्कार भी सुरक्षित रहते है यह सच है।" कामदेव शिवजी द्वारा दग्ध होकर अनग हो जाता है। उसका धनुष फूलो का है और उसके पाँच बाण—अरविद, अशोक, आम्रमजरी, नवमल्लिका तथा नीलोत्पल भी फूल ही है। प्रेमियो पर इनका प्रभाव बहुत कुछ वैसा ही हुआ करता है जैसा ऊपर अथर्ववेद के मन्त्रो मे कहा गया है। वे उन्हे उन्मत्त करने वाले, विरह की आग मे जलाने वाले, शरीर को सुखाने वाले, अक्रतु अर्थात् निष्क्रिय या प्रतिरोध मे असमर्थ कर देने वाले और समोहक हुआ करते है। कामदेव की सवारी मकर, पत्नी रति तथा मित्र वसन्त है। चन्द्रमा और दक्षिण-पवन आदि भी उसके अनेक सहायक है। वह इन्द्र का स्वामिभक्त सेवक है और वीर है। इन्द्र को भी उस पर भरोसा है। वह इसे कहता है, कि "मै तुम्हे भी अपनी तरह ही उत्तरदायी समझता हूँ अत बडे भारी काम मे लगा रहा हूँ।" इन्द्र इसका विशेष आदर करता है जिससे यह कुछ फूल जाता है और शेखी में आकर शिवजी को भी हरा सकने का दम भरता है। इन्द्र यही तो चाहता था। और वह इसे अपने बाण से शिव को पार्वती के प्रति आकृष्ट करने को कहता है। यह कुछ घबरा तो जाता है पर अपनी बात से फिरता नही। इसका चित्रण करते समय कवि के सामने राजा के किसी ऐसे नर्म सचिव का रूप रहा होगा जो विट विदूषक आदि रहकर उसकी प्रेम लीलाओ मे सहायता किया करते थे और जिसका आभास कवि के नाटक मालविकाग्निमित्र मे मिलता है। कामदेव कहता है कि पतिव्रताओ के धर्म, तपस्वियो के तप तथा नीतिविशारदो की नीति को विफल कर देना उसके बाए हाथ का खेल है। इन्द्र भी इसका

समर्थन करता है और कहता है, "मेरे दो ही प्रधान शस्त्र है—वज्र तथा तुम। पर वज्र तपस्विया का कुछ नही बिगाड सकता और तुम सब जगह अचूक हो। फिर यह काम तो त्रिलोकी का कल्याण करने वाला है, और सब देवता तुम से प्रार्थना कर रहे है। तुम्हारी शक्ति के क्या कहने है जिससे खून बहाए बिना ही काम बन जाता है।"

शिवजी के तपोवन मे पहुँचकर काम तथा वसन्त ने वहाँ के प्राकृनिक जीवन में जो परिवर्तन कर डाले वे यद्यपि यथार्थ तथा स्वाभाविक थे पर उस समय के अनुकूल न थे। सारे काव्य मे उनका केवल यही एक कार्य अतिमानुष कहा जा सकता है, जिसके समाधान के लिए उनके देवत्व का सहारा लेना पडता है। शेष अशो मे काम एक साधारण मानव मात्र है और उसका चरित्र मानव की विविध भावनाओ, प्रवृत्तियो, योग्यताओ तथा निर्बलताओ का मिश्रण है।

काम का पारिवारिक जीवन सुखी प्रतीत होता है। उसे एक ऐसी विश्वस्त-सुन्दरी का प्रेम प्राप्त है जो सुख-दुख मे समान रूप से उसकी सगिनी है। जो उसके अभ्युदय मे प्रसन्न तथा उसके अनिष्ट की आशका से कातर हो जाती है। किन्तु काम रति के प्रनि उतना एक-निष्ठ नही जितनी रति उसके प्रति। रति कहती है कि मै अग्नि मे जल कर अभी तुम्हारे पास आ रही हू, कही ऐसा न हो कि स्वर्ग की चतुर अप्सराएँ तुम्हे इसी बीच मे लुभा ले। वह यह भी कहती है कि तुम अब तो दर्शन दो और देखो कि तुम्हारे बिना तुम्हारा मित्र वसन्त कितना व्याकुल है। तुम इसका तो विचार करो क्योकि पुरुष प्राय अपनी स्त्रियो से उतना प्रेम नही करते जितना मित्रो से। पुरुषो के प्रेम की इस शिथिलता के सम्बन्ध मे रति के उक्त उद्गारो का आधार स्त्रियो की स्वाभाविक सन्देह शीलता भी हो सकती है क्योकि उसके शब्दो से ही पता चलता है कि काम उसकी प्रसन्नता का पूरा ध्यान रखता है।

रति

रति कामदेव की प्रिय पत्नी है और उसका चरित्र भी वैसा ही सुन्दर है जैसा उसका रूप। वह पति से प्रेम करती है किन्तु उसके कर्तव्य-पालन मे बाधक नही बनती। जब कामदेव शिव जी पर चढाई करने जाता है तभी पति के अनिष्ट की आशका से वह कातर हो जाती है किन्तु उसे रोकती नही और स्वय भी साथ जाती है। वहा पति की मृत्यु के दृश्य को देख वह सहसा अचेत हो जाती है। होश आने पर उसे यथार्थ का पता चलता है और वह विलाप करने लगती है। जिन देवताओ के लिए उसके पति ने अपने प्राणो की आहुति दे दी थी उनमे

से कोई भी उसके आँसू पोंछने नहीं आता तो भी वह उन्हें कोसती नहीं। उसे सन्तोष है कि वह अपना कर्तव्य पालन करता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ है। अन्त मे वह पति की चिता पर जलकर सती होने का निश्चय करती है किन्तु तभी आकाश-वाणी उसे ऐसा करने से रोक देतीहै। संक्षेप मे, रति का चरित्र एक कुलीन सत्पत्नी के अनुरूप है।

हिमवान्

पर्वतराज हिमवान् हिमालय के उन प्रदेशो का अधिपति है जिन्हे कवि देव[1] भूमि अर्थात् स्वर्ग मानता है। काव्य के आरम्भ मे ही उसे देवतात्मा[2] कहकर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वह मिट्टी पत्थर आदि का ढेर नही किन्तु कोई चेतन मानव है। उसका शरीर खूब लम्बा चौडा, गौरवर्ण और बलिष्ठ है। उसके होठ लाल, भुजाए देवदारु के समान लम्बी और छाती चट्टान जैसी चौडी तथा दृढ है। उसके पैर धरने से धरती दब सी जाती हे अत वह चलता फिरता हिमालय[3] प्रतीत होता है। यज्ञो मे सहायक होने तथा पृथ्वी के पालन मे उसकी असाधारण क्षमता के कारण प्रजापति ने उसे पर्वतराज का पद प्रदान कर यज्ञ भाग का अधिकारी बनाया है। उसके वन दुर्लभ औषध वनस्पतियो तथा खाने बहुमूल्य रत्नराशियो एव धातुओ से भरपूर है जिनके कारण उसका कोष अतुल सम्पत्ति का भडार है। उसकी पत्नी मेना प्रजापति के उच्च कुल की राज-कन्या है। उसका पुत्र मैनाक तथा पुत्री पार्वती है। वह सद्गृहस्थ है और एक बडे फलते-फूलते परिवार का स्वामी है। वह सुशिक्षित तथा सदाचारी है। उसके यहा नारद तथा सप्तर्षि जैसे अतिथि पधारते है और उनकी सेवा कर वह प्रसन्न होता है। उसके विचार उदार है और उसने अपनी सुशिक्षित पुत्री को मनचाहा पति चुनने की स्वतन्त्रता दी हुई है। जब उसे पता चलता है कि पार्वती शिव से विवाह करना चाहती है तो वह बीच मे नही पडता। पार्वती की आरम्भिक असफलता से वह दुखी होता है और उसे शिव के शून्य तपोवन से घर ले आता है। वह इस दुर्घटना से क्षुभित नही होता जिससे उसकी गभीरता का पता चलता है। वह आत्माभिमानी भी है इसलिए शिवजी की

---

१ दिव यदि प्रार्थयसे वृथा श्रम पितु प्रदेशास्तव देवभूमय ॥ कुमार० ५ का ४५

२. अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज. ॥
कुमार० सर्ग १ पद्य १ ॥

३. धातुताम्राधर प्रांशुर्देवदारुबृहद्भुज ।
प्रकृत्यैव शिलोरस्क सुव्यक्तो हिमवानिति ॥ कुमार० सर्ग ६ पद्य ५१ ॥

भी खुशामद नही करना चाहता। सभवत इसी कारण शिव सप्तर्षियो से कहते है, कि उसका सिर ऊचा है। वह अपनी स्थिति से डिगता नही, उसने पृथ्वी को सम्भाल रक्खा है। ऐसे महानुभाव के साथ सम्बन्ध स्थापित होने से तुम मुझे भी कृतार्थ समझो। किंतु वह साथ ही शिष्ट तथा नम्र भी कम नही। उसका व्यवहार मधुर तथा बोलचाल सुसस्कृत है। सप्तर्षियो को घर आते देख वह आगे बढ उनका स्वागत करता है और उचित आतिथ्य कर कहता है, "आपका यह अकस्मात् आगमन मेरे लिए बिना बादलों की वर्षा तथा बिना पुष्पोद्गम के फलो के समान है। हे द्विजवरो, गगाजल और आपका चरणोदक–इन दो को ही मस्तक पर धारण कर आज मै अपने आप को पवित्र मानता हू। आपके चरणो के स्पर्श से मेरा वह स्थावर शरीर तथा आपकी सेवा कर यह जगम रूप––दोनों ही आज कृतार्थ हो गए।" इसके उत्तर मे महर्षि अगिरा कहते है, "यह सब ठीक है। तुम्हारा मन भी तुम्हारे इन शिखरो के समान उच्च है। अविच्छिन्न तथा निर्मल प्रवाह वाली और समुद्र की तरगों तक बे रोक-टोक पहुचती तुम्हारी कीर्तियों तथा नदियो से तीनों लोक पवित्र हो रहे है। यद्यपि पर्वत-रूपी तुम्हारे उस स्थावर शरीर मे समस्त कठोरता भरी हुई है तो भी सत्पुरुषो की सेवा करने वाला यह देह भक्तिभाव से सदा झुका रहता है।" शिव जैसा जामाता पाकर, लोक मे हिमवान् की प्रतिष्ठा और भी बढ जाती है किन्तु उसमे फिर भी अभिमान का लेश नही। बरात को आती देख शिवजी तथा देवगणो के समक्ष उसका सिर अनायास ही झुक जाता है। वह जी खोल कर, अपनी पद-प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य तथा पुत्री के प्रति प्रेम के अनुरूप विवाह का आयोजन करता है। विवाह के पश्चात्, कुछ दिन रहकर जब शिवजी पार्वती को लेकर जाने लगते है तब वियोग का विचार उसे विकल कर देता है। जिसके सिर पर हिम के भयकर तूफानो के आक्रमण विफल हो जाते है उसी के पुत्री स्नेह कातर हृदय से करुणा की वे धाराएँ फूट पडती है जो आज भी जगत् को आप्लावित कर रही है।

संवाद या कथोपकथन

काव्यो मे कथोपकथन का उतना महत्त्व नही जितना रूपको मे, तो भी कालिदास के कुछ कथोपकथन इतने उत्कृष्ट है कि काव्य सौन्दर्य की समीक्षा करते समय उनकी उपेक्षा नही की जा सकती, वे बडे ही सजीव तथा प्रभावक है। उनमे राजदरबारों, आश्रमो, परिवारो, मित्र मिलन या युद्धसघर्ष आदि के अवसर पर बातचीत करने वाले विभिन्नस्तरो के लोगों के संवादो की नाटकीय वास्तविकता व्याप्त है, और वह वास्तविकता काव्यकला से परिष्कृतह

गई है। कुमारसभव के पाचवे सर्ग में ब्रह्मचारी तथा पार्वती का और छठे सर्ग में महर्षि अगिरा तथा हिमवान् का सवाद इसके सुन्दर उदाहरण है। इनका एक एक शब्द नपा-तुला तथा वाछित प्रभाव को उत्पन्न करने वाला है। बातचीत शुरू होते ही ब्रह्मचारी कुछ तो पार्वती के शारीरिक सुखदुख के विषय मे अपनी चिन्ता प्रकट कर और कुछ उसके रूप तथा शील की प्रशसा कर उसे यह समझा देता है कि वह उसका हित-चिन्तक है और उसका विश्वास प्राप्त कर लेता है। कालिदास इन सवादो मे शुद्ध तर्क को महत्त्व नही देता। वह तो सहानुभूति[1], सौहार्द[2], अनिष्टाशका[3], और इन सबसे बढ़कर प्रशसा[4] द्वारा हृदय को प्रभावित करना चाहता है। वह जानता है कि स्त्रियो को वश मे करने

---

१ प्रयुक्तसत्कारविशेषमात्मना न मा पर सप्रतिपत्तुमर्हसि।
यत सता सनतगात्रि! सगत मनीषिभि साप्तपदीनमुच्यते ॥
कुमार० सर्ग ५, पद्य ३९ ॥

२. कियच्चिर श्राम्यसि गौरि! विद्यते ममापि पूर्वाश्रमसचित तप।
तदर्धभागेन लभस्व काक्षित वर तमिच्छामि च माधु वेदितुम् ॥
कुमार० सर्ग ५, पद्य ५०।

३ (क) मुनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकर्शिता दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदाम्।
शशाङ्कलेखामिव पश्यतो दिवा सचेतस कस्य मनो न दूयते ॥
कुमार० सर्ग ५, पद्य ४८ ॥

(ख) अवस्तुनिर्बन्धपरे! कथ नु ते करोऽयमामुक्तविवाहकौतुक।
करेण शभोर्वलयीकृताहिना सहिष्यते तत्प्रथमावलम्बनम् ॥
कुमार० सर्ग ५ पद्य ६६ ॥

४. (क) कुले प्रसूति प्रथमस्य वेधसस्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदित वपु।
अमृग्यमैश्वर्यसुख नव वयस्तप फल स्यात्किमत पर वद ॥
कुमार० सर्ग ५ पद्य ४१ ॥

(ख) उपपन्नमिद सर्वमत. परमपि त्वयि।
मनसः शिखराणा च सदृशी ते समुन्नति ॥
कुमार० सर्ग ६ पद्य ६६ ॥

(ग) स्थाने त्वा स्थावरात्मान विष्णुमाहुस्तथा हि ते।
चराचराणा भूताना कुक्षिराधारता गतः ॥
कुमार० सर्ग ६, पद्य ६७ ॥

के लिए यदि उनके रूप की प्रशंसा ब्रह्मास्त्र है तो पुरुषो को मूर्ख और निर्बल बनाने के लिए उनकी बुद्धि तथा बल की प्रशसा आवश्यक है। इन संवादो की यही विशेषता है, और ये सक्षिप्त तथा सारगर्भित भी है। इनमे कितने ही वाक्य ऐसे है जो सस्कृत साहित्य मे सूक्ति[1] बन गए हैं और वैसा प्रसग उपस्थित होने पर, बातचीत मे अनायास ही वक्ता के मुख से निकल पड़ते है।

देश काल

काव्यो मे देश काल का वर्णन प्राय उद्दीपन विभाव के रूप मे किया जाता है क्योकि ये परिस्थिति के अनुकूल पृष्ठभूमि तैय्यार कर रसानुभूति मे सहायता करते है। कालिदास की व्यापक किंतु सूक्ष्म तथा सारग्राहिणी प्रतिभा देशकाल के विस्तृत क्षेत्र मे से केवल अत्यावश्यक एवं प्रतिनिधि तत्त्वो को छाट और उन्हे गिने-चुने शब्दो मे रखकर पूर्ण चित्र की व्यजना कर देती है। कुमारसभव के प्रथम सर्ग मे कवि ने हिमालय का वर्णन करते हुए वहा की कोई विशेषता[2] नही छोड़ी। शीत

---

१ (क) शरीरमाद्य खलु धर्म साधनम्।
(ख) न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।
(ग) द्विषन्ति मन्दाश्चरित महात्मनाम्।
(घ) मनोरथानामगतिर्न विद्यते।
(ङ) न केवल यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि य स पापभाक्।
कुमार० सर्ग ५, पद्य ३३, ४५, ७५, ६४, ८३॥
(च) अपमेघोदय वर्षमदृष्टकुसुम फलम्।
अतर्कितोपपन्न वो दर्शन प्रतिभाति मे।
(छ) मन्ये मत्पावनायैव प्रस्थान भवतामिह॥
(ज) विनियोगप्रसादा हि किकरा प्रभविष्णुषु॥
(झ) अशोच्या हि पितु कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता॥
कुमार० सर्ग ६, पद्य ५४, ६१, ६२, ७९॥

२. (क) अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिम न सौभाग्यविलोपि जातम्।
कुमार० सर्ग १, पद्य ३॥
(ख) यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनाना सपादयित्री शिखरैर्बिभर्ति।
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसध्यामिव धातुमत्ताम्॥
कुमार० सर्ग १, पद्य ४॥

की अधिकता, रत्न तथा धातुओं की खाने, जमे हिम पर चलने की असुविधा, भूर्जपत्र, चमरीगाय, गगा आदि सबका यथार्थ वर्णन किया गया है। शिशुपाल-वध महाकाव्य मे रैवतक पर्वत के वर्णन की तरह उसमे अनेक कल्पित पदार्थों की भरती नही की गई। तीसरे सर्ग मे वसन्त[1] ऋतु तथा उसके उन्मादक प्रभाव[2] का वर्णन भी कवि ने बड़े सुन्दर ढग से किया है। कोई भी बात देश तथा काल के विरुद्ध होकर रसभग का कारण न बने इसके लिए वह सदा सतर्क रहता है।

कालिदास की कविता की एक बडी विशेषता उसकी सरसता है। कुमारसभव मे मुख्य रस[3] शृगार है किन्तु स्थान-स्थान पर

(ग) उद्वेजयत्यङ्गुलिपार्ष्णिभागान्मार्गे शिलीभूतहिमेऽपि यत्र।
न दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता भिन्दन्ति मन्दा गतिमश्वमुख्य ॥
कुमार० सर्ग १, पद्य ११ ॥

(घ) न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वच. कुञ्जरबिन्दुशोणा।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनङ्गलेखक्रिययोपयोगम् ॥
कुमार० सर्ग १, पद्य ७

(ङ) लाङ्गूलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौरै।
यस्यार्थयुक्त गिरिराजशब्द कुर्वंति बालव्यजनैश्चमर्य ॥
कुमार० सर्ग १, पद्य १३

(च) कपोलकण्डू करिभिर्विनेतु विघट्टिताना सरलद्रुमाणाम्।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूत सानूनि गन्ध सुरभी करोति ॥
कुमार० सर्ग १, पद्य ९ ॥

१ बालेन्दुवक्राण्यविकासभावाद्बभु पलाशान्यतिलोहितानि।
सद्यो वसन्तेन समागताना नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ॥
कुमार० सर्ग ३, पद्य २९ ॥

२. पर्याप्तपुष्पस्तबकस्तनाभ्य स्फुरत्प्रवालौष्ठमनोहराभ्य।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि ॥
कुमार० सर्ग ३, पद्य ३९ ॥

३ (क) हरस्तु किंचित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशि.।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥

(ख) विवृण्वती शैलसुतापि भावमङ्गै. स्फुरद्बालकदम्बकल्पै.।
साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन ॥
कुमार० सर्ग ३, पद्य ६७, ६८ ॥

रस

प्रसगानुसार अन्य रस भी पाए जाते है। पाचवे सर्ग मे पार्वती के पूर्वराग[1] का जो वर्णन उसकी सखी ने ब्रह्मचारी के समक्ष किया है वह बडा मार्मिक है। चतुर्थ सर्ग मे रति-विलाप करुण रस[2] के परिपाक का उत्कृष्ट नमूना है। मदन दाह के संक्षिप्त प्रसग मे रौद्र रस[3] की झाकी है, और इन्द्र के दरबार मे कामदेव की गर्वोक्तियो मे वीररस[4] देखा जा सकता है। यहा रसो के लम्बे उद्धरण देकर विषय का विस्तार अनावश्यक है क्योकि मिशरी को तो जहाँ से भी चखे वह मीठी ही लगेगी।

कुमार संभव का कलापक्ष

यहा तक कुमारसभव के भावपक्ष अर्थात् उद्देश्य से रस पर्यन्त प्रत्येक तत्त्व पर अलग-अलग विचार किया जा चुका। उसके कलापक्ष अर्थात् भाषा, शैली, गुण, अलकार, तथा छद का विवेचन पृथक् नकर रघुवश के प्रकरण मे एक साथ ही उस पर लिखना अधिक उपयुक्त होगा क्योकि इसकी दृष्टि से दोनो महाकाव्यो मे कोई विशेष अन्तर नही है।

---

१. तदाप्रभृत्युन्मदना पितुर्ग्हे ललाटिकाचन्दनधूसरालका।
न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिं तुषारसघातशिलातलेष्वपि ॥
उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिन सबाष्पकण्ठस्खलितैं पदैरियम्।
अनेकश किन्नरराजकन्यका वनान्तसगीतसखीररोदयत् ॥
कुमार० सर्ग ५, पद्य ५५, ५६ ॥

२. अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिगनधूसरस्तनी।
विललाप विकीर्णमूर्धजा समदु खामिव कुर्वती स्थलीम् ॥ कु० सर्ग ४ पद्य ४ ॥
अहमेत्य पतङ्गवर्त्मना पुनरङ्काश्रयिणी भवामि ते।
चतुरैं सुरकामिनीजनैं प्रिय! यावन्न विलोभ्यसे दिवि ॥ सर्ग ४ पद्य २० ॥

३. तप.परामर्शविवृद्धमन्योर्भ्रू भङ्गदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य।
स्फुरन्नुदर्चि सहसा तृतीयादक्ष्ण. कृशानु किल निष्पपात ॥
कुमार० सर्ग ३, पद्य ७१ ॥

४. प्रसीद विश्राम्यतु वीर! वज्र शरैर्मदीयैः कतमः सुरारि.।
बिभेतु मोघीकृतबाहुवीर्य स्त्रीभ्योऽपि कोपस्फुरिताधराभ्य ॥
तव प्रसादात्कुसुमायुधोऽपि सहायमेक मधुमेव लब्ध्वा।
कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये ॥
सर्ग ३, पद्य ९, १० ॥

रघुवंश

कवि का दूसरा महाकाव्य रघुवश है है। इसमे १९ सर्ग है और इसका विषयक्षेत्र अधिक व्यापक है। इसकी रचना उसने विशेष उद्देश्य से की है। कवि ने अपने दीर्घ जीवन में बहुत कुछ देखा-सुना था। सभव है कि उसकी आँखो के आगे कई राज्य परिवर्तन भी हुए थे। उन अनुभवो के आधार पर व्यक्ति, समाज, राजा, प्रजा तथा राज्यादि के विषय मे उसकी अनेक मान्यताए बन गई थी, जिन्हे मूर्तरूप देकर वह लोक के समक्ष इनके आदर्श उपस्थित करना चाहता था और रघुवश द्वारा उसने यही किया।

उद्देश्य--उसकी दृष्टि मे मानव जीवन का उद्देश्य इहलोक मे अधिक मे अधिक अभ्युदय तथा परलोक मे नि श्रेयस की प्राप्ति था और इसके लिए वह राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के स्वतन्त्र विकास को अत्यावश्यक समझता था और वह विकास तभी सभव था जब माता-पिता केवल वासना के वशीभूत न होकर किसी उच्च सकल्प से सतान को उत्पन्न करने का निश्चय करे और बालक के जन्म से भी पहले से ही पुसवन, जातकर्मादि वैदिक[1] सस्कारो को इस प्रकार

---

१ (क) सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥ रघु० सर्ग १, पद्य ५ ॥

(ख) यथाक्रम पुसवनादिका क्रिया धृतेश्च धीर सदृशीर्व्यधत्त स ॥

(ग) स जातकर्मण्यखिले तपस्विना तपोवनादेत्य पुरोधसा कृते ।
दिलीपसूनुर्मणिराकरोद्भव प्रयुक्तसस्कार इवाधिक बभौ ॥

(घ) अथोपनीत विधिवद्विपश्चितो विनिन्युरेन गुरवो गुरुप्रियम् ।

(ङ) अथास्य गोदानविधेरनन्तर विवाहदीक्षा निरवर्तयद्गुरु ।
रघुवश सर्ग ३ के पद्य १०, १८, २९, ३३ ॥

(च) श्रुतदेहविसर्जन पितुश्चिरमश्रूणि विमुच्य राघव ।
विदधे विधिमस्य नैष्ठिक यतिभि सार्धमनग्निमग्निचित् ॥
रघु० सर्ग ८, पद्य २५ ॥

(छ) कुमारा कृतसस्कारास्ते धात्रीस्तन्यपायिन ।
रघु० सर्ग १०, पद्य ७८ ॥

(ज) तपस्विससर्गविनीतसत्त्वे तपोवने वीतभया वसास्मिन् ।
इतो भविष्यत्यनघप्रसूतेरपत्यसस्कारमयो विधिस्ते ॥
रघु० सर्ग १४, पद्य ७५ ॥

करने लगे कि पूर्वोक्त सकल्पो के स्मरण के साथ-साथ उनका उत्तम प्रभाव बच्चे पर भी पडता रहे। बच्चो का पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा ऐसे स्वतन्त्र वातावरण में हो जहा उनके शरीर, मन तथा आत्मा को किसी प्रकार की कुण्ठा या घुटन का अनुभव न हो। काश्यप[1], कण्व, वाल्मीकि, च्यवन और वरतन्तु आदि कुलपतियो के आश्रम इसी प्रकार के प्रतिष्ठान थे जहा से स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाले कौत्स जैसे आत्मविश्वासी ब्राह्मण तथा लवकुश या भरत और आयु[2] जैसे वीर क्षत्रिय निकलते थे। इन्हे ही कवि भारतीय सस्कृति का मूल स्रोत तथा प्रधान शक्ति केन्द्र मानता था। राजनीति के सामयिक दाव-पेचो से अलग-थलग रहने वाले महान् गुरु इन आश्रमो मे रहते हुए, जाति की भावी सतति के चरित्र का निर्माण किया करते थे, किंतु सकट के समय, और आवश्यकता आ पड़ने पर वे अपना सक्रिय सहयोग भी देते रहते थे। राजा दिलीप ने गुरु वशिष्ठ से कहा था "मेरी प्रजा को अग्नि, जल, महामारी, दुर्भिक्ष तथा अकाल-मृत्यु आदि दैवी एव

---

१ शाकुन्तल नाटक मे काश्यप और कण्व के तथा विक्रमोर्वशीयनाटक मे च्यवन के आश्रम का उल्लेख है। उर्वशी के पुत्र आयुके सस्कार तथा शिक्षा च्यवन के आश्रम मे हुए थे।

२. (क) उर्वशी सभवस्यायमैलसूनोर्धनुष्मत ।
कुमारस्यायुषोबाण प्रहर्तुर्द्विषदायुषाम् ।। विक्रमो० अक ५, पद्य ७।

(ख) उपपन्न ननु शिव सप्तस्वगेषु यस्य मे ।
दैवीना मानुषीणा च प्रतिहर्ता त्वमापदाम् ।। रघु० सर्ग १ पद्य ६० ।।

(ग) तद्दर्शनादभूच्छंभोर्भूयान्दारार्थ मादर । कुमार० सर्ग ६ पद्य १३।

(घ) अपि प्रसन्नेन महर्षिणा त्व सम्यग् विनीयाऽनुमतो गृहाय ।
कालोह्यय सक्रमितु द्वितीय सर्वोपकारक्षममाश्रम ते ।। रघु० सर्ग ५ पद्य १०

(ङ) तदुपहि तकटुम्ब शान्तिमार्गोत्सुकोऽभू- ।
न्नहि सतिकुलधुर्ये सूर्यवश्या गृहाय ।। रघु० सर्ग ७ पद्य ७१ ।।

(च) मुनिवनतरुच्छाया देव्या तया सह शिश्रिये ।
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिद हि कुलव्रतम् ।। रघु० सर्ग ३ प० ७०

(छ) भूत्वा चिराय चतुरन्त मही सपत्नी
दौष्यन्ति मतिरथं तनप्रनिवेश्य ।
भर्त्रातदर्पित कुटुम्बभरेण सार्ध
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमे ऽस्मिन् ।। शाकुन्तल अंक ४ पद्य २० ।।

चोर-डाकू, शत्रु आदि मानुषी आपत्तिया नही सताती क्योकि नीति-निपुण आपके तप तथा मन्त्रणा के प्रभाव से मेरे शासन-तन्त्र के सब अग--राजा, मन्त्रिमण्डल, मित्र राष्ट्र, राजकोष, जनता, दुर्ग तथा सेना सब स्वस्थ है। आपके ये उपाय मेरे अलक्ष्य शत्रुओं को भी दूर से ही नष्ट कर देते है। अत मेरे वे शस्त्र तो बेकार ही हो गए जो केवल दीखने वाले लक्ष्य पर ही प्रहार कर सकते है।

कालिदास वर्ण धर्मों के साथ आश्रम धर्मो के पालन पर भी बहुत बल देता है। सपत्नीक वशिष्ठ को देख शिवजी की भी गृहस्थ बनने की इच्छा प्रबल होगई--यह कुमार सभव के प्रकरण मे लिखा जा चुका है। रघुवश मे भी रघु कौत्स से पूछता है, "क्या गुरूजी ने तुम्हे खूब पढा लिखा कर, प्रसन्न चित्त से घर जाने की अनुमति दी है, क्योकि तुम सब आश्रमो का उपकार करने मे समर्थ गृहाश्रम मे प्रवेश के योग्य हो गए हो ?" फिर वही रघु एक दिन युवा पुत्र अज पर उत्तरदायित्व डालकर वानप्रस्थ हो जाता है। उसके पिता दिलीप ने भी यही किया था। कालिदास ने कण्व द्वारा शकुन्तला को भी कहलवाया था, "जब दुष्यन्त राज्य का भार पुत्र को सौपकर निश्चिन्त हो जाएगा तब तू उसके साथ ही इस आश्रम मे रहने को आएगी।" कालिदास ने रघुवश के आठवे सर्ग मे वानप्रस्थ आश्रम मे प्रविष्ट रघु तथा राज्य मे नवाभिषिक्त अज की साधनाओं का जो सुन्दर वर्णन तुल्ययोगिता¹ अलकारो की माला बनाकर किया है वह पढने योग्य है।

समाज की उन्नति के लिए राज्य मे सुख, शान्ति, समृद्धि तथा सुव्यवस्था का होना अत्यावश्यक है और इसका मुख्य आधार ऐसा शासक है जो प्रतापी,

---

१ (क) यतिपार्थिवलिङ्गधारिणौ ददृशाते रघुराघवौ जनै ।
अपवर्गमहोदयार्थयोर्भुवमशाविव धर्मयोर्गतौ ।
अजिताधिगमाय मन्त्रिभिर्युयुजे नीतिविशारदैरज ।
अनपायि पदोपलब्धये रघुराप्तै समियाय योगिभि ।।
न नव प्रभुरा फलोदयात्स्थिर कर्मा विरराम कर्मण ।
न च योगविधेर्नवेतर स्थिरधीरा परमात्मदर्शनात् ।।
इति शत्रुषु चेन्द्रियेषु च प्रतिषिद्धप्रसरेषु जाग्रतौ ।।
प्रसितावुदयापवर्गयो रुभयी सिद्धि मुभाववापतु ।।
रघु० सर्ग ८ पद्य १६, १७, २२, २३ ।।

(ख) यथा प्रह्लादनाच्चन्द्र प्रतापात्तपनो यथा ।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरजनात् ।। रघु० ४ पद्य० १२ ।।

जागरूक, जितेन्द्रिय और न्याय-परायण तो हो ही किन्तु प्रजा के पालन तथा अनुरजन को भी अपना परम कर्त्तव्य समझे। कालिदास ऐसे राजा को इन्द्रादि लोकपालो की विभूतियो से युक्त तथा पितृ-तुल्य मानता है। अपने काव्य के आरम्भ मे उसने आदर्श राजाओ के गुणो की तालिका[1] देते हुए लिखा है, "वे जन्म से ही शुद्ध पवित्र थे और उन्होने अपने चरित्र को कभी कलकित नही होने दिया। वे जिस काम को हाथ मे ले लेते थे उसे पूरा करके ही छोड़ते थे। उनके राज्य का विस्तार समुद्र पर्यन्त था और उनके रथ की गति सर्वत्र बेरोक-टोक थी। वे विधिपूर्वक यज्ञ-याग करते तथा याचको को भरपूर दान देते थे। वे अपने-पराये का विचार किए बिना अपराधी को दण्ड देते और अवसर के लिए सदा सतर्क रहते थे। वे दान के लिए धन-सग्रह करने तथा यश के लिए विजय-यात्रा करते थे। वे बचपन मे विद्याभ्यास कर जवानी मे सासारिक सुखो का उपभोग करते और सतान उत्पन्न करने के लिए विवाह करते थे। बुढापे मे वे मुनिवृत्ति धारण कर वनो मे चले जाते और अन्त मे योग द्वारा प्राण त्याग देते थे।" इसके आगे सारे काव्य मे उसने यह दिखाया है कि रघुवशी राजा इन गुणो की कसौटी पर पूरे उतरते है और उनका चरित्र आदर्श है।

रघुवश मे राजा दिलीप से अग्निवर्ण तक सूर्य वश के २५ राजाओ की जीवन कथा सरस काव्यशैली मे लिखी गई है। इसमे १० से १५ तक ६ सर्गो मे रामकथा का सक्षेप वाल्मीकि रामायण के आधार पर दिया गया है। उसमे कवि को अपनी तरफ से कुछ जोडना या विशेष परिवर्तन करना नही पड़ा है। किन्तु अन्य राजाओ के चरित्र के विकास के लिए उसने पौराणिक पद्धति पर अनेक प्रकार की कथाओ की सृष्टि की है। जिनमे उसका मन खूब रमा है, और उसकी उन्मुक्त प्रतिभा को अपना चमत्कार दिखाने का भी अच्छा अवसर मिला

---

१ सोऽहमाजन्म शुद्धानामाफलोदय कर्मणाम्।
आसमुद्रक्षितीशाना मानाकरथवर्त्मनाम्॥
यथाविधिहुताग्नीना यथा कामार्चितार्थिनाम्।
यथापराधदण्डाना यथाकालप्रबोधिनाम्॥
त्यागाय सभृतार्थाना सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणा प्रजायै गृहमेधिनाम्॥
शैशवेऽभ्यस्तविद्याना यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीना योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥ रघु० सर्ग १ पद्य ५–८।

है। इन कथाओ के कारण रघुवश सुन्दर महाकाव्य बनगया है और उसमे विषयों की विभिन्नता तथा गतिशीलता आगई है । ये प्रसग इतने रोचक है कि इनमे पाठक की उत्सुकता अन्तिमक्षण तक बनी रहती है । रघुवश मे से यदि इन्हे निकाल दिया जाए तो वह महाकाव्य ही न रहेगा ।

राजा दिलीप तथा सिह की कथा–वैवस्वत मनु के वश मे राजा दिलीप का जन्म हुआ वह उत्तर कोशल राज्य का स्वामी था और उसकी राजधानी अयोध्या थी । वह यद्यपि सब तरह से सुखी था किंतु सतान का अभाव उसके हृदय मे काटे सा खटकता रहता था । अत वह एक दिन रानी सुदक्षिणा को साथ ले गुरु वशिष्ठ के आश्रम मे पहुँचा। सायकाल सन्ध्या बन्दन के पश्चात् गुरू ने उन्हे दर्शन दिए । राजारानी ने गुरू तथा गुरूपत्नी के चरणों मे प्रणाम किया और राज्य मे कुशल क्षेम का समाचार सुनाकर अपने आने का प्रयोजन कहा। सुनकर गुरु कुछ क्षण तक समाधिस्थ हो सोचते रहे और फिर बोले,' तुम एक दिन स्वर्ग से घर को लौट रहे थे । बहुत जल्दी मे होने के कारण तुमने मार्ग मे खडी कामधन सुरभी का उचित सत्कार नही किया, यह उसी के शाप का फल है। ऋषि यद्यपि अपने तप के बल से ही राजा की कामना पूरी कर सकते थे तो भी कठोर साधना तथा नियत्रण की शिक्षा देने और उससे भी कही अधिक गो-सेवा का महत्व प्रकट करने के उद्देश्य से उन्होने राजा को वन्यवृत्ति स्वीकार कर अपनी गऊ की सेवा करने को कहा, तदनुसार राजा उसे चराने के लिए प्रतिदिन बन मे लेजाने तथा भक्तिभाव से उसकी सेवा करने लगा। एक दिन, वह जब, पर्वतीय दृश्यो की सुषमा का आनन्द ले रहा था तभी उसने अकस्मात् गऊ का करुण-क्रन्दन सुना और देखा कि एक सिह ने उसे दबोच लिया है । सिह को मारने के लिए तीर निकालने को उसने हाथ उठाया ही था कि वह वही ठिठक गया । राजा मन ही मन बहुत झुझलाया पर करता क्या? यह देख सिह मनुष्य की तरह बोलकर कहने लगा कि वह शिवजी का कुभोदर नामक सेवक है जो उनकी आज्ञा से देवदारूओ के बन की रक्षा के लिए वहाँ रहता है और जो जीवजतु उधर आ निकलते है वह उन्हे ही खाकर जीता है । उसने बडे मित्रभाव से राजा को समझाया, "विश्व मे तुम्हारा एकछत्र राज्य है, तुम्हारी यह नौजवानी और ऐसा सुन्दर शरीर ! एक साधारण सी गऊ के लिए तुम इन सब मे हाथ धो रहे हो । तुम्हारा यह काम मुझे समझदारी का नही लगता । तुम इस तरह की कितनी गउए देकर ऋषि को प्रसन्न कर सकते हो।" इसपर राजा ने उत्तर दिया, "क्षत्रिय किसी पर अत्याचार नही होने

देता और इसी से उसके क्षत्रिय नाम की सार्थकता है। यदि मैं ऐसा न कर सकू तो मेरा राजा कहलाना किस काम का ? और मै इस कलक से कलुषित जीवन के भार को उठाना नही चाहता। तुम कहते हो," इसके बदले अनेक गउएँ देकर मै ऋषि को प्रसन्न करलू । किन्तु यह सभव नही क्योकि यह कोई साधारण गऊ नही और तुमने शिवभगवान् के बल के सहारे इस पर आक्रमण किया है। अत उचित है कि मै अपने प्राणो की बलि देकर इसे तुम से छुडा लू । इस प्रकार तुम भी भूखे न रहोगे और ऋषि की यह गऊ भी मरने से बच जाएगी। इस पर सिह सहमत हो गया और राजा की वह बाह जो आधी उठकर ही जकड गई थी, एक दम खुल गई। राजा ने हथियार फेक दिए और वह सिर नीचा कर सिह के आगे पड गया। वह उसकी झपट की अशका कर ही रहा था कि आकाश से फूलो की वर्षा होने लगी और गऊ ने राजा को कहा, "पुत्र, उठ तेरी इच्छा पूर्ण होगी," राजा का व्रत समाप्त हुआ और कुछ समय पश्चात् रानी सुदक्षिणा के गर्भ से रघु का जन्म हुआ। रघु शीघ्र ही सब विद्याओ मे पारगत तथा शस्त्रास्त्रों के प्रयोग मे कुशल हो गया। राजा दिलीप निन्यानवे यज्ञ तो कर चुका था। अब उसने सौवा भी करना चाहा और रघु की सरक्षकता मे अश्वमेघ का घोडा छोड दिया गया। घोडे को पकडने का साहस किसी राजा को न हुआ। यह देख इन्द्र को भय हुआ कि यदि दिलीप के सौ यज्ञ पूरे हो गए तो वह भी इन्द्र-पद का अधिकारी बन जायगा अत उसने घोडा चुरा लिया और उसके साथ ही अदृश्य हो गया। रघु कुछ समझ न सका कि क्या मामला है तभी अकस्मात् वहा नन्दिनी गऊ प्रकट हुई जिसके वर से रघु का जन्म हुआ था। गऊ[1] की कृपा से रघु को दिव्य दृष्टि प्राप्त होगई और उसने इन्द्र को घोडा लेजाते देखा। उसने इन्द्र को समझाने का यत्न किया किन्तु जब वह न माना तो ललकार कर कहा कि युद्ध मे रघु को हराए बिना तुम घोडा न ले जा सकोगे। घमासान लडाई छिड गई और रघु ने एक तीर से इन्द्र के धनुष की डोर को काट डाला। इस पर इन्द्र बहुत बिगडा और उसने रघु पर वज्र से प्रहार किया। किन्तु रघु इसे भी झेल गया। यह देख इन्द्र प्रसन्न हुआ और उसने रघु को वर दिया कि उसके पिता को घोडे के बिना ही यज्ञ का सम्पूर्ण फल प्राप्त हो जाएगा और इन्द्र ने यह समाचार अपने विशेष दूत द्वारा दिलीप के पास भी भिजवा

---

१. कुछ आश्चर्य नही कि इस कथा को लिखते समय कवि का एक उद्देश्य गऊ की महिमा का प्रतिपादन भी रहा हो।

दिया। जब रघु लौट आया तो दिलीप उसे राज्य दे स्वय साधना के लिए वन को चला गया।

राज्य प्राप्त कर रघु विजययात्रा पर निकला और उसने पूर्व मे बंगाल, आसाम और दक्षिण मे रामेश्वरम एव केरल तक तथा पश्चिम मे फारस और उत्तर मे हिमालय तक सर्वत्र अपनी विजय ध्वजाए गाड़ दी। फिर विश्वजित् नामक यज्ञ में उसने अपनी समस्त सम्पत्ति दान कर दी। यहा तक कि भोजन के लिए भी उसे मिट्टी के पात्र रखने पडे। तभी कौत्स नामक एक ब्रह्मचारी गुरुकुल में अपनी शिक्षा पूर्ण कर गुरु-दक्षिणा के लिए चौदह करोड स्वर्ण मुद्राए मांगने उसके पास आया। विद्वान् ब्राह्मण को अपने द्वार से खाली हाथ लौटने देना उसने अपने लिए अपमानजनक समझा अत धन-प्राप्ति के लिए कुबेर पर चढाई का विचार किया। कुबेर जानता था कि गुरु वशिष्ठ के मन्त्रो के प्रभाव से उसके रथ मे ऐसी शक्ति थी कि वह समुद्र, आकाश तथा पर्वतों पर अबाध गति से चल सकता था अत वह डर गया और उसने रातो-रात रघु के कोष को अनन्त धन से भर दिया और रघु ने वह समस्त धन ब्रह्मचारी को समर्पित कर दिया किन्तु ब्रह्मचारी ने गुरुदक्षिणा की मात्रा से एक पैसा भी अधिक न लेना चाहा। यह देख अयोध्या निवासी दग थे कि दाता के दान की अधिक प्रशसा करे या याचक की निस्पृहता की। ब्रह्मचारी के आशीर्वाद से रघु को अज नामक पुत्र प्राप्त हुआ। अज युवा हुआ तो विदर्भ की राजकुमारी इन्दुमती के स्वयम्वर का निमन्त्रण आ पहुचा और रघु ने सेना की एक छोटी-सी टुकडी के साथ उसे वहा भेज दिया। वह नर्मदा के तट पर पहुचा ही था कि सेना की हलचल से क्षुभित हुआ एक महाकाय गन्धगज जल से निकलकर एकाएक शिविर पर टूट पडा। उसने तम्बुओ को रौंद दिया और रथो को तोड-फोड़ डाला। घोडे बागडोर तुड़वाकर भागने लगे और स्त्रिया घबरा गईं। सारे शिविर मे भगदड मच गई। यह देख अज ने क्षत्रिय के धर्म का विचार करते हुए, उस हाथी को केवल डरा देने के उद्देश्य से एक सादा सा तीर छोड दिया। उसके लगते ही हाथी एक सुन्दर गन्धर्व-कुमार बनकर अज के सामने आ खडा हुआ और बोला, "चोट करते हुए भी तुमने मुझे कम-से-कम कष्ट दिया। तुम्हारे इस उपकार को स्वीकार न करना कृतघ्नता है अत इसके बदले मे मैं अपना यह समोहनास्त्र भेट करता हू। इससे बिना हिंसा किए शत्रु को जीता जा सकता है। अज उसके अनुरोध को न टाल सका और मित्रता के सूत्र मे बध दोनो ने अपनी-अपनी राह ली। स्वयवर सभा में इन्दुमती ने अज को वर लिया और दोनो का विवाह हो गया। अज अपनी नवपरिणिता वधू के साथ

जब लौट रहा था तब स्वयंवर में पराजित राजाओ ने मिलकर उसे घेर लिया। युद्ध छिड गया और अस्त्र-शस्त्र चलने लगे। दोनो सेनाओं के पैदल पैदलो से और रथी रथियो से भिड़ गए। घुडसवार घुड़सवारो से तथा हाथी सवार हाथी-सवारो से जूझ पडे और बराबर जोट की लडाई होने लगी। घोडो की टाप से उठी धूल पहियो से उडी हुई धूल से मिलकर घनी हो गई और हाथियो के हिलते-डुलते कानों ने उसे ऊपर तक ऐसा फैला दिया कि सूर्य भी ढक गया। पर आँखो को ढक लेने वाले उस धूल-रूपी अंधकार को हाथी घोडे और सैनिको के शरीर से बहे, नवोदित सूर्य से लाल रुधिर-प्रवाह ने शीघ्र ही शान्त कर दिया। जिन दो योद्धाओं के सारथि मारे गए, वे अपना रथ भी आप ही हाँकने लगे, जब उनके घोडे भी मर गए तो वे रथो से उतर, पैदल ही गदायुद्ध करने लगे और गदाओ के भी टूट जाने पर खाली हाथ गुत्थम-गुत्था हो गए। जैसे विरुद्ध दिशाओ से आते प्रबल प्रभजन के झकोरो से महासागर की लहरो मे से कभी कोई आगे बढ जाती है और कभी कोई, वही हाल दोनो सेनाओ का था। कोई हारती या जीतती न थी। किन्तु शत्रु पक्ष सख्या मे बहुत अधिक था अत अन्त मे उसने अज की सेना को पीछे धकेल दिया तो भी वह पीछे न हटा। वायु धूए को भले ही उड़ा दे पर आग तो सूखे जगल की तरफ बढती ही जाती है। वह कब तीर निकालता था और कब उसे धनुष पर रख कर छोडता था—यह पता न चलता था। ऐसा जान पड़ता था कि मानो कान तक खिची उसके धनुष की डोर ही शत्रु के सहारकारी बाणो को सिरजती चली जा रही है। अन्त मे अज ने प्रियवद नामक गन्धर्व के दिए समोहनास्त्र को शत्रुओं पर छोड दिया जिसके प्रभाव से वे सब एकदम तसवीर से बन गए। उनके हाथ जहा के तहा रह गए, सिर की पगडियाँ कन्धो पर लटक पडी और वे ध्वजा के डडे का सहारा ले ऊघने लगे। यह देख अज इन्दुमती के पास पहुँचा और वीर बडे दर्प से बोला, "हे विदर्भ-राजकुमारी, जरा इन राजाओ को तो देखो जो अपनी इस बहादुरी के बलबूते पर तुम्हे मुझसे छीनना चाहते थे।" इसके बाद उसने अपने विजय शख को बजाया और उन्हे सोता छोड़ आगे बढ गया। जब वह अयोध्या पहुँचा तो रघु ने इन्दुमती सहित उसका खूब स्वागत किया और राज्य का भार उसे सौप स्वय बन को चला गया और वहा एक दिन योग द्वारा प्राण त्याग दिए।

अज अपने नीतिकुशल मन्त्रियो से मिल-जुलकर राजकाज देखने लगा और शीघ्र ही साम दाम आदि उपायो तथा सन्धि विग्रह आदि षड् गुणो के प्रयोग

मे कुशल हो गया । उसकी प्रभु शक्ति खूब बढी हुई थी अतः उसने अपने पडौसी राज्यो पर अपना दबदबा बैठा दिया और शत्रु राजाओ के मन के मनसूबे मन मे ही रह गए। देश मे सर्वत्र सुख और शान्ति का राज्य था । राजा एक दिन अपनी रानी इन्दुमती के साथ उद्यान मे विहार कर रहा था कि आकाश-मार्ग से जा रहे नारद जी की वीणा से गिरी देवकुसमो की माला नीचे आ पडी और उसकी चोट से सुकुमारी रानी के प्राण पखेरू उड़ गये। देखते-देखते रंग मे भग हो गया । अज के लिये ससार सूना हो गया और वह अधीर हो करुण-विलाप करने लगा । उसने फूलो की उस माला को अपनी छाती पर रख लिया और कहने लगा यदि उसमे ऐसी मारण-शक्ति है तो वह उसे क्यो नही मारती । वह दैव को भी उलहना देने लगा कि इन्दुमती को हर कर उसने उसका क्या नहीं छीन लिया क्योंकि वह तो उसकी गृहिणी, विश्वस्तसचिव, सखी, तथा ललित कलाओं मे उसकी प्रिय शिष्या--सभी कुछ थी । उसके विलाप को सुनकर लता वृक्ष भी मानो आँसू बहाने लगे । बन्धु-बान्धवो ने बहुत समझा बुझाकर, किसी तरह रानी की अन्तिम क्रिया तो कर ही दी पर राजा का चित्त स्थिर न हुआ । गुरु वसिष्ठ उन दिनो किसी साधना मे व्यस्त थे, स्वय न आ सकते थे अत उन्होने अपने एक शिष्य को भेजकर कहलवाया, "तुम्हारा उससे इतने ही दिनो का सयोग था । वह तो हरिणी नामक एक अप्सरा थी जो तृणबिन्दु नामक ऋषि की तपस्या मे विघ्न डालने के लिए, इन्द्र की आज्ञा से गई थी और जिसे उस ऋषि के शाप से मर्त्यलोक मे उतर तुम्हारी पत्नी बनना पडा था । ऋषि के वचनानुसार देवकुसुम के दर्शन से उसका शाप जाता रहा और वह सद्गति प्राप्त कर स्वर्ग को चली गई । तुम उसके लिये शोक न करो । ससार मे जो भी जन्म ग्रहण करता है उसका मरण अवश्यभावी है । अब तुम अपना सारा ध्यान प्रजा-पालन मे लगा दो क्योकि वह तुम्हारा प्रधान कर्त्तव्य है । तुम मर कर भी अब उसे नही पा सकते, रोकर तो कहना ही क्या ? सब प्राणी मरकर, कर्मो के अनुसार अपनी अलग-अलग राह ले लेते है । प्रियजन की मृत्यु को मूर्ख ऐसा समझते है मानो किसी ने हृदय मे खूटा ठोक दिया हो, किन्तु विद्वान् उसे ही दु खो से छुटकारा मानते है । एक दिन यह आत्मा अपने ही शरीर को छोड़कर चल देती है फिर दूसरे बाह्य विषयो से अलग होने पर विद्वान् क्यो दु खी हो ।" किन्तु इस उपदेश का भी राजा के हृदय पर यथेष्ट प्रभाव न हुआ । तो भी शिशु पुत्र दशरथ जब तक राज्य सभालने योग्य न हो जाए तब तक उसने जीवित रहने का निश्चय किया । यद्यपि शोकरूपी बरछी से उसका हृदय भीतर ही भीतर बुरी तरह बिध गया

था तो भी विरह के कठिन आठ वर्ष उसने किसी प्रकार काट दिए और एक दिन सुशिक्षित नवयुवक पुत्र दशरथ को राज्य प्रदान कर उसने गगा तथा सरयू के पवित्र संगम-स्थल पर आमरण अनशन द्वारा शरीर छोड दिया।

इसके आगे दशरथ तथा राम की सारी कथा कवि ने संक्षेप में प्राय. वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही दे दी है जिसके अन्त मे लक्ष्मण के मरण तथा यमराज की प्रार्थना पर श्री राम के वैकुण्ठ गमन का वर्णन हृदयस्पर्शी है। श्री राम ने महा प्रस्थान से पूर्व ही सारे राज्य को चारो भाइयो के आठ पुत्रों मे बाट दिया था। इनमे कुश सबसे बडा था और उसे ही श्री राम ने उत्तराधिकार मे एक विशेष रत्न दिया था जो उन्हे अगस्त्य ऋषि से प्राप्त हुआ था। कुश ने अपनी नयी राजधानी कुशावती बनाई और वहा रहकर राज्य करने लगा।

एक दिन, आधी रात के सन्नाटे में जब घर के सब लोग सो रहे थे, कुश की नीद अचानक टूट गई और उसने भीतर से बन्द अपने शयनागार मे, टिमटिमाते दीपक के झिलमिल प्रकाश मे एक ऐसी स्त्री को देखा जिसका वेश वियोगिनी का सा था। उसने विस्मित हो पूछा कि वह कौन है, वहा क्यो आई है, और वह यह तो जानती ही होगी कि "रघुवशियो का चित्त किसी पराई नारी पर कभी चलायमान नही होता? इस पर वह स्त्री हाथ जोडकर बोली, "तुम्हारे पिता श्री राम वैकुण्ठ जाते समय जिसके निष्पाप निवासियो को भी अपने साथ ले गए मै उसी सूनी अयोध्या नगरी की अनाथ अधिष्ठात्री देवी हू। कोई स्वामी न रहने से मेरे मकान, महल खण्डहर हो गए है और बड़ी-बडी शालाए विध्वस्त। उनके कारण सारा प्रदेश उस पश्चिमाकाश-सा प्रतीत होता है जिसमे सूर्यास्त के समय पवन के प्रबल झकोरो से छिन्न-भिन्न मेघ खण्ड जहा-तहा बिखर गए हो। मेरी क्रीडा वापिकाओ का जो जल कभी वारिविहार करनेवाली कामिनियो के कोमल करकमलो के आघात से मृदग के समान मधुर ध्वनि किया करता था वह आज जगली भैंसो के तीखे सीगों की चोट से चीखता सा लगता है। महलों की जिन सीढ़ियो पर कभी महिलाओं के महावर लगे पैर पडा करते थे उनपर आज तत्काल मारे हरिण के ख़ून से सने पैरो वाले बाघ घूमते है। बहुत दिनो सफ़ाई न होने से चूने के लेपवाले मेरे धवल प्रासाद काले पड़ गए हैं और उन पर जगह-जगह घास जम आई है अतः मोतियो की लडियो-सी उजली भी चांदनी उनपर पड़कर अब नही जगमगाती।

जिनकी डार को बडी सम्हार के साथ सहज से झुका के कभी विलासिनियां फूल चुना करती थी, आज भीलों जैसे जगली बन्दरों ने मेरी उन उद्यानलताओं को उजाड़ दिया है। मेरे घरो मे अब रात को दिये नही जलते, और दिन मे उन्हें सुन्दरियो की मुखकान्ति अलकृत नही करती। उनके झरोखो से अब धुंआ नही निकलता और उनमे मकडियो ने जाले तन लिये है। यह सब कुछ मुझसे नहीं देखा जाता, इसलिये अपना दुखडा रोने यहा आ गई हू। मेरी प्रार्थना है कि तुम फिर वही चलो और अपनी पुरानी कुलराजधानी की सुध लो।" यह सुनकर, मन्त्रियों की सलाह ले कुश अयोध्या लौट आया और उसने परिश्रम से, कुशल शिल्पियों द्वारा उसका जीर्णोद्धार किया। उसमे फिर चहल-पहल हो गई। उसके बाजार विक्रय की बहुमूल्य वस्तुओं से सज गये और घोडो से घुड़साले तथा हाथियो से हथसार भर गई। वह नगरी सब अगो मे आभूषणों से सजी युवति-सी सुन्दर दीखने लगी।

इन्ही दिनो ग्रीष्म का आगमन हुआ और कुश के मन मे इच्छा हुई कि रानियो सहित जाकर गर्मियो मे सुखद सरयू के उस शीतल जल मे स्नान का आनन्द लिया जाय जिसकी लहरियो मे मस्त राजहसों के जोडे तैर रहे है और तरु लताओ से झडे हुए फूल बह रहे है। तभी मछुओं ने जाल डालकर सरयू को दूर-दूर तक मकर आदि जल-जन्तुओं से शून्य कर दिया और उसके तट पर शामियाने गड गये। जब कुश की रानिया नहाने के लिये एक साथ जल मे उतरी तो उनकी बाहो मे बधे अनन्त आपस मे टकरा गये और पैरो मे पहने बिछुओ की झनकार को सुन वहा तैर रहे राजहस मचल उठे। रानिया एक दूसरे पर छीटे उडाकर खेलने लगी। उनकी आखो मे लगा अजन पानी से धुल गया, कानो मे लगे शिरीष के करनफूल गिरकर तैरने लगे और गले मे पड़े मोतियो के हार टूट कर बिखर गये। उनकी साडी छाती और नितम्बो पर चिपक गई, जूडे खुल पडे, गाल और छाती पर चीती पत्ररचना धुल गई, मोतियो के कनफूल खिसक गये और इस प्रकार उनका सारा वेश अस्तव्यस्त हो गया तो भी उनके भीगे मुखडे बडे प्यारे लगते थे। यह देख राजा भी उनके साथ विहार के लिये जल मे उतर गया। इच्छानुसार जलक्रीड़ा कर वह बाहर आया तो पता चला कि उसकी भुजा का वह दिव्य आभूषण कही गिर गया है जो राज्याभिषेक के अवसर पर, स्वयं श्रीराम ने उसे दिया था और जिसे वह मागलिक तथा अपने पिता की पवित्र यादगार समझता था। गोताखोर लोग बडी लगन से उसे खोजने लगे पर वह हाथ न आया। तब

निराश हो कर मछुओं ने कहा कि महाराज, इस जल में कहीं कुमुद नामक नागराज रहता है, हो न हो, वह रत्न उसी ने हथिया लिया है। यह सुनते ही कुश के नेत्र मारे क्रोध के लाल हो गये और उसने नागो का नाश करने वाला गरुडास्त्र अपने धनुष पर चढा लिया। धनुष पर उस बाण के चढते ही सरयू के दह मे खलबली मच गई। जल खौलने सा लगा, बडी-बडी तरगे उठ तट से टकराने लगी और ऐसा भयानक कोलाहल हुआ मानो गढे मे गिर पडा कोई महागज चिंघाड रहा हो। इस भयकर दृश्य को देखकर जल के जन्तु घबरा उठे और तभी नागराज कुमुद एक सुन्दर कन्या को आगे किये, जल मे से प्रकट हुआ। कन्या के हाथ मे वही रत्न था। कुमुद ने हाथ जोड कुश को प्रणाम किया और बोला "आप विष्णु भगवान् के अवतार श्री राम के पुत्र है यह मै जानता हू। यह कन्या मेरी छोटी बहिन कुमुद्वती है। अपनी गेद उछाल कर यह खेल रही थी तभी इसने आपका यह आभूषण ऊपर से गिरता हुआ देखा और कुतूहलवश, अल्हडपन से इसे बीच में ही लपक लिया। अब अपने इस निर्दोष अपराध का परिमार्जन करने को यह जन्म भर आपकी सेवा मे रहना चाहती है अत आप इसे पत्नी रूप में स्वीकार कीजिए। कुश ने उस प्रस्ताव का अभिनन्दन किया और कुमुद ने सगे सम्बन्धियो को एकत्र कर, बडी धूम-धाम मे अपनी बहिन का विवाह कुश के साथ कर दिया। आकाश से पुष्पो की वर्षा होने लगी और इस प्रकार इक्ष्वाकुवश तथा नागकुल मे परस्पर मधुर सम्बन्ध का सूत्रपात हुआ।

बुद्धि जिस प्रकार रात के चौथे पहर से प्रसाद को प्राप्त करती है उसी प्रकार कुमुद्वती ने कुश से अतिथि नामक पुत्र पाया। अतिथि शीघ्र ही सब विद्याए पढ़ कर विद्वान् तथा वीर होगया। कुश अपनी कुल-परम्परा के अनुसार एकबार युद्ध मे इन्द्र की सहायता के लिये गया था, वहा उसने दुर्जय नामक दानव को मार तो दिया पर स्वय भी उसके हाथो वीरगति को प्राप्त हुआ। तब मन्त्रियो तथा पुरोहित आदि ने मिलकर अतिथि को राजा बना दिया। जवानी रूप तथा ऐश्वर्य-इनमें से एक एक भी मनुष्य को उन्मत्त बनाने वाला है किंतु उसे तीनों मिलकर भी विचलित न कर सके। उसका मुख सदा प्रसन्न रहता और वह सबसे हँस कर बात करता था। वह कोरी कूटनीति को भीरुता तथा उच्छृंखल बल प्रयोग को पशुवृत्ति समझता था। अत शत्रु को जीतने के लिए दोनो को मिलाकर काम मे लाने का पक्षपाती था। वह प्रतिदिन मन्त्रियों से मिलकर उनकी सलाह लेता था किन्तु उसका भेद खुल नही सकता था। उसने स्वराष्ट्र तथा

परराष्ट्रो मे अपने गुप्तचरों का जाल बिछा रक्खा था और वे आपस मे भी एक दूसरे को न जानते थे। उनसे उसे सब भेद पता चलता रहता था। उसने अर्थ और काम के लिए यदि कभी धर्म की उपेक्षा नही की तो उसका धर्म भी कभी इनके रास्ते का रोडा नही बना। उसके ये तीनो सतुलित रहते थे। वह सदा सतर्क रहता था, तथा अवसर मिलते ही शत्रु के निर्बल अग पर चोट कर उसके प्रयत्नो को विफल करने मे कभी न चूकता था और अपनी निर्बलता को शीघ्र ही चुपचाप सुधारने का यत्न करता था। वह सन्धि विग्रह आदि गुणो तथा साम दाम आदि उपायो का प्रयोग खूब सोच समझ कर करता था। वह कूट युद्ध की चालो को खूब समझता था अत शत्रु के फन्दे मे नही पडता था किन्तु स्वय धर्मयुद्ध ही करता था। इस प्रकार बुद्धि तथा नीतिशास्त्र के अनुसार चलने के कारण उसका प्रताप बहुत बढ गया और वह देवताओ के राजा इन्द्र की तरह सब राजाओ का राजाधिराज हो गया। उसने अनेक यज्ञ किए और बडी बडी दक्षिणाए दी जिनके कारण लोग उसे दूसरा कुबेर कहने लगे। इन्द्र उसके राज्य मे जल बरसाता, यमराज रोग और अकालमृत्यु का नियन्त्रण करता, वरुण समुद्र यात्राओ मे सुख-सुविधा का प्रवन्ध करता और कुवेर उसके कोष को धनसपत्ति से भरपूर रखता था। मानो ये लोकपाल भी उसके प्रताप से भय-भीत हो आधीन राजा की तरह उसकी सेवा मे लगे रहते थे। इस प्रकार बहुत वर्ष तक राज्य कर अतिथि अपने युवा पुत्र निषध को राज्य देकर अपने उज्वल कार्यो से उपार्जित सुखो का भोग करने के लिए स्वर्ग लोक को चला गया।

निषध के पश्चात् नल से ध्रुवसधि तक, उसके वश के १५ राजाओ ने शासन किया। सुदर्शन ६ वर्ष का बालक ही था कि सिह का शिकार खेलते उसके पिता राजा ध्रुवसधि की मृत्यु हो गई। मन्त्रियो ने सुदर्शन को राजा घोषित कर दिया और वे बडी सावधानी से उसका पालनपोषण करने लगे। प्रजा बडी राज भक्त थी अत वह जब कभी हाथी पर सवार हो निकलता तो सब उसे पिता की तरह मानते और सिर झुकाकर प्रणाम करते। यद्यपि उसका शरीर शिरीष कुसुम सा सुकुमार था और वह गेद खेलते भी थक जाता था तो भी उसका तेज ऐसा था कि राज्य मे कोई अव्यवस्था न हो सकती थी। यद्यपि उसके हाथो मे वे घट्टे न पडे थे जो धनुष के अभ्यास से हो जाया करते है और उसने तलवार पकडना भी न सीखा था तो भी उसका प्रताप राज्य की रक्षा मे समर्थ था। बहुत शीघ्र उसके शरीर के सब अग ही पूर्ण वृद्धि को

प्राप्त नही होगए, किन्तु अपने कुलोचित समस्त कमनीय गुणों से भी वह युक्त हो गया । वह पढने बैठा तो पूर्व जन्म के सस्कारो के कारण अनायास ही न केवल शास्त्रो मे किन्तु शस्त्र चलाने मे भी सिद्धहस्त होगया । सुदर्शन ने बहुत दिन न्याय पूर्वक प्रजा का पालन किया और अन्त मे अपने पुत्र अग्निवर्ण को राज्य दे वह तप के लिए नैमिषारण्य चला गया ।

अग्नि वर्ण को राजकाज सम्हालने मे कुछ प्रयत्न न करना पड़ा क्योकि सब काम पहले से ही सुव्यवस्थित थे । अत वह धीरे-धीरे आराम तलब होगया और विषयभोगो मे बुरी तरह फँस गया । उसे नृत्यगान और मदिरा पान से ही छुट्टी न मिलती थी दरबार मे बैठ कर प्रबन्ध की बात सोचना तो दूर रहा । एक बार प्रजा ने उसके दर्शनो के लिए बहुत आग्रह किया तो उसने झरोखे से अपना एक पैर बाहर लटका दिया । इस सब का फल यह हुआ कि एक दिन वह भयकर क्षय रोग का शिकार होगया और वैद्यो के प्रयत्न भी उसे न बचा सके । वह मर गया तब मन्त्रियो ने उसकी गर्भवती रानी का विधिवत् राज्याभिषेक कर दिया और वह सिंहासन पर बैठ कर उन की सलाह से राज काज चलाने लगी । उसके आदेश की उपेक्षा करने का दु:साहस कोई नही कर सकता था ।

दिलीप––रघुवश के प्रारम्भ मे ही पाठक की भेट एक ऐसे व्यक्ति से होती है जिसका शरीर विशाल तथा हृष्ट-पुष्ट है । यही इस काव्य का प्रथम नायक दिलीप । दिलीप मूर्तिमान् क्षत्रियत्व प्रतीत होता है । वह रूपवान् ही नही, बुद्धिमान् भी है और साथ ही विद्वान् भी । वह जो

पात्र तथा चरित्र-चित्रण

कुछ करता है, वह बुद्धि तथा शास्त्र के अनुसार ही अत. उसका फल भी उसे तदनुरूप ही मिलता है । वह न तो ऐसा उग्र है कि कोई पास ही न फटके और न इतना मीठा कि सब खा जाए । यद्यपि वह निर्भय है तो भी आन्तरिक तथा बाह्य––दोनो प्रकार की रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध उसने कर रक्खा है । वह रोगी या असमर्थ नही तो भी आस्तिक है और पूजा-पाठ तथा दान-पुण्य करता रहता है । वह धन का लोभी नही तो भी अपराधियो से बडे-बड़े आर्थिक दण्ड बसूल करता है । वह सांसारिक सुखो का उपभोग करता है किन्तु उन मे लिप्त नही होता । दण्ड तथा पुरस्कार की व्यवस्था करने में वह अपने पराये का भेद नही करता । वह प्रजा को अपनी सन्तान के समान मान उसका

पालन करता है, उनकी शिक्षा तथा जीविका का प्रबन्ध करता है और प्रजा भी उससे बहुत प्रेम करती है। उसका नम्र स्वभाव तथा गुरु-भक्ति प्रशंसनीय है। जब वह वशिष्ठ ऋषि के आश्रम मे पहुचता है तब वहा उसका उचित आतिथ्य तो होता है किन्तु उसके स्वागत् के लिये कोई जुलूस आदि नही निकलता या स्वय वशिष्ठ जी दौड-धूप करते नही फिरते। वे सायकाल को सन्ध्या पूजा के पश्चात् जब उसे दर्शन देते है तब राजा रानी चरण छूकर गुरुजी और उनकी पत्नी को प्रणाम करते है। सन्तान के लिए वशिष्ट जब उसे वन्यवृत्ति स्वीकार कर गऊ की सेवा करने को कहते है तब भी वह कुछ ननु नच नही करता और उनकी आज्ञानुसार पृथ्वी पर सोता तथा जगल के फल मूल खाकर रहता है। उनकी गऊ की रक्षा के लिए अपने प्राणो तक को बाजीपर लगा देता है। जब गऊ प्रसन्न होकर उसे दूध पीने का कहती है तब वह उसे भी गुरूजी की आज्ञा के बिना नही लेता। वह निर्भय है। सिह जब गऊ पर आक्रमण कर देता है और वह चिल्लाती है तो उसके करुण चीत्कार से राजा का हृदय दयार्द्र हो आता है ओर वह सिह को मारने के लिए धनुष पर बाण चढाना चाहता है किन्तु उसका हाथ जहा का तहा रह जाता है। उसे अपने इस नये अनुभव पर आश्चर्य तो होता है किन्तु भय नही लगता और जब उसे यह पता चलता है कि वह कोई साधारण सिह नही किन्तु शिव का गण है तब उसे अपनी पराजय की ग्लानि तो नही रहती क्योकि उसकी वह हार सिह से नही पर शिवजी से है, तो भी दया और कर्त्तव्य पालन के प्रति वह शिथिल नही होता। उसे शिष्टाचार का ध्यान सदा रहता है। जब वह ऋषि आश्रम मे पहुचता हे तब उस समय के शिष्टाचार के अनुसार पहले वह सहारा देकर रानी को रथ से उतारता है, तब अपने आप उतरता हे। वशिष्ठ आश्रम को जाते समय मार्ग मे गाव के बडे-बूढे मक्खन लेकर उसका अभिनन्दन करने आते है तो वह रथ रोक कर उनसे दो बात करता है, पास खडे जगली वृक्षो के नाम पूछता है, और यज्ञ-याग करनेवाले ब्राह्मणो के आशीर्वाद स्वीकार करता है इससे वे ग्रामवृद्ध अवश्य ही प्रसन्न हुए होगे और समय-समय पर सुनाया करते होगे कि महाराज ने उनसे बाते की थी। इससे यह भी पता चलता है कि राजा को किसी से भय या आशका न थी अन्यथा राज कर्मचारी सबको उससे दूर रखते।

रघु—वाल्मीकि रामायण को पढकर यह पता चलता है कि सूर्य वंश मे पहले कुकत्स्थ और फिर रघु—ये दो राजा ऐसे हुए जिनके कारण उनके अगले

वंशज काकुत्स्थ तथा राघव कहलाए। ऐसे महापुरुष वश के कर्त्ता समझे जाते है। दिलीप ने गऊ से यही वर मागा था कि सुदक्षिणा के गर्भ से उसे वंश का कर्त्ता पुत्र प्राप्त हो। श्री राम ने परवर्ती काल मे यद्यपि भगवान् का रूप ग्रहण कर लिया, पर वे और उनके पुत्र पौत्र आदि भी राघव ही कहलाए। वे वश को अपना नाम न दे सके। कवि ने इस पृष्ठ भूमि पर ही रघु के चरित्र का विकास किया है। वह दिलीप तथा सुदक्षिणा के दृढ़ सकल्प और साधना, बशिष्ठ के आशीर्वाद तथा गऊ की कृपा के शुभ परिणामो की साकार मूर्ति है। ओजस्वी रूप सपत्ति, असाधारण बल पराक्रम, हृदय की विशालता तथा चरित्र की उदात्तता मे वह, इस प्रकार अपने पिता के समान है जैसे दीपक से जलाया दीपक और पूर्ण युवा होकर तो वह उससे भी बढ जाता है यद्यपि विनय के कारण वह अपने को दिखलाता बहुत कम है। ब्रह्मचारी कौत्स ने कहा था, "पूज्यो के प्रति तुम्हारा भक्ति-भाव अपने कुल के अनुरूप ही नही, किन्तु उससे भी बढकर है।" रघु मे विनय और वीरता, नम्रता तथा तेजस्विता, और शिष्टता तथा दुर्धर्षता—इन विरोधी गुणो का सुन्दर समन्वय है। यह जान कर कि उसके घोडे का अपहरण करनेवाला कोई साधारण मानव नही किन्तु देवताओ का राजा इन्द्र है तब अपने बल पर पूरा भरोसा रखते हुए भी उसने पहले बड़ो के प्रति समुचित विनय का व्यवहार ही ठीक समझा और कहा, "प्रभो यज्ञ का भाग प्राप्त करने वाले देवताओ मे आपका प्रथम स्थान है फिर भी आप मेरे पिता के यज्ञ मे विघ्न डाल रहे है? आप तो यज्ञो मे विघ्न करनेवाले असुरो का सहार करनेवाले प्रसिद्ध है, यदि आप ही उनका-सा व्यवहार करने लगे तो बेचारा धर्म कहा टिकेगा?" किन्तु जब उसने नम्रता तथा सद्भावना से काम चलता न देखा तो ललकार कर कहा, "यदि आपका यही निश्चय है तो शस्त्र उठाइए, क्योकि रघु को हराए बिना आपका मनोरथ पूर्ण न होगा।" वह बड़ी वीरता से लड़ा और उसने इन्द्र के धनुष की डोर को काट डाला तथा उसका झडा भी गिरा दिया। इस पर इन्द्र बहुत बिगड़ा और उसने रघु पर वज्र से प्रहार किया। रघु उसे भी झेल गया। उसकी अभूतपूर्व वीरता को देख इन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और उसे घोडे के अतिरिक्त, कोई भी मन चाहा वर देकर, उसने पीछा छुडवाया। यद्यपि वह बड़ा प्रतापी और वीर विजेता था, किन्तु उसके युद्ध राज्य विस्तार के उद्देश्य से न होते थे। वह युद्ध-व्यसनी न था अतः जहा किसीने उसकी प्रभुसत्ता को स्वीकार कर लिया वह फिर रक्तपात न होने देता था। वह लोगो के हृदय पर नृशंसता का आतक जमाने के लिए सिर नही काटता था तो भी कुवेर आदि लोकपाल उससे भय मानते थे।

वरतन्तु का शिष्य कौत्स जब गुरु दक्षिणा के लिए चौदह करोड स्वर्ण मुद्राए मागने आया और रघु उससे पहले ही समस्त धन विश्वजित् नामक यज्ञ मे दान कर चुका था, यहा तक कि भोजन के लिए भी उसके पास केवल मिट्टी के कुछ पात्र बच रहे थे तब वह सोच ही रहा था कि ब्रह्मचारी की इच्छा कैसे पूरी की जाए कि भयभीत कुबेर ने अपरिमित धनराशि, उपहार स्वरूप उसके पास भेज दी। उसका जीवन आडम्बर शून्य तथा सरल था। उसके राज्य मे सर्वत्र सुख शान्ति थी।

अज—इस महाकाव्य के पात्रो मे अज मध्यम कोटिका नायक है। अज धीरोदात्त प्रकृति वाला तथा वीर और गभीर है। नर्मदा के तट पर पहुचते ही एक जगली हाथी इसके शिविर पर टूट पडता है और सब लोग घबरा जाते है यह तब भी विचलित नही होता और स्थिति को सम्भाल लेता है। विवाह के पश्चात् विदर्भ से लौटते समय, स्वयम्वर मे हारे हुए राजा जब इसे घेर लेते है तब भी यह बडी वीरता से उनका मुकाबला करता है और उन्हे हरा देता है। कवि ने इसका चरित्र-चित्रण करते समय वीरता आदि की अपेक्षा इसके सज्जनता, सौहार्द, दयालुता, और प्रेम आदि कोमलता-प्रधान गुणो पर अधिक प्रकाश डाला है। अपने उन्ही गुणो से इसने हाथी बने गन्धर्व राजकुमार प्रियवद को शाप मुक्त कर उसकी मित्रता प्राप्त की थी तथा वैसी ही मनोवृत्ति से प्रेरित हो उन राजाओ का बध नही किया जिन्होने इसे रास्ते मे घेर कर इन्दुमती को छीनने की चेष्टा की थी। किन्तु यह उस वीरदर्प से शून्य नही जो क्षत्रिय कुमार मे होना ही चाहिए और जिसके कारण इसने इन्दुमती को कहा था, "हे वैदर्भी, मेरे कहने से अब उन राजाओ को तो जरा देखो जिनके हाथ से एक बच्चा भी हथियार छीन ले। क्या इसी बलबूते पर वे तुम्हे मुझसे छीनने के मनसूबे बाधते थे?" वीरता के साथ इसका रूप भी बडा आकर्षक था। स्वयवर सभा मे सुनन्दा ने इन्दुमती से कहा था, कुलीनता, रूप सौन्दर्य, आयु तथा विनय आदि गुणो मे ये तुम्हारी जोड़ के है अत. तुम इन्हे वर लो क्योकि मणि स्वर्ण के आभूषण मे ही जड़ी जानी चाहिए।" और इन्दुमती भी उस पर मोहित हो जाती है। अज जगद्विजेता महा प्रतापी सम्राट् रघु का एकमात्र उत्तराधिकारी है किन्तु फिर भी अभिमानी या उदण्ड नही। इसे राज्य का लोभ नही। यह पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए ही सिहासन स्वीकार करता है भोग-तृष्णा से नही। यह अत्यन्त पितृ भक्त है। रघु की इच्छा थी कि वह सन्यास लेकर कहीं चला

जाए, किन्तु अज की आखों के आसू उसे दूर नही जाने देते । फिर वृद्ध पिता की मृत्यु का समाचार इसे कातर कर देता है और यह देर तक रोता रहता है । इसे अन्तिम आघात अपनी पत्नी की मृत्यु से लगता है जिससे इसका हृदय बिलकुल टूट जाता है । रघुवश के आठवे सर्ग में अज का विलाप अत्यन्त मर्मस्पर्शी है यद्यपि इसका जीवन सूना-सूना और नीरस हो जाता है तो भी जब तक बालक पुत्र दशरथ योग्य नही हो जाता तब तक वह कर्त्तव्य भावना के वशी-भूत होकर जीता रहता है । आठ वर्ष पश्चात् पुत्र को राज्य दे वह गगा तथा सरयू के सगम पर आमरण अनशन कर प्राण त्याग देता है। अज प्रेमी जीव है, वह ललित कलाओ का भी प्रेमी है किन्तु अग्निवर्ण की तरह कर्त्तव्य विमुख तथा लम्पट नही ।

दशरथ—दशरथ तथा राम के चरित्र का वर्णन वाल्मीकि ने रामायण मे विस्तार पूर्वक किया है । अत इनके सम्बन्ध मे कालिदास को अपनी ओर से विशेष उद्भावना नही करनी पडी । दशरथ वीर है किन्तु उसका व्यक्तित्व दुर्बल है। वह भावुक अधिक है विवेकशील कम । उसके सकल्प मे दृढ़ता नही । वह स्त्री का वशवर्त्ती है । सतान न होने के कारण उसे तीन विवाह करने पडे । तीसरा विवाह बुढापे मे केकय देश की सुन्दरी राजकुमारी से हुआ जो नवयुवती थी। वृद्धावस्था के विवाह के जो दुष्परिणाम हुआ करते है दशरथ भी उनका अपवाद न हो सका । सतान का मुख भी उसने बड़ी आयु मे देखा अत उसके प्रति उसका अत्यधिक मोह होना स्वाभाविक था, फिर श्री राम जैसी सन्तान का तो कहना ही क्या जिनके रूप तथा स्वभाव मे ऐसा जादू था कि जो भी उन्हे देखता वही उनका हो जाता । पिता दशरथ को तो उन्हे देखे बिना चैन ही न पडता था । ऋषि विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए उन्हे माँगने जब अयोध्या आए तब भी वह उन्हे भेजने को तैयार न हुआ यद्यपि अन्त मे उसे मानना पडा । कालिदास कहता है कि इसका कारण रघुकुल की वह उच्च परम्परा[१] थी कि कोई याचक उसके द्वार से खाली हाथ न लौटता था किन्तु हम समझते है कि इसका वास्तविक कारण दशरथ के स्वभाव की वह निर्बलता थी जो उसे अपने किसी भी निश्चय पर जमने न

---

१. कृच्छ्रलब्धमपि लब्धवर्णभाक्त दिदेश मुनये सलक्ष्मणम् ।
अप्यसुप्रणयिना रघो कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता ।।
रघु० सर्ग ११, पद्य २ ।।

देती थी और जिसके कारण उसे आगे चलकर केकयी के आगे भी झुकना पड़ा। वह शिकार[1], जूआ तथा शराब को दुर्व्यसन मानता था तो भी दूसरो के कहने पर वह शिकार खेलने चला गया और उसमे ऐसा बहा कि राजधर्म की उपेक्षा[2] कर हाथी के धोखे मे प्रसिद्ध पितृ-भक्त श्रवण कुमार पर तीर चला बैठा। केकयी की त्यौरी चढी देख वह ऐसा नि सत्त्व हो गया कि राज तेज तो दूर, उसकी वह व्यावहारिक बुद्धि भी काफूर हो गई जिसके सहारे उसने कुपित परशुराम को स्वागत[3] के झमेले मे डाल भुलावा देना चाहा था और अपनी इसी निर्बलता के कारण उसे अन्त मे श्री राम के वियोग मे प्राणो से भी हाथ धोने पडे।

श्री राम

वाल्मीकि और उनके परवर्ती अन्य भी सहस्रो कवियो ने अपनी अपनी भावना के अनुसार रामचरित का वर्णन किया है जिनमे अनेक ऐसे है जो श्री राम को भगवान् का अवतार मानते है और कालिदास भी इनमे से अन्यतम है। किन्तु चरित्र चित्रण के प्रसग मे भगवान् के गुण दोषो की चर्चा व्यर्थ है क्योकि वह तो पूर्ण है। तथापि यहाँ केवल रघुवश के आधार पर, और उसमे से भी उसके दिव्यांश को छोड कर ही उनके चरित्र की समीक्षा करनी है। कालिदास यद्यपि शैव था तो भी कुछ तो अपनी धार्मिक भावना की उदारता के कारण और कुछ जन भावना का आदर करते हुए उसने श्री राम के प्रति भी वही भक्ति भाव प्रदर्शित किया है जो अपने उपास्यदेव भगवान् शकर के प्रति। ज्ञात होता है कि उसके समय भी रामनाम की महिमा बहुत बढ चुकी थी और मागलिक शब्दो मे उसका स्थान[4] सर्व प्रथम था। इसके आधार मे अवश्य ही श्री राम के वे असमान्य गुण तथा बल पराक्रम और

---

१ (क) न मृगयाभिरतिर्न दुरोदरं न च शशिप्रतिमाभरण मधु।
तमुदयाय न वा नवयौवना प्रियतमा यतमानमपाहरत्॥
रघु० सर्ग ९, पद्य ७॥

(ख) परिचय चललक्ष्य नुमत. सचिवैर्ययौ॥ रघु०सर्ग ९ पद्य ४९॥

२. नृपते. प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान्पक्तिरथो विलङ्घ्य यत्।
अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिता॥ रघु० सर्ग ९, ७४॥

३ अर्घ्यमर्घ्यमिति वादिन नृप सोऽनवेक्ष्य भरताग्रजो यत।
क्षत्रकोपदहनार्चिष तत सदधे दृशमुदग्रतारकाम्॥
रघु० सर्ग ११, पद्य ६९॥

४ राम इत्यभिरामेण वपुषा तस्य चोदित।
नामधेय गुरुश्चक्रेजगत्प्रथममगलम्॥ रघु० सर्ग १० पद्य ६७॥

लोक कल्याणकारी कार्य कलाप रहे होंगे जिनके प्रति जनता के कृतज्ञता पूर्ण हृदयों ने उन्हे भगवान् की पदवी प्रदान की ।

कवि का कथन है कि उनका रूप बहुत प्रिय था और इसी लिए उनका नाम 'राम' रक्खा गया था । वे जब ऋषि विश्वामित्र के साथ वहा पहुंचे जहां कभी कामदेव ने तपस्या की थी तब अपने सुन्दर रूप से तो उन्होंने उसका प्रतिनिधित्व किया, कार्यों से नही । मिथिला नगरी मे जब राजा जनक ने एक ओर, रघु के प्रसिद्ध कुल मे उत्पन्न राम के किशोर सौदर्य को देखा और दूसरी ओर कठोर शिवधनुष को, तब वे पुत्री सीता के विवाह के लिए रक्खी अपनी कड़ी शर्त पर पछताने लगे क्योंकि उन्हें आशा न थी कि श्रीराम उसे उठा भी सकेंगे । रावण की छोटी बहिन शूर्पणखा भी उन्हे देख कर मुग्ध हो गई थी। उनके हृदय मे लावण्य, व्यवहार मे माधुर्य, वीरता मे शत्रु के दाँत खट्टे करने की क्षमता, बुद्धि मे तीक्ष्णता, वैर मे कटुता और भय मे कषायता[1] थी। सारी प्रजा का स्नेह उन्हे प्राप्त था और माता पिता के तो वे आँखो के तारे ही थे । गुरुजनो की आज्ञा का पालन करना वे अपना परम कर्तव्य समझते थे और उसके लिए बडे से बडा त्याग करने को उद्यत रहते थे । वे इतने गम्भीर थे कि राज्याभिषेक के बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण करते समय उनका मुख न प्रसन्नता से खिला और न बन जाने के लिए वल्कल पहनते हुए विषाद से मलिन हुआ । उनमे शारीरिक बल भी कम न था। इसलिए ऋषि विश्वामित्र ने उन्हे ही धनुर्वेद के वे गूढ रहस्य तथा विशेष शस्त्रास्त्र प्रदान किए जो किसी अन्य के पास न थे । उन्होने बहुत छोटी आयु मे ही सुबाहु तथा ताड़का का संहार किया था, फिर दण्डकारण्य मे खरदूषण तथा उनके साथियो से अकेले ही युद्ध किया और अन्त में विश्व के लिए महान् आतङ्क स्वरूप रावण का वध किया । उनकी इस वीरता की शोभा उस नम्रता से और भी बढ जाती है जो उन्होने पराजित परशुराम के प्रति प्रकट की थी । क्षत्रिय के धर्म का पालन करते हुए उन्हें परशुराम की चुनौती को तो स्वीकार करना ही पड़ा, किन्तु उत्तेजित होकर कहे गए अपमानजनक वाक्यो के उत्तर मे उन्होंने एक भी अशिष्ट शब्द मुंह से न निकाला और जब उसने हार मान ली तब उन्होंने चरणों मे प्रणाम कर, उलटे उससे क्षमायाचना की । दीनदुखियों के प्रति सहानुभूति तथा मनोबल के भी वे धनी थे । गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या

---

१. यो वक्त्रं परिशोषयति, जिह्वां स्तंभयति, कण्ठबन्धाति, हृदये कषति पीडयति च स कषायः । सुश्रुत ।

अपनी एक भूल के कारण समाज से बहिष्कृत और विक्षिप्त हो गई थी, सब उससे घृणा करते थे और कोई उसके पास तक न जाता थ। वह पत्थर की तरह गुमसुम पडी रहती थी। श्री राम को उस पर दया आई और उन्होने उस दशा से उसका उद्धार कर दिया। सीता की रक्षा करता हुआ जगली जटायु रावण की तलवार से घायल हो अन्तिम सास ले रहा था। श्री राम ने यथाशक्ति उसकी सेवा शुश्रुषा की पर उसकी जान न बचा सके। तब उन्होने उसे अपने पिता की तरह मानते हुए उसके शरीर की अन्तिम क्रिया की। वे चतुर राजनीतिज्ञ थे। बालि के विरुद्ध सुग्रीव की सहायता कर उन्होंने रावण से युद्ध के लिए एक शक्तिशाली मित्र प्राप्त कर लिया और विभीषण को आश्रय दे शत्रु के घर मे भेद नीति का सफल प्रयोग कर दिखाया। बालि का राज्य सुग्रीव को तथा रावण का राज्य विभीषण को देकर उन्होने यह भी प्रकट किया कि वे विस्तार वादी न थे। वे भूमि की अपेक्षा मित्रता के अधिक इच्छुक थे। दूसरी जातियो तथा देशो के रीतिरिवाज और आचार व्यवहार का भी सम्मान करते थे। बाली की पत्नी तारा को रखने पर उन्होने सुग्रीव की निन्दा नही की। गृहस्थ जीवन का सुख उनके भाग्य मे, अधिक न लिखा था यद्यपि वह सीता से बहुत प्रेम करते थे किंतु पहले तो उसे रावण वन से हर कर ले गया, जब वे रावण से उसका उद्धार कर अयोघ्या लौट आए और उनका राज्याभिषेक होगया तभी कुछ दिन पीछे प्रजा मे यह चर्चा उठ खडी हुई कि इतने दिन रावण के घर मे रही सीता को भी राम ने स्वीकार कर लिया। इस का प्रभाव उनकी स्त्रियो पर अच्छा न पडेगा। यह सुनकर श्रीराम पर मानो वज्रपात हो गया क्योंकि वे जानते थे कि जो कुछ भी हुआ था उसमे सीता सर्वथा निर्दोष थी किंतु तो भी प्रजा को सतुष्ट करने के लिए उन्होने सीता का त्याग कर दिया। कवि ने वाल्मीक के मुख से श्री राम के इन कार्यों की कटु आलोचना करवाई है वे सीता को कहते है कि "यद्यपि राम ने त्रिलोकी के काँटे रावण को उखाड फेका, वे सत्य से विचलित नही होते और अपने मुंह मियां मिठ्ठू भी नही तो भी उन्होने तुम से जो दुर्व्यवहार किया है उसे हम क्षमा नही कर सकते।" श्री राम ने सीता का परित्याग तो किया पर वे उसे हृदय से न निकाल सके। जब लक्ष्मण ने लौटकर सीता का अन्तिम सदेश उन्हें सुनाया तो उनके नेत्रो से निरन्तर अश्रु धारा प्रवाहित होने लगी और उन्होने फिर दूसरा विवाह न किया। अश्वमेघ यज्ञ के विधि विधान राजा रानी को मिलकर करने होते हैं उसके लिए भी उन्होंने सीताकी ही सोने की मूर्ति उसमे प्रतिष्ठित की किन्तु दूसरी स्त्री का स्पर्श नही किया। श्री राम मनस्वी भी थे। उनसे

शत्रुता मोल लेकर कोई सुख की नीद नही सो सकता था । सीता का परित्याग करते समय उन्होने कहा था कि उसे प्राप्त करने के लिए हमने रावण का जो वध किया उसे वृथा न समझो क्योंकि वह तो वैर का बदला लेने से लिए था। क्या साप ठोकर मारने वाले को कुपित होकर खून की दो चार बूदों के लिए डसा करता है ?

यद्यपि श्री राम को लक्ष्मण के प्रति अधिक स्नेह था तो भी उनका व्यवहार सबके प्रति समान था। उनके राज्य मे प्रजा ऐसी सुखी थी कि आज भी 'रामराज्य' शब्द सुशासन का प्रतीक तथा पर्यायवाचक समझा जाता है। कालिदास ने श्रीराम के द्वारा शूद्र शंबूक के वध का वर्णन किया है । क्योकि धर्म शास्त्र की तात्कालिक व्यवस्था के अनुसार उसे तप का अधिकार न था । इसका कारण अपराधो के प्रति विभिन्न जातियो का वह भावना भेद भी है जिससे कही देशद्रोह, व्यभिचार या जालसाजी आदि के लिए मृत्यु दण्ड दिया जाता है और कही इन्हे बहुत समान्य अपराध माना जाता है। साधारणतया श्री राम का चरित्र भारतियो की दृष्टि मे आदर्श मानव का चरित्र है और वे आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श राजा, तथा आदर्श मित्र माने जाते है। कालिदास ने उनकी मृत्यु का वर्णन नही किया और लिखा है कि यमराज की प्रार्थना पर वे स्वेच्छा से वैकुण्ठगामी हुए।

भरत

कालिदास ने लिखा हे कि केकयी यदि साकार श्री थी तो भरत उसकी शोभा को बढाने वाला विनय था। यह उपमा देकर ही कवि ने केकयी के स्वभाव तथा चरित्र के विषय मे बहुत कुछ कह दिया । दशरथ ने जब श्री राम के राज्याभिषेक की घोषणा की तब केकयी ने अपनी मूर्खतापूर्ण तथा कठोर हठधर्मिता से उस सारे समारोह को राजा के शोकाश्रुओ मे डुबा दिया । उसने राजा से दो वर मागे जिनमे एक के द्वारा राम चौदह वर्ष के लिए वन को चले गए और दूसरे से भरत को अयोध्या का राज्य मिला। उन दिनों भरत अपनी ननिहाल गया हुआ था । अत उसे इस कुचक्र का कुछ पता न चला। श्री राम के वियोग मे दशरथ की मृत्यु हो गई । जब दूत भेजकर मन्त्रियो ने भरत को बुलाया तब सब समाचार सुन उसे बहुत दुख हुआ और वह केवल केकयी ही नही राज्य लक्ष्मीसे भी विमुख होगया । वह श्री राम को वन से लौटा लाने के लिए उनके पास चित्रकूट गया पर वे किसी तरह भी आने को राजी न हुए । तब उसने उनकी खड़ाउए माग लीं और उन्हे राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर वह चौदह वर्ष तक नन्दिग्राम में तपस्वी बन, धरोहर की तरह उनके राज्य की रखवाली करता रहा।

इससे उसके दृढ निश्चय और उच्च विचारो का पता चलता है। उसके सम्बन्ध मे श्री राम ने स्वय कहा था कि पिता की दी हुई राज्यलक्ष्मी का भी भरत ने भोग न किया जैसे कोई युवा समर्थ होता हुआ भी स्वय आई सुन्दर तरुणी को आंख उठा कर न देखे और उसका यह कार्य तलवार की धार पर चलने के समान है। कवि कहता है कि रावण की प्रेम प्रार्थनाओ को ठुकरा देने वाली सीता के दृढ व्रती पूज्य चरणो पर जब भरत ने अपना वह सिर धर दिया जो बड़े भाई के प्रति भक्ति भाव के कारण जटाजूट धारी बन गया था तब दोनो ही एक दूसरे के स्पर्श से पवित्र हो गए। ससार मे ऐसे बहुत कम भाई मिलेगे जो एक माता के गर्भ से जन्म लेकर भी भाई के लिए ऐसा त्याग कर सके। भरत वीर भी था, जब उसे सिन्धु प्रदेश का शासन सोपा गया तो उसने वहा के विद्रोही गन्धर्वों को जीत लिया। वह कुछ दिन वहा रहा और फिर उस विशाल राज्य को अपने पुत्रों—तक्ष और पुष्कल की रक्षा मे छोड श्री राम की सेवा मे ही चला आया।

लक्ष्मण

लक्ष्मण श्री राम की विमाता सुमित्रा का पुत्र था जो उन्हे पिता दशरथ की भी अपेक्षा अधिक मानता था। वह उनकी प्रिय या अप्रिय सभी आज्ञाओ का पालन बिना विचारे किया करता था किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि अन्त मे श्रीराम की आज्ञा भग के अपराध का ही प्रायश्चित करने के लिए उसे अपने प्राणो की आहुति देनी पडी। वह श्रीराम का ऐसा भक्त तथा अनुगामी था कि केकयी ने वनवास की शर्त्त केवल श्रीराम के लिए रक्खी थी किन्तु लक्ष्मण ने उसे स्वेच्छा से वरण किया और वह भी केवल भाई की निःस्वार्थ सेवा के लिए। उसके भी माता, पत्नी तथा पुत्र थे किंतु कविने उसकी मातृ भक्ति, दाम्पत्यप्रेम या पुत्रवात्सल्य आदि मधुर भावनाओं का कही निर्देश ही नही किया, मानो उसका शरीर हाड मास, और रुधिर का न होकर केवल कर्त्तव्य पालन का ही बना हो। रावण की बरछी के आघात से मूर्छित उस पर श्री राम को आँसू बहाते हुए देखा जाता है पर उसकी आँखों मे आँसू मानो कभी रहे ही नही। वह सीता को सर्वथा निर्दोष मानता था तो भी श्री राम की आज्ञा से उसे वन मे छोडने लेगया और उनका उग्र सदेश भी उसे सुना दिया। यद्यपि उसका कण्ठ कुछ रुकना चाहता था पर उसने परवाह न की। वह कर्म प्रधान था विचार-प्रधान नही। शूर्पणखा को सीमा से बाहर जाते देख उसने तत्क्षण उसके नाक-कान काट दिए। अपने स्वार्थ, महत्वाकांक्षा तथा व्यक्तित्व को उसने श्रीराम में पूर्णतया विलीन कर दिया था।

कुश आदि राजाओं के वर्णन मे कविका उद्देश्य चरित्रचित्रण उतना नही रहा जितना अन्य बातें। उदाहरणार्थ, यद्यपि कुश वीर

कुश, अतिथि तथा सुदर्शन और अग्नि वर्ण

जितेन्द्रिय, कलाप्रिय, और तेजस्वी है तथापि रघुवंश के सोलहवें सर्ग मे उसे निमित्त बना कवि ने उजडी अयोध्या के पुनः बसाने, ग्रीष्मऋतु,, जल विहार और अन्त मे अन्तर्जातीय विवाह द्वारा नागवश से सम्बन्ध स्थापित होने के राजनीतिक महत्व पर प्रकाश डालना चाहा है। आधी रात के समय शयनागार में प्रकट हुई वनिता के साथ सवाद से जितेन्द्रियता तथा कुमुद वाली घटना से उसकी तेजस्विता और वीरता का निर्देश किया गया है। सत्रहवे सर्ग मे अतिथि द्वारा कविने राज्य प्रबन्ध तथा शासन नीति पर अपने क्रियात्मक विचार व्यक्त किए हैं। शिशु राजा सुदर्शन के प्रताप तथा उसके प्रति के भक्ति भाव के वर्णन से उसने राजा की दिव्यता में अपना विश्वास प्रकट किया है। अग्निवर्ण की विलास लीलाए तथा अन्त मे क्षय से उसकी मृत्यु उस मार्ग पर चलने वालो के लिए कडी चेतावनी है।

सुदक्षिणा

रघुवश मे कालिदास ने अपनी नायिकाओ के चरित्र के स्वतन्त्र विकास पर विशेष ध्यान नही दिया, सारे काव्य मे केवल तीन चार स्त्रियो के जीवन की झाकी देखने को मिलती है और वह भी अधूरी। इसका कारण कुछहद तक संभवत॰ यह है कि इसमे नायको का गृहजीवन उनकी दूसरी प्रवृत्तियो–राजकीय कर्त्तव्यो, विजयों आदि के समक्ष गौण हो गया है। अत जो थोडे से निर्देश प्रधान-स्त्री-पात्रो के विषय मे मिलते हैं उनके आधार पर ही यहा उनके चरित्र की चर्चा की जा रही हैं।

सुदक्षिणा मगध की राजकुमारी तथा अयोध्या की महारानी है। कवि का कथन है कि वह अत्यन्त उदार स्वभाव वाली है और प्राय. दान दक्षिणा आदि मे व्यस्त रहती हैं। वह अन्त पुर मे बन्द रहने वाली असूर्यपश्या ललना नही किंतु पति के साथ बाहर निकलती है और लोगो से मिलती जुलती है। उसका स्वभाव विनम्र है। गुरु वशिष्ठ के आश्रम मे जाकर वह ऋषि तथा ऋषि पत्नी के चरणों मे प्रणाम करती है। पर्णशाला मे भूमि पर कुशा बिछा कर वह सो सकती है और जंगल के फूल मूलों से गुजारा कर सकती है। अपने हाथ से गो सेवा करने में उसे सकोच नही। वह राजरानी है तो भी भारतीय नारी की लज्जाशीलता से वंचित नहीं। जब उसे गर्भ रह जाता है और राजा उसकी इच्छा के विषय में प्रश्न करता है तब वह

सकोच वश उसे सीधे उत्तर नही देती । उसका स्वभाव सरल तथा मधुर है इसीलिए सखिया उसे घेरे रहती है । यद्यपि राजा के अन्त पुर मे अन्य रानिया भी हैं किंतु वह मनस्विनी सबके ऊपर है और राजा उसका विशेष आदर करता है । उसने रघु जैसे वीर पुत्र को जन्म दिया है इससे उसका गौरव और भी बढ गया है ।

इन्दुमती– इन्दुमती सौन्दर्य सौकुमार्य तथा प्रेम की साकार प्रतिमा है। कवि ने उसे विधाता की विशेष रचना कहा है । उसके रूप के सामने रति भी लजाती है । उसे देखते ही स्वयवर मे आए सब राजाओ के हृदय उस पर लट्टू हो जाते है । उनकी आखे उधर से हटना नही चाहती । वह सुशिक्षित तथा रूप पारखी है । स्वयवर सभा मे पहुचकर वह भीगी बिल्ली नही बन जाती पर प्रत्येक राजा के रूप सौन्दर्य और गुणो पर विचार करती है । जब वह अज को चुन लेती है तब सब लोग उसकी पसन्द की दाद देते है और कहते है. "राजकुमारी और कुंवर अज का मेल मानो चादनी और चन्द्रमा का या भागीरथी और समुद्र का मिलन है । वह अत्यन्त प्रेममयी है इसीलिए उसे याद कर अज कहता है "तुमने कभी मन मे भी मेरा अप्रिय-चिन्तन नही किया । मुझसे कभी कोई भूल हो जाती तब भी तुम बुरा न मानती थी, तुमने मुझे इस तरह छोड जाने का यह कठोर निश्चय कैसे कर लिया ?" वह केवल सुन्दर और सुकुमार ही नही किन्तु उत्तम गृहीणी के सब गुण भी उसमे विद्यमान है । ललित कलाओ मे वह कुशल है और उसकी रुचियाँ भी सुसस्कृत है । पशु पक्षियो के पालने तथा लता वृक्षो के विवाह रचाने का भी उसे शौक है । गभीर विषयो पर भी वह चतुर सचिव की तरह अपने पति को उत्तम परामर्श दे सकती है । वह उसकी विश्वस्त सखी तथा ललित कलाओं मे प्रिय शिष्या थी और उसकी मृत्यु से अज के जीवन मे जो रिक्तता आई वह कभी पूरी न हुई ।

केकयी—केकय देश की राजकुमारी केकयी अत्यन्त सुन्दरी थी । राजा दशरथ ने बडी आयु मे उससे विवाह किया था इसलिए वह उसे बहुत प्यारी थी और वह उसकी उचित या अनुचित किसी भी माँग को टाल न सकता था । कालिदास ने केकयी तथा सीता—दोनों को लक्ष्मी की उपमा दी दी है किंतु सीता के प्रसग मे उसके साथ 'गुणोन्मुखी विशेषण लगाया है जो केकयी के प्रसग मे नही । इससे प्रतीत होता है कि वह उसमे वे सब दोष स्वीकार करता है जो लक्ष्मी में माने जाते हैं । श्री राम सब को प्रिय थे ।

वे अपनी विमाताओं को भी माता के समान मानते और उनका आदर करते थे तोभी केकयी ने उनके राज्याभिषेक के समय बखेडा खडा कर दिया जिससे सभी अयोध्या वासी असन्तुष्ट और निराश हुए। सुमन्त्र का वह उद्गार जनता की भावना का सूचक है जो चौदह वर्ष पश्चात्, लंका से लौटते समय, निषाद राज गुह की पुरी को देखकर श्री राम के मुख से निकल पडा था, जिसमे श्री राम ने सीता से कहा था, "यही वह निषादराज का नगर है जहाँ मैंने अपने मस्तक से चूडामणि को उतार जब जटा बाँधी थी तब उसे देखकर रोते हुए सुमन्त्र ने कहा था, कि " कि हाय केकयी ! तेरा मन चाहा पूरा हुआ" केकयी की करतूत का समर्थक अयोध्या मे कोई न था इस लिए वह विशेष लज्जित थी और लका से विजय प्राप्त कर लौटे श्री राम के सामने जाने का उसे साहस न हुआ किंतु उनका हृदय अत्यन्त विशाल था, वे स्वय उसके पास गए और कुछ प्रिय वचन कहकर उन्होने उसके सकोच को दूर करने का यत्न किया। श्री राम को वन भेजने मे केकयी के परिवार का भी कुछ हाथ अवश्य रहा होगा किंतु भरत पर मातृ कुलकी अपेक्षा अपने परिवार का प्रभाव अधिक था अत उसने उस षडयत्र को सफल न होने दिया। यह देखकर आश्चर्य होता है कि केकयी ने पुत्र को राज्य दिलाने के लिए वैधव्य तक को पसन्द किया, और इसके लगभग ३०, ४० वर्ष बाद भी केकयी के भाई युधजित् ने फिर श्री राम को सदेश भेजकर उनसे सिन्धु प्रदेश का राज्य भरत को देने का आग्रह किया। केकयी वीर अवश्य थी उसने एक युद्ध मे दशरथ के रथ के क्षत्तिग्रस्त हो जाने पर अपनी बाँह का सहारा दे कर पति की सहायता की थी किंतु उसमे दूरदर्शिता न थी।

सीता—रघुवश मे राम-कथा का वर्णन कवि ने बहुत सक्षेप से किया है और उसमे भी सीता के जीवन तथा स्वभाव आदि पर और भी कम प्रकाश पड़ा है। सारे रघुवश मे वह स्वय केवल एक बार ही कुछ शब्द और वह भी तब बोली है जब लक्ष्मण उसे गंगा के उस पार अकेली और असहाय छोड़ कर जाने लगा है। उन शब्दो मे वह शीतलता है जो वज्राघात से विदीर्ण मेघमालिका के हृदय से निकले ओलों मे होती है। सीता का समग्र जीवन सुख की कुछ घड़ियो को छोड़—दुख, अपमान और बलिदान की करुण कथा है। उसका वैवाहिक जीवन वह स्वर्गीय कुसुम था जो मृत्यु लोक के विषाक्त वातावरण मे पूर्णतया विकसित हुए बिना ही कुमला गया। उसका प्रेम प्रशान्त महासागर के समान गंभीर, निस्तरग तथा मूक था जो कभी होठों पर नही आया।

सीता राजा जनक की पालिता पुत्री थी, औरस नही, क्योंकि कालिदास ने उसे पार्थिवी कहा है तो भी उसपर उनका स्नेह कुछ कम न था। उन्होंने उसके ही विवाह के लिए स्वयवर के आडम्बरपूर्ण समारोह का आयोजन किया था, अन्य तीन कन्याओ के लिए नही। सैकड़ो राजाओ मे से केवल श्री राम ही स्वयवर की शर्त को पूर्ण कर सके थे इसलिए उनका सीता से विवाह हो गया। जब उन्हें पिता की आज्ञा से वन जाना पडा तब सीता स्वेच्छा से उनके साथ गई, इससे पति के प्रति उसके प्रेम तथा भक्ति का ही नहीं किन्तु उस साहस तथा दृढता का भी परिचय मिलता है जिसके बिना किसी नववधू का सारे परिवार की इच्छा के विरुद्ध, वैसा कर सकना सभव न था। वह राजकुमारी थी और बडे लाडचावों मे पली थी तो भी उसने वन्य जीवन के कष्टो की परवाह न की और पति के साथ उन्हे हँसते-हँसते झेला। पर प्रतिकूल परिस्थितियो के साथ निरतर सक्रिय सघर्ष कर सकने की शक्ति उसके शरीर मे न थी और उसका स्वभाव भी बहुत सरल था तथा वह दूसरो को भी वैसा ही समझती थी। एक दिन एक कौवा उस पर झपट पडा और घायल कर गया। जब शूर्पणखा ने उसपर आक्रमण किया तब वह एक वीर क्षत्रिय नारी की तरह उसका प्रतिरोध न कर सकी। और अन्त मे रावण तो उसे धोखा देकर उठा ही ले गया। किन्तु चारित्रिक बल मे वह ससार की किसी भी नारी से कम न थी। वन जीवन के कष्ट तथा अशोक वाटिका में रावण के भय प्रलोभन, डाट-डपट, खुशामद, तथा अन्यान्य उपाय भी उसे विचलित न कर सके।

लका से लौटने पर उसके दिन कुछ फिरे। श्री राम के साथ राज्याभिषेक के लिए कौशल्या और सुमित्रा ने बडी उमग और चाव से उसे राजसी वेषभूषा से सजाया। जब वह शानदार रथ मे बैठकर बडी धूमधाम से अयोध्या के राजपथो पर निकली तब सबने उसके भाग्य की सराहना की, तब भी उसके मुख-मण्डल पर महारानी का रोब नही किन्तु शीलवती कुलकामिनी की शालीनता और पतिव्रताओ की पवित्रता की वह ज्योति झलक रही थी जो वहाँ के निवासियों को भी विश्वास दिलाने के लिए मानो अग्नि परीक्षा की द्वितीयावृत्ति थी और जिसे देखकर अपनी अटरियो मे झरोखो के पीछे खड़ी नगर नारियों ने उसके सम्मान के लिए श्रद्धा से हाथ जोड़ कर सिर झुका दिए थे। अभिषेक की समाप्ति पर, लका-युद्ध मे श्री राम के सहायक और मित्र सुग्रीव, विभीषण तथा उनके अनुचर सरदारो ने सिहासन पर विराजमान महारानी सीता के हाथो से विदाई के राजकीय उपहार प्राप्त करने मे विशेष गौरव अनुभव किया

किंतु उसका भाग्यभानु शीघ्र ही सदा के लिए किसी दुष्ट ग्रह का ग्रास बन गया। रावण के चगुल से उद्धार करने वाले उसके प्रिय पति ने ही उसे सर्वथा निर्दोष समझते हुए भी कुछ अनुत्तरदायी लोगो को सतुष्ट करने के लिए उसका परित्याग कर दिया और वह भी तब जब वह गर्भवती तथा असहाय थी। उस दशा में ऋषि वाल्मीकि ने उसे आश्वासन देते हुए कहा था, "पुत्री, प्रख्यात कीर्ति वाले तेरे श्वशुर राजा दशरथ मेरे मित्र थे, तेरे पिता राजा जनक ब्रह्म का उपदेश दे लोगो का कल्याण कर रहे है और तू पतिव्रताओ मे श्रेष्ठ है, तब मैं तेरी सहायता क्यो न करूं[1] ? और मैं उस राम को कभी क्षमा नही कर सकता जिसने निरपराध समझते हुए भी तुझे निकाल दिया हे, भले ही उसने त्रिलोकी को सताने वाले रावण का नाश किया है, वह कभी झूठ नही बोलता और अपनी डीग भी नही हाकता[2]।" किंतु सीता के मुख से एक भी कटु शब्द न निकला और उसने केवल यही कहा कि वह तो उसके ही किसी पूर्व जन्म के पाप का फल होगा।

वाल्मीकि के आश्रम मे साधारण तापसी का जीवन व्यतीत करती हुई उसने न जाने कितने वर्ष निकाल दिए। इसी बीच उसने कुश तथा लव को जन्म दिया, उनका पालन पोषण किया और उन्हे सुशिक्षित किया। उनसे उसका दिल बहलने लगा किन्तु वाल्मीकि उसके दुखको अधिक न देख सके और उन्होने श्रीराम से उसे पुन. स्वीकार करने का आग्रह किया। श्रीरामने उत्तर दिया कि यदि सीता जनता के समक्ष अपनी निर्दोषता को प्रमाणित कर सके तो उन्हें कोई आपत्ति न होगी। ऋषि की आज्ञा से सीता श्री राम के दरबार मे चली तो गई किन्तु उसका जर्जर हृदय इस आघात को न सह सका और उसकी करुणापूर्ण इह लोकलीला सहसा समाप्त हो गई। क्या उसकी आत्मा यह जानती है कि जिसे एक दिन उसके पति ने घर से निकाल दिया था उसे कोटि-कोटि जनों ने सदा के लिए अपने हृदय मन्दिर मे प्रतिष्ठित कर लिया है ?

---

१. तवोरुकीर्ति. श्वशुर. सखा मे सता भवोच्छेदकरः पिता ते।
धुरि स्थिता त्व पतिदेवतानां किं तन्न येनासि ममानुकम्प्या॥
रघु० सर्ग १४, पद्य ७४॥

२. उत्खातलोकत्रयकण्टकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि।
त्वा प्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्तावस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे मे॥
रघु० सर्ग १४, पद्य ७३॥

संवाद :—पहले कहा जा चुका है कि संवादो का जो महत्व नाटकादि रूपको मे होता है वह काव्यो मे नही, तो भी अनेक काव्यो के कुछ सवाद इतने उत्कृष्ट हैं कि उनकी उपेक्षा नही की जा सकती। रघुवश के दिलिप—सिह संवाद, रघु-इन्द्र सवाद आदि इमी कोटि के है। ये यद्यपि किसी नाटक के भाग नही तो भी इनमे पर्याप्त अभिनयात्मकता है। ये कथावस्तु के विकास तथा पात्रो के चरित्र-चित्रण मे सहायक और तात्कालिक वातावरण के अनुकूल है। प्रथम सवाद का प्रसग यह है कि सिह ने ऋषि की गऊ पर आक्रमण कर दिया है, राजा उसके वध के लिए तूणीर से तीर निकालना चाहता है किन्तु उसका हाथ बीच मे ही रुक जाता है तभी उसके विस्मय को और भी बढाता हुआ सिह मनुष्य की बोली बोलकर कहता है, "तुम मुझ पर हाथ न उठाओ। यहा तुम्हारा कुछ भी बस न चलेगा। मै शिव भगवान् का कुभोदर नामक सेवक हू जिसे उन्होंने सिह बनाकर इस देवदारू की रक्षा के लिए नियुक्त किया है और कहा है कि जो कोई पशु इधर आ निकले तुम उसे ही खालिया करो।" उसने राजा को यह भी कहा कि तुम्हे इस बात से लज्जित न होना चाहिए कि तुम गऊ की रक्षा न कर सके, क्योकि तुमने अपनी ओर से कोई कसर नही की। शस्त्र से जिसकी रक्षा सम्भव नही उसे बचा न सकने से क्षत्रियो के नाम को धब्बा नही लगता।" इससे राजा को यह तो सन्तोष हुआ कि उसकी हार साधारण सिह से नही पर भगवान शकर के बल मे बली उनके सेवक मे हुई है, फिर भी वह गऊ को इस तरह मरते न देख सकता था अत बोला, "मै भी भगवान् शकर का सम्मान तुम्हारी ही तरह करता हू और नही चाहता कि तुम उनकी आज्ञा का पालन न करो। किन्तु गुरू जी की गऊ की रक्षा करना भी मेरा कर्त्तव्य है और मै उसकी उपेक्षा नही कर सकता। अत तुम उसके बदले मुझे खाकर अपना पेट भरलो और उसे छोड दो, क्योकि उसका नन्हा-सा बछडा, साझ को कितनी उत्कण्ठा से उसकी बाट जोहता होगा।" यह सुनकर सिह कुछ हसा और बड़ी सहानुभूति दिखाता हुआ कहने लगा, "जगत् मे तुम्हारा एक छत्र राज्य है। तुम्हारा यह सुन्दर शरीर और चढती जवानी। और यह सब कुछ तुम एक सामान्य-सी गऊ के लिये खो रहे हो। यह न समझदारी है और न जीव दया की दृष्टि से उचित ही। क्योकि अपने प्राण देकर तो तुम एक प्राणी की रक्षा करोगे पर जीवित रहकर तुम बहुत समय तक सारी प्रजा का पालन एक पिता की तरह कर सकोगे।" तब उसके उत्तर में राजा बोला, "क्षत्रिय किसी पर अत्याचार नही होने देता। वह यदि यही न कर सका तो उसके राज्य या कलंक-कलुषित जीवन से क्या लाभ? फिर, इस गऊ को भी तुम ऐसी-वैसी न समझो, यह

कामधेनु से भी कम नही, मै इसकी रक्षा नही कर सकता अतः इस के लिए अपने प्राणो की बलि दे रहा हू जिससे तुम भी भूखे न रहो और यह भी बच जाए। तुम यदि सचमुच ही मुझ पर दया दिखाना चाहते हो तो वह मेरे यश रूपी शरीर पर दिखाओ, क्योकि मै उसकी अपेक्षा इस भौतिक देह को तुच्छ समझता हूँ। तुम यह भी जानते हो कि मिल बैठकर बातचीत करने से पराये भी अपने हो जाते हैं, उस नाते आज हम दोनो सम्बन्धी बन गये हैं, अब अपने सम्बन्धी की प्रार्थना को ठुकराना क्या तुम्हें उचित है ?"

इस सवाद मे वक्ता का ध्यान अपने उत्तर के युक्तिसगत होने पर उतना नही, जितना श्रोता के हृदय की भावना को जगाकर उसे प्रभावित करने पर है। मनुष्य शत्रु के बल के आगे उतनी सरलता से नही झुकना चाहता जितना मित्र के प्रेमपूर्ण अनुरोध के आगे। और यह कार्य उसकी प्रशसा के दो-चार शब्दों तथा उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करने से ही हो जाता है। अत सिह ने, यद्यपि राजा को पहले कुछ धमकी अवश्य दी है किन्तु साथ ही अपना परिचय कर्त्तव्यपरायण सेवक के रूप मे देकर उस कठोरता के लिए अपनी विवशता तथा खेद भी प्रदर्शित किया है। फिर राजा के रूप यौवन और वैभव की प्रशसा और उसके प्रति अपनी हार्दिक सहानभूति द्वारा यह विश्वास दिलाने का यत्न किया है कि वह उसका हितचिन्तक मित्र है, शत्रु नही, और राजा ने भी उसी सूत्र को पकड़ते हुए उत्तर दिया, "शिवजी मेरे लिए भी उतने ही मान्य है जितने तुम्हारे लिए, मै उनकी आज्ञा का उल्लघन करने के लिए तुम्हे कैसे कह सकता हूँ ? किन्तु ऋषि की गऊ की रक्षा करना भी मेरा कर्त्तव्य है और तुम स्वय सेवक हो अत सेवक के उत्तरदायित्व को समझते हो।" इस बातचीत मे आदि से अन्त तक एक शोभा तथा शिष्टता विद्यमान है कही भी दुर्वचन या अशिष्टता का लेश नही। वक्ता की अपने प्रतिपक्षी से यही अपील है कि वह अपने आपको उसकी स्थिति मे रखकर विचार करे। इसमे शब्दो का चुनाव भी वक्ता तथा श्रोता की पद-प्रतिष्ठा, सस्कृति और अवसर के अनुरूप है। रघुवश के अन्य सवाद भी इसी प्रकार के है।

देशकाल

कालिदास के ग्रथो के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उसकी निरीक्षण शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म थी और उसने सारे भारत का परिभ्रमण किया था। कितने ही स्थानो की यात्रा उसने कई बार की होगी और कहीं-कही वह कई-

कई वर्ष तक रहा होगा । भारत के नगर, नदी, पर्वत, पठार आदि, उनकी भौगोलिक स्थिति तथा वहा के प्राकृतिक दृश्य उसके आगे चित्रपट की तरह स्पष्ट थे। कुमारसभव मे हिमालय तथा उसके विभिन्न प्रदेशो का वर्णन और रघुवश तथा मेघदूत मे भारत के विस्तृत भू भागो की झाकी से सिद्ध होता है कि इनसे उसका साक्षात् परिचय था, न कि पुस्तकों मे पढने या सुनने-सुनाने से । बगाल मे धान के खेत, आसाम मे अगरू, कलिग मे नारियल, मलय मे चदन, ताम्रपर्णी मे मोती, तथा काम्बोज मे अखरोटो का निर्देश कर उसने केवल एक-एक शब्द से ही वहा का पूर्ण चित्र-सा खीच दिया है। रघुवश तथा ऋतुसहार के ऋतुवर्णनो मे उसने कही भी देशकाल विरुद्ध कुछ लिखने की भूल नही की। रघुवश के पाचवे, नवें तथा सोलहवे सर्ग मे प्रभात, वसत और ग्रीष्म का वर्णन उसने बडे मनोहर ढग से किया है । तेरहवे सर्ग मे पुष्पक विमान पर सवार श्री राम द्वारा समुद्र का वर्णन तथा सेतुबध से अयोध्या तक के विशेष दृश्यो का विहगावलोकन परवर्त्ती कवियो के लिए चिरकाल से आदर्श का काम दे रहा है ।

रस

कालिदास को मुख्यतया शृगार रस का कवि कहा जाता है किंतु उसने अपने काव्यो मे वीर, करुण, आदि अन्य रसो को भी प्रसगानुसार स्थान दिया है। तीसरे सर्ग मे इन्द्र के साथ रघु के युद्ध मे तथा सातवे सर्ग मे अन्य राजाओ के साथ अज के युद्ध मे वीर रस का पूर्ण परिपाक पाया जाता है। आठवे सर्ग मे इन्दुमती की मृत्यु पर अज का विलाप, करुण रस का उत्कृष्ट उदाहरण है । सोलहवे सर्ग के ग्रीष्म वर्णन तथा जल विहार मे और उन्नीसवे सर्ग मे अग्निवर्ण की विलास लीलाओ मे शृगार रस का प्रवाह है। ग्यारहवे सर्ग मे परशुराम के प्रसग मे वृद्ध दशरथ के शका, आवेग, विषाद परशुराम के अमर्ष, गर्व तथा उग्रता और श्री राम के उत्साह, धृति, मति, आदि सचारी भावो की व्यजना ने सारे सर्ग मे विविधता, गतिशीलता तथा सरसता का सचार कर दिया है। आठवे सर्ग मे सन्यासी रघु की साधना के वर्णन को पढते हुए पाठक का हृदय शान्त रस से आप्लावित हो जाता है ।

रस के प्रसग मे उससे सम्बद्ध एक अन्य प्रश्न पर भी यदि यहा विचार कर लिया जाए तो शायद कुछ अनुचित न होगा ।

रसानुभूति के लिए देवताओं का मानवीकरण आवश्यक है ।

कालिदास ने कुमारसभव मे पार्वती, शिव आदि देवताओ का तथा रघुवंश मे श्री राम आदि अनेक राजाओ के चरित्र का वर्णन किया है । वह

पार्वती तथा शिव को जगत् के माता-पिता और श्री राम को विष्णु भगवान् का अवतार मानता है किन्तु काव्य की दृष्टि से इसमे एक कठिनाई आ जातीहै। हम मानव हैं और हमारे ज्ञान तथा शक्तिया बहुत परिमित हैं, हम नहीं जानते कि अगले ही क्षण क्या होने वाला है और यह अनिश्चितता ही उन उत्सुकता, आशंका, वितर्क, चिन्ता, तथा भय, विस्मय, शोक, क्रोध आदि संचारी तथा स्थायी भावो की जान है जो कथा वस्तु तथा कविता में विशेष महत्त्व रखते हैं। किन्तु जो देवता अलौकिक शक्ति संपन्न होने के कारण पहले से ही सब कुछ जानते है वे उन पूर्वोक्त मनोवेगों के आश्रय नही बन सकते। अत. कवि को उनसे मानवोचित व्यवहार करवाना पडता है। कुमार-संभव का विषय देव-चरित्र है। पार्वती शिव जी को प्राप्त करने के लिए कठोर साधना करती है और उसकी सफलता मे बिलम्ब होने पर व्याकुल होती है। उसकी सखी ब्रह्मचारी को कहती है कि जिस पाषाण हृदय से इन्होने प्रेम किया है वह न जाने कब इन पर कृपा करेगा। और शिव जी भी उसके प्रेम की परीक्षा के लिए प्रच्छन्न वेष धारण करके उसके आश्रम में जाते है। सर्वज्ञ देवताओं के चरित्र मे यह सब अनावश्यक और असगत प्रतीत होता है। अत काव्य मे रसास्वाद के लिए उनका मानवीकरण आवश्यक है और कालिदास ने भी यह कार्य अत्यत कौशल से किया है। रघुवश के पन्द्रहवें सर्ग मे उसने रावण-वध के प्रसंग मे लिखा है कि जब श्री राम ने रावण के सिर काट डाले तब उन्हे पृथवी पर लुढकते देख कर भी देवताओं को यह विश्वास न हुआ कि उनका शत्रु सचमुच मर गया। उन्हे भय था कि वे कही फिर न जुड जाएँ। यहा त्रास शका आदि वे सचारी भाव है जिनसे परिपुष्ट देवताओं का भय दुर्धर्ष पराक्रमी रावण को भी मारने में समर्थ श्री राम की वीरता का व्यजक बनता है। कालिदास देवताओ को सर्वज्ञ[1] मानता है तो भी उसने उन्हें मानव सा बना दिया और ऐसा करने से काव्य मे सरसता आगई। इसी प्रकार रघुवंश के तेरहवें सर्ग मे श्री राम ने अवतारी पुरुष होते हुए भी एक सामान्य मानव की तरह, "जब हम तुम्हारी खोज मे वन की प्रत्येक वस्तु से तुम्हारा पता पूछते फिरते थे तब बोलकर बतलाने में असमर्थ इन लताओ ने अपनी झुके पत्तो वाली शाखाओ को और हरिणियों ने अपने सीगो को दक्षिण की तरफ

१. मातलि —(सस्मितम्) किमीश्वराणां परोक्षम् ? अर्थात् देवता क्या नही जानते ? अभिज्ञान शाकु० अंक ७ में दुष्यन्त मातलि संवाद।

घुमाकर कृपा पूर्वक यह सूचित किया था कि रावण तुम्हे हर कर उधर ही ले गया है," इत्यादि उद्गारो द्वारा ही सीता के प्रति अपने प्रगाढ प्रेम को प्रकाशित किया था। किन्तु ऐसे प्रसगो मे कवि ने इस बात का ध्यान रक्खा है कि इन अलौकिक अथवा अवतारी पुरुषो के चरित्र मे भी अतिमानवता का पुट यथा सभव कम हो और वह भी अन्य मानव-पात्रो के अनुभाव, विभाव आदि की प्रचुर राशि मे ऐसा घुल मिल जाए कि उससे पाठक के चित्त मे प्रसगानुसार कुछ चमत्कार तो उत्पन्न हो किन्तु अविश्वास या अरुचि नही। यदि दशरथ को निश्चय हो कि श्री राम भगवान और सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापक है तो उनके सुख-दुख की चिन्ता या वियोग से वह क्यो विह्वल हो, क्यो सुबाहु मारीच आदि का दमन करने के लिए, उन्हे नि शक हो विश्वामित्र के साथ न भेजदे और क्यो उनके वन चले जाने पर कलप-कलप कर जान देदे ? काव्य का वह पाठक या नाटक अथवा चलचित्र का वह दर्शक भी, जो उन्हे भगवान् मानता है और सीता के वियोग मे उनके विलाप को केवल मानव लीला या नाटक समझता है, उसे पढकर क्यो वैसा प्रभावित हो जैसा किसी व्यथित मानव के हृदय के यथार्थ उद्गार से ? यद्यपि नाटक में नटो के अनुभाव या स्थायी भाव आदि वास्तविक नही होते तो भी कला तथा साधारणीकरण व्यापार के कारण सहृदय उन्हे अवास्तविक नही समझता और इसी कारण उसे रसानुभूति होती है, किन्तु भगवान द्वारा मानव लीला के अभिनय का नटो द्वारा पुन अभिनय यथार्थ जीवन से बहुत दूर जा पडता है और इससे उसकी प्रभावक शक्ति बहुत घट जानी स्वाभाविक है। इसलिए कालिदास ने भक्ति या अद्भुत-रस के प्रसगो मे उसकी कृपालुता या अलौकिक शक्ति प्रदर्शन आदि के अत्यत विशेष अवसरो पर ही इस अतिमानवता का सहारा लिया है, शृ गार, करुणा, सौहार्द आदि मानवोचित भावनाओ के प्रसग में नही। रघुवश के दसवे सर्ग मे रावण के अत्याचारो से पीडित देवताओ की पुकार पर भगवान् का प्रकट होना और उन्हे आश्वासन देना भक्तिभाव तथा अद्भुत रस का पोषक है । इसी प्रकार उसके ग्यारहवे सर्ग मे जब परशुराम श्री राम को बारबार चुनौती देता है कि या तो तू शिवजी का धनुष तोडने के लिए हाथ जोड़ क्षमायाचना कर या हमारे इस धनुष को खीचकर दिखा तब उसके उत्तर में श्रीराम मन्द मन्द मुसकाते हुए उस धनुष को ले लेते है और उस पर अपना अमोघ बाण चढ़ा, उसे कान तक खीच, गभीरता के साथ कहते हैं, "यद्यपि आपने हमारा अपमान

करने मे कुछ कमी नही रक्खी, तो भी हम इस बाण को आप पर छोड़ना नही चाहते क्योकि आप ब्राह्मण हैं । अब आप ही कहें कि इसका क्या हो ?" यह देख परशुराम का नशा उतर जाता है और वह नम्रता से कहता है, "आप साक्षात् भगवान् है, यह मुझ से छिपा नही । मर्त्यलोक मे अवतार लेकर आए आपके वैष्णव तेज के दर्शन की इच्छा से ही मैने आपको उत्तेजित करने की यह ढिठाई की[1] है ।" इस प्रकार के प्रसंगों में कवि ने जिस अतिमानवता की अवतारणा की है उसे कारुणिक अवसरो पर नही आने दिया । लक्ष्मण जब सीता को वन मे छोड कर और अयोध्या मे आकर उसका अन्तिम सदेश श्री राम को सुनाता है तब उनके नेत्रो से अश्रु धारा बहने लगती है। यहा वह पूर्णतया मानव रूप मे चित्रित किए गए है । कालिदास ने अपने काव्यों में देवताओ का मानवी-करण करते हुए भी उन्हे देवता ही रक्खा है। वह उन्हे नैतिकता के उस निम्नस्तर पर नही लाया जिसपर वे होमर के काव्यो मे देखे जाते है ।

गुणरीति तथा शब्द शक्तियां

कालिदास अपनी रचनाओ मे वैदर्भीरीति[2] तथा प्रसाद[3] गुणो के लिए प्रसिद्ध है। उसके काव्यो तथा नाटको की भाषा अत्यन्त सरल और मधुर है। वह कठोर महाप्राण ध्वनियो, कर्कश संयुक्ताक्षरो तथा लम्बे समासो से बहुत बचता है। यद्यपि वीर बीभत्स तथा रौद्र रसो मे गौडीरीति तथा ओज गुण वांछनीय समझे जाते है तो भी कालिदास की कृतियो मे उनका प्रयोग बहुत कम पाया जाता है । कुमार सभव के तीसरे सर्ग मे तपस्या मे विघ्न होने से कुपित शिवजी का वर्णन करने के लिए उसने प्रौढ शली का प्रयोग किया है और लिखा:-

तप. परामर्श विवृद्ध मन्योर्भ्रूभङ्ग दुष्प्रेक्ष्य मुखस्य तस्य
स्फुरन्नु दर्चि सहसा तृतीया दक्ष्ण. कृशानु किल निष्पपात ॥

---

१. प्रत्युवाच तमृषिर्न तत्वतस्त्वां नवेद्मि पुरुष पुरातनम् गा गतस्य तब धाम वैष्णव कोपितो ह्यसि दिदृक्षुणामया ॥ रघु० सर्ग० ११.८५

२ माधुर्यव्यजकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका
अवृत्ति रल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥
सा० द० परि० ९ कारिका २–३

३. चित्त व्याप्नोति य. क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवाऽनल:
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च ॥ सा० द० परि० ८, कारिका ७।

इसमें गौडीरीति तथा ओजगुण है और द्ध, ष्प्रे, क्ष्ण: आदि कठोर ध्वनियो का प्रयोग हुआ है तथा तीन चार पदो के समास भी किये गये हैं। इसी प्रकार मालविकाग्निमित्र नाटक के पाँचवे अक मे सुमति पर डाकुओ के आक्रमण के वर्णन मे लिखा है –

तूणीरपट्टपरिणद्ध भुजान्तराल मापार्ष्णिलम्बिशिखिबर्हकलापधारि ।
कोदण्ड पाणि विनद त्प्रतिरोधकाना मापातदुष्प्रसह माविरभूदनीकम् ॥
(अक ५ पद्य १०)

किन्तु यह कालिदास की प्रिय शैली नही हैं, वह तो प्राय. प्रसन्न पदावली के प्रयोग का पक्षपाती है

उदाहरणार्थ—एकात पत्र जगतः प्रभुत्व नव वय कान्तमिदवपुश्च ।
अल्पस्य हेतोर्वहु हातुमिच्छन् विचार मूढ प्रतिभासि मे त्वम् ॥
रघु सर्ग ३ पद्य ४७

और–गृहिणी सचिव सखी मिथ प्रियशिष्या ललिते कलाविघौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वा वद किं न मे हृतम् ॥
रघु० सर्ग ८ पद्य ६७

लक्षणा व्यंजना

कालिदासमे अपने हृदय के भावों को प्रकट करने वाले शब्दो के चुनाव की विलक्षण क्षमता देखी जाती है। वह ज्यो ही कुछ कहना चाहता है त्यो ही उस अर्थ को प्रकट करने वाले अनेक शब्दो की श्रेणी उसके सम्मुख हाथ बाघ कर उपस्थित हो जाती है और उसकी चुनाव चतुर चक्षु उनमें से उपयुक्त पदावली को ग्रहण कर लेती है। उसकी दृष्टि मे कोई दो शब्द परस्पर पर्यायवाचक नहीं है क्यो कि प्रकरण आदि के अनुसार उनके लक्ष्यार्थ या व्यग्यार्थ बदल जाते है। सस्कृत भाषा में हर,भव, पिनाकी, कपाली आदि शब्द शिवजी के वाचक हैं और पर्यायवाचक समझे जाते है किंतु कालिदास के लिए वे वैसे नही हैं। इसी लिए उसने उनका प्रयोग प्रसग के अनुसार बदल कर किया है।

कुमार सभव के प्रथम सर्ग में कवि ने लिखा है कि नारद जी अपनी मौज में जहाँ तहाँ विचरण करते एक दिन हिमालय के घर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने पिता के पास बैठी पार्वती को देखा तो बोले "तुम्हारी यह

पुत्री हर[1] (शिवजी) की एक मात्र अर्धांगिनी होगी और अपने प्रेमातिशय से उनके आधे शरीर की स्वामिनी बनकर रहेगी" यहाँ कवि ने हर शब्द का प्रयोग इस आशय से किया है कि जो शिव सब को हर लेते हैं उनके भी हृदय को यह हर लेगी।

इन्द्र के दरबार मे कामदेव अपने बल का बखान करता हुआ कहता है "आपकी कृपा से, मे अकेला ही अपने मित्र केवल वसन्त को साथ ले फूलो के इन बाणो से पिनाकधारी हर[2] (शिवजी) के भी छक्के छुडा सकता हूँ अन्य धनुष धारियो की तो बात ही क्या ?" यहाँ भी हर शब्द का वही तात्पर्य है।

हिमालय के घर विवाह की तैयारियाँ धूम धाम से हो रही थी। सब सखियो ने मिल पार्वती की देह को सोलह शृगारो से सजा दिया तो उसका सौन्दर्य ऐसा खिल उठा जैसे फूटती कलियो से लता, निकलते तारो से रात और तैरते पक्षियो से सरिता। अपने ऐसे लुभावने रूप को पार्वती ने दर्पण मे देखा तो आँखे वही अटक गई। हर[3] (महादेवजी) के आगमन की प्रतीक्षा की एक-एक घड़ी उसे भारी होगई क्यो कि स्त्रियों के शृगार की चरितार्थता तो तभी है जब उसे पति देखले"। शिवजी ने पार्वती के हृदय को हर लिया है। अत. यहा भी हर शब्द ही उपयुक्त है।

कामदेव के उत्साह को बढावा देता हुआ इन्द्र कहता है 'हे काम, ये देवगण शत्रु को जीतने के लिये भव[4] (शिवजी) के वीर्य से उत्पन्न होने वाले

---

१. ता नारद कामचर कदाचित्कन्या किल प्रेक्ष्य पितु समीपे।
समादिदेशैकवधू भवित्री प्रेम्णा शरीरार्धहरा हरस्य ॥ कुमार. सर्ग १ पद्य ५०

२. तव प्रसादात्कुसुमायुधोऽपि सहायमेक मधुमेव लब्ध्वा।
कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये ॥
कुमार. सर्ग ३ पद्य १०

३ आत्मानमालोक्य च शोभमानमादर्शबिम्बे स्तिमितायताक्षी।
हरोपयाने त्वरिता बभूव स्त्रीणा प्रियालोकफलो हि वेश ॥
कुमार. सर्ग ७ पद्य २२

४. अमी हि वीर्यप्रभव भवस्य जयाय सेनान्यमुशन्ति देवा.।
स च त्वदेकेषुनिपातसाध्यो ब्रह्माङ्गभूर्ब्रह्मणि योजितात्मा ॥
कुमार. सर्ग ३ पद्य १५

सेनापति की कामना कर रहे है, और तुम्हारा एक ही बाण इस काम को सिद्ध कर सकता है।" यहाँ, शिवजी के वीर्य की अमोघ उत्पादक शक्ति को प्रकट करने के लिए कवि ने (भव) शब्द को चुना।

शिव जी का तृतीय नेत्र उघडते ही काम दग्ध हो गया। उसका वर्णन करता हुआ कवि लिखता है, "हे प्रभो, अपने क्रोध को रोकिए–रोकिए..." देवताओ की यह मनुहार आकाश मे उठ ही रही थी कि भव[1] (शिवजी) के तीसरे नेत्र से उत्पन्न अग्नि मे जल कर कामदेव राख हो गया।" यहा, शिवजी ने देवताओ की प्रार्थना पर भी क्रोध का संहरण नही किया किंतु उनके नेत्र से उत्पन्न अग्नि मे काम भस्म होगया। अत. इस जगह भव शब्द ही कवि को अधिक जँचा।

पिनाकी[2] शिव जी ने पार्वती के सामने ही काम को जला दिया, यह देख, वह निराश हो मन ही मन अपने उस सौन्दर्य को बुरा भला कहने लगी जिससे वह अपने प्यारे के हृदय को न जीत सकी थी। उसने अत्यन्त उग्र तपस्या शुरू की जिससे अन्त मे शिवजी का अन्त करण पसीज गया और वे ब्रह्मचारी का वेश धारण कर उसके आश्रम में आए। तपस्या का कारण पूछने पर उन्हे पार्वती की सखी ने कहा, "ये मानिनी महेन्द्र आदि बडे-बडे दिक्पालो की ओर आख उठा कर भी नही देखती और केवल उस पिनाकी[3] शिव से ही विवाह करने पर तुली हुई है जो काम को जीत लेने के कारण बाह्य रूप पर नही रीझते। इस पर

---

१ क्रोध प्रभो संहर संहरेति यावद्गिर खे मरुता चरन्ति।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदन चकार॥
कुमार० सर्ग ३, पद्य ७२

२. तथा समक्ष दहता मनोभव पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता॥
कुमार० सर्ग ५, पद्य १,

३. इयं महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रियश्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी।
अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात्पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति॥
कुमार०सर्ग ५ पद्य ५३

ब्रह्मचारी बोला, "अरे! उस कपाली[1] शिव को पाने के चक्कर मे पड़कर चन्द्रमा की कमनीय कला तथा ससार के लोचनो को चांदनी-सी सुख देने वाली तुम दोनों ने ही अपनी दुर्दशा अपने हाथों कर ली।" इस सदर्भ में प्रथम दो स्थलों पर शिव के दृढता कठोरता आदि गुणों पर बलदेने के लिए उन्हें पिनाकी कहा गया और अन्त मे उन्हे घृणा का पात्र बतलाने के लिए ब्रह्मचारी द्वारा कपाली। इससे प्रतीत होता है कि कोई भी दो शब्द कवि की दृष्टि में पर्यायवाचक नही[2], जैसा कि ऊपर लिखा भी जा चुका है। आपाततः एक अर्थ के वाचक होने पर भी उनके तात्पर्य मे महान् अन्तर रहता है और उस अन्तर को प्रकट करने के लिए ही वह विशेष शब्द का प्रयोग करता है।

विविध अलंकार तथा उपमा

कालिदास की कला-तूलिका ने विविध अलकारो के वर्णों से अत्यत मनोहर सौन्दर्य-चित्रो की सृष्टि की है। यद्यपि उसने रूपक, व्यतिरेक, उत्प्रेक्षा, विरोध आदि अन्य अलकारों का प्रयोग भी बडे मनोरम प्रकार से किया है तथापि उसकी उपमाओ की छटा अपना विशेष महत्त्व रखती है। इन उपमाओ का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। भौतिक जगत् के पृथवी[3] आकाश[4], प्रात साय[5], सूर्य[6] चन्द्र[7], लता[8] वृक्ष[9] पशु[10] पक्षी[11], मणिमुक्ता[12] आदि

१. द्वय गत सम्प्रति शोचनीयता समागमप्रार्थनया पिनाकिन।
कला च सा कान्तिमती कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी॥
कुमार० सर्ग ५ पद्य ७१,

२. कवि द्वारा जगह-जगह प्रयुक्त अष्ट मूर्ति, भूतनाथ, राजा, प्रेम, भाव, अनुराग आदि सब शब्दो के तात्पर्य में अन्तर है।

३.४. रजोभि. स्यन्दनोद्धूतैर्गजैश्च घनसान्निभै
भुवस्तल मिव व्योम कुर्वन् व्योमेव भूतलम्॥ रघु० सर्ग १, पद्य २९

५.६ सोऽस्त्रव्रजैश्छन्नरथ परेषां ध्वजाग्रमात्रेण बभूव लक्ष्य।
नीहारमग्नो दिनपूर्वभागः किंचित्प्रकाशेन विवस्वतेव॥ रघु० सर्ग ७, पद्य ६०

७. स विवेश पुरी तया विना क्षणदापायशशाङ्कदर्शन।
परिवाहमिवावलोकयन्स्वशुच. पौरवधूमुखाश्रुषु॥ रघु० सर्ग ८, पद्य ७४.

८. ततोऽभिषङ्गानिलविप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना।
स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्री लतेव सीता सहसा जगाम॥
रघु० सर्ग १४, पद्य ५४॥

पदार्थ या दृश्य ही नही किन्तु ज्योतिष[1], व्याकरण[2], तथा दर्शन शास्त्र[3] आदि भी उसके लिए उपमान जुटाने में कोष का काम करते है । शस्त्रीय उपमाए यद्यपि साधारण पाठक के लिए रुचिकर तथा सुगम नही तथापि विद्वानों के चित्त में वे कुछ चमत्कार अवश्य उत्पन्न करती हैं। भौतिक पदार्थों तथा दृश्यो पर आधारित उसकी उपमाए नि.सदेह बहुत सरल, सुन्दर तथा स्वाभाविक हैं । पाठक उन पर जितना ही चिन्तन करता है उनका सौन्दर्य उतना ही निखरता जाता है। उनके कारण, सस्कृत काव्य के क्षेत्र में उसकी विशेष ख्याति है । कुछ उदाहरण देखिए—

गुरु की आज्ञा से राजा गो सेवा मे लग गया इसका वर्णन करता हुआ कवि लिखता है, "गऊ रुक जाती तो वह भी खडा हो जाता, वह चल देती

---

९. तम्य प्रसह्य हृदय किल शोकशङ्कु प्लक्षप्ररोह इव सौधतल बिभेद ।
प्राणान्तहेतुमपि त भिषजामसाध्य लाभ प्रियानुगमने त्वरया स मेने ॥
रघु० सर्ग ८, पद्य ९३

१०. धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्क ।
बध्नाति मे वन्धुरगात्रि ! चक्षुर्दृप्त ककुद्मानिव चित्रकूट ॥
रघु० सर्ग १३, पद्य ४७

११ तयोरुपान्तस्थितसिद्धसैनिक गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनै ।
बभूव युद्ध तुमुल जयैषिणोरधोमुखैरूर्ध्वमुखैश्च पत्रिभि: ॥
रघु० सर्ग ३, पद्य ५७

१२. एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तर भावतन्वी ।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमे ॥
रघु० सर्ग १३, पद्य ४८

१. काप्यभिख्या तरोरासीद्व्रजतो शुद्धवेषयो ।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव ॥ रघु० सर्ग १, पद्य ४६
प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुद चिषस्तन्मिथुन चकासे ।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यससक्तमहस्त्रियामम् ॥ रघु० सर्ग ७, पद्य २४

२. स हत्वा बालिनवीरस्तत्पदे चिरकाक्षिते ।
धातो· स्थानइवादेश सुग्रीव सन्यवेशयत् ॥ रघु० सर्ग १२, पद्य १८

३ पयोधरै पुन्यजनाङ्गनाना निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु यस्या. ।
ब्राह्म सर कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति ॥ रघु० सर्ग १३–६०

तो चल पड़ता, गऊ बैठ जाती तो वह बैठ जाता और वह जल पीती तो वह भी जल पीने लगता। वह इसप्रकार छाया[1] की तरह उसका अनुसरण करने लगा," किसी प्राणी की चेष्टाओ की नकल में छाया से बढ कर कोई अन्य उपमान नही हो सकता। कालिदास अपनी उपमाओ में खीचातानी या जटिल कल्पना का सहारा नही लेता।

शकर का धनुष टूट जाने से परशुराम का क्रोधानल भड़क उठा। उसने श्रीराम के बल की परीक्षा के लिए उन्हे अपना धनुष देकर उसे खीचने को कहा। श्रीराम ने उसे लेलिया तथा उसके एक सिरे को भूमि पर टिका कर ज्योही डोर चढाई कि परशुराम ऐसा निस्तेज हो गया जैसे (पानी-पडने से) आग बुझ कर धूआ[2] ही धूआ रह जाता है। "आग बुझना प्रतिदिन की सामान्य घटना है किंतु कवि ने दो तीन शब्दो मे ही उसे इस ढग से रक्खा है कि उपमेय परशुराम की मुखकान्ति के मलिन पडने का सजीव चित्र खिच जाता है। यहा उपमा के साथ समुच्चय[3] अलकार ने मिलकर वर्णन को अधिक ओजस्वी बना दिया है।

स्वयवर-सभा मे पाण्ड्य राज भी पधारे थे और वे श्याम वर्ण थे। जब इन्दुमती उनके सामने पहुँची तो सखी सुनन्दा उनका परिचय दे अन्त मे बोली, "ये महाराज नील कमल के सामान श्याम है और तुम गोरोचना सी गोरी। यदि तुमने इनसे विवाह कर लिया तो तुम दोनों की शोभा मेघ और उसमे चमकती बिजली[4] की शोभा की तरह बढ जायगी।" इस पद्य मे उपमा के साथ मिले मधुर परिहास ने भी आपस मे एक दूसरे की

---

१. स्थित स्थितामुच्चलित. प्रयाता निषेदुषीमासनबन्धधीर।
जलाभिलाषी जलमाददाना छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्॥
रघु० सर्ग २ का ६

२. तेन भूमिनिहितैककोटि तत्कार्मुक च बलिनाधिरोपितम्।
निष्प्रभश्च रिपुरास भूभृता धूमशेष इव धूमकेतन.॥ रघु० सर्ग ११ का ८१

३. समुच्चयोऽय मेकस्मिन् सति कार्यस्य साधके
खले कपोतिका न्यायात् तत्कर. स्यात् परोपिचेत्॥
गुणौ क्रिये वा युगपत् स्यातां यद्वा गुणक्रिये॥
सा० द० १० परि.८४,८५ कारिका

४. इन्दीवर श्याम वपुर्नृपोऽसौ त्वं रोचना गौर शरीर यष्टिः।
अन्योन्य शोभा परिवृद्धयेवा योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु॥
रघु० सर्ग ६ पद्य ६५॥

शोभा को बढा दिया है । उपमा का आधार साधर्म्य हुआ करता है किन्तु यहां वह साधर्म्य भी श्याम और गौर इनके विरोध पर खडा है यही इसका सौन्दर्य है ।

उपमाओं की गंगा यमुना

रघुवंश के तेरहवे सर्ग मे प्रयाग का वर्णन करते हुए कवि ने उपमाओं का जो गगा-यमुना[1]-सगम बनाया है वह भी दर्शनीय है । विमान द्वारा आकाश मार्ग से अयोध्या की तरफ जा रहे श्री राम प्रयाग को देख सीता से कहते हैं कि हे सुन्दरी, देखो यमुना की तरगो से अठखेलियां करती गगा की लहरिया कैसी सुहावनी लग रही है ? ये कही मोतियो के उस हार सी चमक रही है जिनके बीच मे तरल कान्ति वाले नीलम पिरो दिए गए है, तो कही श्वेत कमलो की उस माला-सी मालूम पडती हैं जिनमे जगह-जगह नील कमल गुथे है । कही ये श्याम हसो मे मिले जुले राजहसो की पक्ति के समान दीखती है तो अन्यत्र ऐसा प्रतीत होता है मानो किसी ने वसुन्धरा रूपी कामिनी की छाती पर चन्दन से ऐसी चित्रकारी करदी हो जिसके बीच मे कही-कही कालागरू के रस से फूल पत्तियाँ बनाई गई है । कही पर ये उजली रात मे फैल रही उस चादनी-सी दीखती है जिसके भीतर जहा-तहा वृक्षो के पत्तो की छाया छितरा रही है और अन्यत्र शरद काल के उन झीने शुभ्र मेघ खण्डो सी जिनके बीच मे नीला आकाश झलक रहा है । यह सगम कही श्वेत भस्म से पुते महादेव जी के उस शरीर सा प्रतीत होता है जिसमे कही-कही काले साँप लिपटे है ।" यहा क्रमश मोती और इन्द्र नील, श्वेत कमल और नील कमल, तथा हस और कादम्बो को उपमान बनाया गया है । जो श्वेत तथा श्याम तरगे दूर से मोती और इन्द्र नील की तरह छोटी दीखती थी वे ही पास आने पर कुछ बड़ी हो गईं, तब कवि ने उन्हे राजहसो और कादम्बो के समान कहा । धीरे धीरे जब दोनें

---

१ क्वचित्प्रभा लेपिभिरिन्द्रिनीलै र्मुक्ता मयी यष्टिरिवानु विद्धा ।
अन्यत्र माला सित पकजाना मिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥
क्वचित् खगाना प्रिय मानसाना कादम्ब ससर्ग वतीव पक्ति. ।
अन्यत्र कालागरुदत्त पत्रा भक्ति र्भुवश्चन्दन कल्पितेव ॥
क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छाया विलीनै. शबली कृतेव ।
अन्यत्र शुभ्राशरदभ्रलेखा रन्ध्रे ष्विवालक्ष्य नभ प्रदेशा ॥
क्वच्चिकृष्णोरग भूषणेव भस्माग रागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गगा भिन्न प्रवाहा यमुनातरंगै ॥ ५४–५७ ।

धाराओं का जल और भी मिल जुल गया तो कवि ने उसे पृथ्वी के वक्षस्थल पर चन्दन और अगरू से की गई चित्रकारी सा बताया । और जब गगा की धवल तरगो मे यमुना की श्यामलता क्रमश और भी क्षीण हो गई तो उसे सफेद बादलो मे से झलकते नीले आकाश तथा महादेव के शरीर पर कही-कही लिपटे सापो सा कहा । एक ही उपमेय के वर्णन के लिए उपमानों की खोज करती उसकी दृष्टि पहले शरीर पर पहने मोती तथा नीलमों और कमलों के हारो पर से होती हुई, कुछ दूर पर लहरा रहे सरोवरों मे तैरते हुए हसो और पृथ्वी के वक्ष स्थल पर की गई चित्रकारी पर और फिर वहा से उठ कर वह आकाश तथा कैलाश वासी शिव तक जा पहुँची ।

स्वयवर सभा मे विराजमान राजाओं के सामने से चली जारही इन्दुमती की समता कवि ने उस दीपक की शिखा[1] से की है

दीपशिखा कालिदास जिसे लिए कोई व्यक्ति रात मे राजपथ पर चला जारहा है । उसका प्रकाश जिस भवन पर पड जाता है वह क्षणभर के लिए जगमगा कर फिर अधकार मे डूब जाता है । इस वर्णन को पढते समय राजकुमारी के छरहरे शरीर, उज्वल गौर वर्ण तथा राजाओ के आशान्वित और निराश होने का पूरा चित्र एकदम सामने आजाता है। सहृदयो को यह उपमा इतनी अच्छी लगी कि उन्होने इसके कारण कवि-का उपनाम 'दीप शिखा' रख दिया ।

इस प्रकार की एक से एक बढकर कितनी ही उपमाए कालिदास के ग्रन्थों में भरी पडी है किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि उसकी सबसे बड़ी विशेषता उपमा ही है । 'उपमा कालिदासस्य ।' प्राचीनो की इस उक्ति का तात्पर्य यही है कि उपमा के क्षेत्र मे अन्य कोई कवि उसके समान नही । उपमा तो एक अलकार मात्र है और काव्य में अलकार का स्थान किसी सुन्दरी के शरीर मे नाक की लौग या हाथ की अगूठी के समान है। किसी युवती के सौन्दर्य वर्णन को इतिश्री उसकी चूड़ी या कर्णफूल की प्रशसा से नही हो जाती । इसी प्रकार कालिदास की केवल उपमा की प्रशसा से उसके प्रति न्याय नही किया जा सकता ।

१· संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं य व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्र मार्गाट्ट इव प्रपेदेविवर्णभावं स स भूमिपालः ।।
रघु० सर्ग ६, पद्य ६७ ।

सभी समाजों तथा उनकी भाषाओं में कुछ तथ्यात्मक, अशोभन, अप्रिय अथवा अमांगलिक बातों को सीधे न कहकर प्रकारान्तर **पर्यायोक्त अलंकार** से प्रकट किया जाता है । हिन्दू समाज मे अन्धे को सूरदास या प्रज्ञाचक्षु कहते हैं और मृत्यु को स्वर्गवास । इसी प्रकार घर आये व्यक्ति से उसके नाम धाम और काम के विषय में अभिधा से न पूछकर "आपका शुभ नाम ? आपका दौलत खाना ? आपने कैसे कष्ट किया ? इत्यादि प्रश्न किए जाते है और वह भी उनके उत्तर मे बडी नम्रता मे ,'जी मुझे रामलाल कहते है, मेरा गरीब खाना···है मे आपको एक कष्ट देने आया हूँ इत्यादि कहता है । इस शिष्टाचार से बोल-चाल तथा व्यवहार मे एक शालीनता और मधुरता आ जाती है । सस्कृत भाषा भी इस नियम की अपवाद नही ।

बाण[1] तथा श्री हर्ष[2] आदि सभी कवियो ने इस शैली को अपनाया है किन्तु उनका भी पथ प्रदर्शक होने का गौरव कालिदास को ही प्राप्त है । वह इस प्रकार के तथ्य कथन को मनोहर ढग से कहने की कला मे विशेष कुशल है। अभि ज्ञान शकुन्तल नाटक के प्रथम अक में अनसूया राजा से पूछती है, "आर्य ने किस राजर्षि के कुल को अलकृत किया है ? किस देश की प्रजा को अपने वियोग से विकलकर आर्य यहाँ पधारे है और वह क्या कारण है जिससे आपके सुकुमार शरीर को भी इस तपोवन तक आने का कष्ट करना पडा है ? नाटको मे ही नही, काव्यो मे भी उसने इस शैली का पालन किया है ।

---

१. "तत्कथय आगमनेन अपुण्यभाक् कतमो विजृम्भित-
विरहव्यथ शून्यतानीतो देश. ?
कि नाम्न समृद्धतपस पितुरयममृतबर्षी
कौस्तुम्भमणिरिव होरेर्हृ दयमाल्हादयति ?
कानि वाऽस्य पुण्यभाजि भजन्त्यभिख्या मक्षराणि रूनाम ?"
॥ हर्ष चरित प्रथम उच्छ्वास ॥

२. निवेद्यताहन्तसमापयन्तौ शिरीषकोषम्रदिमाभिमानम्
पादौ कियद्दूरमिमौ प्रयासेनिधित्सते तुच्छदय मनस्ते ?
अनायि देश कतमस्त्वयाद्य बसन्त मुक्तस्य दशा वनस्य ।
त्वदाप्त सकेत तया कृतार्था श्रव्याऽपि नानेन जनेन सज्ञा ?
॥ नैषध सर्ग ८ पद्य २४, २५ ॥

आचार्य कुन्तल इसे 'वाक्य वक्रता'[1] कह कर वक्रोक्ति के अन्तर्गत मानता है किन्तु दूसरे आचार्य इसे पर्यायोक्त[2] अलंकार कहते है। कालिदास इसका इतना पक्षपाती है कि वह आना-जाना, खाना-पीना, देखना-सुनना आदि को भी प्राय इसी द्वारा प्रकट करता है। 'राजा दिलीप तथा नन्दिनी धेनु अपनी मनोहर गति से तपोवन की ओर आने वाले मार्ग को अलंकृत कर रहे थे।' अर्थात् तपोवन को आरहे थे। अपने सचार से दिनभर दिगन्तो को पवित्र करती, नवकिसलय-सी अरुण सूर्य की आभा ने तथा मुनिजी की उस धेनु ने सांझ होते ही निलय (विलीन हो जाना और घर) की ओर चलने का उपक्रम[3] किया। राजा दिलीप सिंह से कहता है कि आज वह (सिंह) उसके (दिलीप के) देह से ही प्राण[4] धारण करने की कृपा करे' अथात् उसे खाकर गुजारा करलें। वन से वसिष्ठजी की धेनु के पीछे चले आ रहे राजा को रानी के अपलकलोचनो ने ऐसे पीया (देखा) मानो वे बहुत देर से निर्जलोपवासी[5] थे। पार्वती ने गुरु के इस उपदेश को अपने कानो से खूब पीया (सुना)[6]। इसी प्रकार राजा ने शेष नाग के समान शक्तिशाली अपनी भुजापर पृथ्वी की धुरी को फिर धारण कर लिया अर्थात् शासन भार फिर सम्भाल लिया। इन्द्र रघु को कहता है, "तुम सगर की सन्तान के पथ पर मत चलो अर्थात् वृथा ही अपनी जान न दो, इत्यादि भी इसके अनेक उदाहरण है।

रघुवश के छठे सर्ग मे सुनन्दा ने क्रमश. आठ राजाओं का परिचय दे उनसे विवाह का प्रस्ताव किया है किन्तु प्रत्येक प्रस्ताब में नवीनता और

---

१ वक्रोक्ति जीवित? उन्मेष १, कारिका २२

२. पर्यायोक्त यदा भग्या गम्य मेवाभिधीयते॥ सा० द० परि० १० कारिका॥

३. सचार पूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्तेनिलयायगन्तुम्।
प्रचक्रमे पल्लव रागताम्रा प्रभा पतगस्य मुनेश्च धेनुः॥
रघु० सर्ग २ पद्य १५

४. स त्वं मदीयेन शरीर वृत्ति देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद॥

५. पपौनिमेषालसपक्ष्म पंक्तिरुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम्॥
रघु० सर्ग २ पद्य १९

६. आलोकनान्तं श्रवणेवितत्य पीतं गुरोस्तद्वचनं भवान्या॥
कुमार० सर्ग ७ पद्य ?४

अपनी ही विशेषता है। मगधेश्वर[1] के सम्बन्ध मे वह कहती है "यदि तुम्हारी यह इच्छा है कि ये महाराज तुम्हारा हाथ अपने हाथ मे ग्रहण करले तो पाटली पुत्र के महलों के झरोखों से तुम्हें देखती वहाँ की नारियो के नेत्रो को बड़ा सुख मिलेगा। फिर अगराज[2] के पास पहुँच कर वह उसे समझाती है, 'प्रसिद्ध है कि लक्ष्मी और सरस्वती मे स्वाभाविक विरोध है तो भी इनके यहा वे दोनो मिलजुल कर रहती है। हे कल्याणी, तुम रूप मे लक्ष्मी-सी और वाणी मे सरस्वती के समान हो, अत उनके साथ मिलकर उनकी सी तीसरी हो जाओ। अवन्तिनाथ[3] का परिचय देकर वह इन्दुमती को लुभाती है,"हे सुन्दर जाँघो वाली, क्या तुम्हारी इच्छा इनके साथ सिप्रा की तरगो के सपर्क से शीतल पवन से झूमते उद्यानो मे विहार करने की नही होती? अनूपराज[4] को दिखाकर और उनके गुणो का वर्णन कर वह राज कुमारी को प्रेरित करती है कि यदि तुम अपने राजभवन के झरोखे मे बैठ सुन्दर लहरियो वाली नर्मदा के मनोहर दृश्य देखना चाहती हो तो इन महाराज की अकलक्ष्मी बन जाओ, इत्यादि। शेष चार[5] राजाओ के साथ विवाह की चर्चा मे भी उसने इसी रीति का अनुसरण कर अपनी उर्वरा प्रतिभा का परिचय दिया है।

कालिदास के काव्यो मे उपमा तथा पर्यायोक्त ही नही किंतु अन्य भी सब प्रधान अलकार स्थान-स्थान पर पाए जाते है। उदाहरणार्थ

रावणावग्रहक्लान्तमिति वागमृतेन स।
अभिवृष्य मरुत्सस्य कृष्णमेघस्तिरोदधे ॥ रघु० सर्ग १० पद्य ४८ ॥

---

१. अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाण पाणि वरेण्येन कुरु प्रवेशे।
प्रासादवातायनसश्रिताना नेत्रोत्सव पुष्पपुराङ्गनानाम् ॥रघु० सर्ग ६ पद्य२४

२. निसर्गभिन्नास्पदमेकसस्थमस्मिन्द्वय श्रीश्च सरस्वती च।
कान्त्या गिरा सूनृतया च योग्या त्वमेव कल्याणि! तयोस्तृतीया ॥
रघु० सर्ग ६ पद्य २९

३. अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु! कच्चिन्मनसो रुचिस्ते?।
सिप्रातरंगानिलकम्पितासु विहर्तुमुद्यानपरपरासु ॥ रघु० सर्ग ६ पद्य ३५

४. अस्याङ्कलक्ष्मीर्भव दीर्घबाहोर्माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम्।
प्रासादजालैर्जलवेणिरम्या रेवा यदि प्रेक्षितुमस्ति काम ॥ रघु०सर्ग ६ पद्य ४३
५. रघु० सर्ग ६. पद्य ५०, ५७, ६३

५. रघु० सर्ग ५० पद्य ५०, ५१, ५७, ६३, ६४, ६५

इस पद्य में रावण का अनावृष्टि से, देवताओ का सस्य से, विष्णु का मेघ से तथा उसकी वाणी का जल से अभेद प्रतिपादित किया गया है अत. सांग-रूपक है।

तथापि शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरे विपक्षभावे चिरमस्य तस्थुष ।
तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ॥
रघु० सर्ग ३, पद्य ६२ ॥

इस पद्य में 'गुण अपना प्रभाव सर्वत्र दिखाते हैं' इस सामान्य सत्य से रघु की वीरता पर इन्द्र के प्रसन्न होने की विशिष्ट घटना का समर्थन किया गया है अत अर्थान्तरन्यास अलकार है।

चन्द्र गता पद्मगुणान्न भुक्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम् ।
उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला द्विसश्रया प्रीतिमवाप लक्ष्मी ॥
कुमार० सर्ग १, पद्य ४३ ॥

इसमे पार्वती के मुख की शोभा को पद्म तथा चन्द्र की शोभा से उत्कृष्ट कहा गया है। अत व्यतिरेक अलकार है।

शिलाशया तामनिकेतवासिनी निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु ।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयैर्महातप साक्ष्य इव स्थिता क्षपा ॥
कुमार० सर्ग ५, पद्य २५ ॥

यहा बिजली के चमकने मे आँख के उन्मेष और रात्री में साक्षी होने की सभावना की गई है। अत उत्प्रेक्षा अलकार है।

शशाम वृष्टयापि विना दवाग्नि ॥ रघु० सर्ग २ पद्य १४ ॥

इसमे वर्षा के बिना ही दावानल के बुझने का वर्णन है। अत विभावना अलकार है और अजस्य गृह्णतो जन्म० । रघु० सर्ग १० का २४ वा पद्य, इसमे विरोध ।

रघुर्भृशं वक्षसि तेन ताडित पपात भूमौ सह सैनिकाश्रुभि ।
निमेषमात्रादवधूय च व्यथा सहोत्थित सैनिकहर्षनिस्वनै ।
रघु० सर्ग ३, पद्य ६१ ॥

इसमे रघु तथा उसके सैनिको के आँसुओ के एक साथ गिरने, फिर रघु और उसके सैनिको के हर्षनाद के एक साथ ही उठने का वर्णन होने के कारण सहोक्ति अलंकार है। इसी प्रकार—

अनेन पर्यासयताश्रुबिन्दून्मुक्ताफलस्थूलतमान्स्तनेषु ।
प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनामाक्षेप सूत्रेण विनैव हाराः ॥
रघु० सर्ग ६, पद्य २८ ॥

इस पद्य में अश्रुबिन्दु और मुक्ता फलो मे साम्य दिखला फिर अतिशयोक्ति द्वारा उनमें अभेद प्रतिपादन कर विभावना की सहायता से, बिना तागा पिरोये हार बना और उन्हे शत्रु स्त्रियो को पहनाने का वर्णन कर उस द्वारा उनके विधवा हो जाने का निर्देश है। अत इन विविध अलकारो और उनसे परिपुष्ट पर्यायोक्त अलंकार का अङ्गाङ्गीभाव सकर है। यहा सब अर्थालकारो के अलग-अलग उदाहरण दे सकना सभव नही। अत इतना ही पर्याप्त समझना चाहिए।

शब्दालंकार

अलकार के प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व अनुप्रास यमक आदि शब्दालकारो के प्रति उसकी रुचि तथा योग्यता पर भी कुछ विचार कर लेना उचित है। उत्कृष्ट कवि अपनी रचनाओ मे प्रयास पूर्वक ढूँढ-ढूँढ कर अनुप्रास आदि की योजना नही किया करते। वे तो विषय तथा रस के अनुसार स्वय ही यथावसर आ जाया करते है। कालिदास की रचनाओ मे भी ये स्थान-स्थान पर पाये जाते है उदाहरणार्थ—

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शर शरण्य ।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गादुद्धर्तुमैच्छत्प्रसभोद्धृतारि ॥
रघु० सर्ग २, पद्य ३० ॥

अथाथर्वनिधेस्तस्य विजितारि पुर पुर ।
अर्घ्यामर्घ्यपतिर्वाचमाददे वदता वर ॥ रघु० सर्ग १, पद्य ५९ ॥

अनुप्रास के साथ ही वह यमक रचना मे भी चतुर है। यद्यपि कालिदास को कृत्रिमता से प्रेम नही तो भी उसने कही-कही यमक रक्खे है। रघुवंश के नवे सर्ग मे सुन्दर यमक[1] है। इससे उसने शायद यह प्रकट करना चाहा है कि यदि वह चाहे तो इनकी रचना मे भी वह किसी से पीछे नही। प्रतीत होता है कि उसके समय भी कविता को पाण्डित्य प्रदर्शन का साधन समझने की प्रवृत्ति उत्पन्न होने लगी थी, जो पीछे चलकर अत्यन्त बलवती होकर सारी कविता पर छागई। कालिदास को कृत्रिम श्लेष योजना भी पसन्द नही। इसलिए उसने उन्हे अपनी रचनाओ में स्थान नही दिया। कही भूले-

---

१. कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् ।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥
रघु० सर्ग ९ पद्य २६ ॥

झटके दो[1] चार स्थानो पर ही वे आगए है। मेघदूत में दिङ्नाग[2] और निचुल शब्दो के जो दो अर्थ पिछले टीकाकारो ने निकाले हैं वे खीचातानी के सिवा कुछ नहीं।

काव्य मे छन्दों का स्थान

रेल की यात्रा मे हलके झटको की जो लहरियाँ बनती जाती है उनमे झूलता यात्री बरबस ऊँघने लगता है। कुछ वैसी ही अवस्था कविता पढते समय पाठक की तथा श्रोताओ की भी होजाया करती है और उनका हृदय उसी प्रकार की लहरियो मे हिलोरने लगता है। कभी-कभी तो अर्थ-बोध के बिना भी, केवल स्वर के उतार-चढाव से ही वह आनन्दमयी नशीली अनुभूति उत्पन्न हो जाती है। इसका कारण कविता की वह पद-बद्ध रचना है जिसमे स्वरों की एक 'गति' अर्थात् नियमित उतार चढाव (Rhythm) और 'यति' अर्थात् नियत समय पर रुकने (Time) का भी नियम रहता है। पद्य की उस इकाई को पद या चरण कहते है जिसकी आवृत्तियो से पद्य, गीत या कविता चलती है। ये पद प्राय चार हुआ करते है किन्तु यह अनिवार्य नही, क्योकि वेद के गायत्री छन्द मे तीन तथा हिन्दी के छप्पय मे ६ पद होते है। संस्कृत के वृत्तगन्धि गद्य मे तथा हिन्दी के स्वच्छन्द छन्दो मे किसी एक छन्द के न रहने पर भी वह गति अवश्य रहती है जो ऊपर निर्दिष्ट लहर या झूले[3] का काम किया

---

१. राममन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा॥ रघु० ११, पद्य २०॥

२. मेघदूत पूर्वमेघ, पद्य १४।

३. इस प्रसग मे अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध पत्र लेखक विलियम कूपर के एक पत्र का कुछ अश यहा उद्धृत किया जाता है जो मनोरजन के साथ ही पाठक के हृदयको उस झूला झूलने की अनुभूति भी करवा सकेगा—

TO The Rev. John Newton.

July 12, 1781.

My very Dear Friend—I am going to send, what when, you have read, you may scratch your head, and say I suppose, there's nobody knows, whether what I have got, be verse or not by the tune and the time, it ought to be rhyme, but if it be, did you ever see, of late or of yore, such a ditty before? The thought did occur, to me and to her,

करती है और छन्दो मे तो इन दोनो का होना अत्यावश्यक है। भारत में छन्द रचना अति प्राचीन काल से प्रचलित है। वेद छन्दोमय है और विवाह के अवसर पर प्रत्येक वर से छन्द सुनाने का अनुरोध किया जाता है। सस्कृत साहित्य मे सैकडो छन्द है और कवियो ने अपनी रुचि तथा परिपाटी के अनुसार अनेक छन्दो का प्रयोग किया है।

कालिदास ने अपने काव्यो मे केवल १९, २० छन्दो का ही प्रयोग किया है। ऋतु संहार मे वसन्त तिलका, मालिनी, वंशस्थ, इन्द्र वज्रा, उपेन्द्र वज्रा तथा इनकी उपजाति का प्रयोग हुआ है। काव्य की समाप्ति पर केवल दो पद्य शार्दूल विक्रीडित छन्द मे है। मेघदूत का विषय वर्षा ऋतु, प्रवास तथा दो प्रेमियो की विरह वेदना का वर्णन है और उसके लिए कवि ने उस मन्दाक्रान्ता छन्द को चुना है जिसकी मन्थरलय मे एक कसक सी साम लेती सुनाई पडती है। प्रिय पत्नी की मृत्यु पर अज के विलाप और मृत पति के शोक मे क्रन्दन

कालिदास का छन्द प्रयोग

---

as Madam and I, did walk and not fly, over hills and dales, with spreading ails, before it was dark, to Weston Park.

. .. .

... ...

I have heard befoie, of a room with a floor, laid upon springs, and such like things, with so much art, in every part that when you went in, you were forced to begin a minute pace, with an air and a grace, swimming about, now in and now out, with a deal of state, in a figure of eight, without pipe or string, or any such thing; and now I have writ, in a rhyming fit, what will make you dance, and as you advance, will keep you still, though against your will, dancing away, alert and gay, till you come to an end of what I have penn'd; which that you may do, ere Madam and you are quite worn out with jigging about, I take my leave, and here you receive a bow profound, down to the ground from your humble he—

W. C.

इसी प्रकार रामाष्ट प्रास तथा जगन्नाथ की गंगालहरी के अनेक पद्यों में भी पाठक को ऐसी झूला झूलने की अनुभूति प्राप्त हो सकती है।

करती रति के उद्गारो को प्रकट करने के लिए वैतालीयक छन्द ही सर्वोत्तम था अत कवि ने रघुवश के आठवे तथा कुमार सभव के चौथे सर्ग मे उसे ही स्थान दिया है। वसन्त ऋतु मे समस्त प्रकृति मे मस्ती छा जाती है और चेतन-जगत् भी मचल उठता है चित्त की उस चचलता को प्रकट करने के लिए कई कवियो ने यमक युक्त द्रुतविलम्बित छन्द को पसन्द किया है। कालिदास ने रघुवश के नवम सर्ग मे वसन्त ऋतु का वर्णन इसी छन्द मे किया है। विस्तृत कथा के सक्षेप, साधारण घटनाओ के वर्णन, उपदेश आदि के लिए अनुष्टुभ् अच्छा समझा जाता है। रघुवश के प्रथम, दशम, द्वादश, पचदश, सर्गों मे इसी का प्रयोग हुआ है। रामायण तथा महाभारत का भी यही प्रधान छन्द है। वर्णन का प्रवाह इसमे अबाध गति से आगे बढता है।

कालिदास के छदों मे कही हतवृत्तता दोष या शिथिलता नही पाई जाती। उनमे विशेष प्रकार की मसृणता तथा कोमलता रहती है। भावपक्ष तथा कला पक्ष—दोनो की दृष्टि से कालिदास के महाकाव्य सस्कृत साहित्य के समुज्वल रत्न है। कुछ विद्वान् मेघदूत को गीति-काव्य मानते हैं किंतु भारतीय साहित्य-शास्त्र के अनुसार वह खड काव्य है। मेघदूत की रचना कर कविने सस्कृत-कविता के क्षेत्र मे एक नवीन आदर्श उपस्थित किया जो आगे आने वाले कितने ही कवियो के लिए चिरकाल से प्रेरणा स्रोत बना हुआ है। कालिदास प्रथम कोटि का नाटककार है और उसे उत्तम गीतिकार भी समझना चाहिए। उसके नाटको मे अनेक सुन्दर गीत उपलब्ध होते हैं जो यद्यपि प्राकृत भाषा मे है तो भी उनसे उसकी गीतिकाव्य कुशलता का परिचय अवश्य मिलता है। कालिदास की लेखनी जिस क्षेत्र मे भी चली है वही उसने अपूर्व सफलता प्राप्त की है किंतु उसकी सबसे बडी विशेषता वह सौन्दर्य है जो उसकी काव्य कला में सर्वत्र व्याप्त है और जिसके प्रकाश में आकर सब कुछ सुन्दर हो गया है। उसके बनाए सौन्दर्य-चित्र किसी देश या जाति तक सीमित नही, वे विश्व भर के लिए हैं। उन्हें समय पुराना नही कर सकता, वे सदा नये रहने वाले हैं।

उपसंहार

अनुक्रमणिका

ऐतिहासिक या पौराणिक व्यक्तियों के नामों की सूची

भौगोलिक स्थानों के नामों की सूची

कवियों तथा लेखकों के नामों की सूची

ग्रन्थों आदि के नामों की सूची

साहित्यिक विशेष शब्दों की सूची

अन्य विशेष शब्दों की सूची

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	४	हुवा	हुआ
,,	१३	अद्भत	अद्भुत
९	२४	चन्दनन	चन्दनेन
१६	१६	किंत	किंतु
१७	१,२	रहे होगे	रहा होगा
१७	३	उन्होने	उसने
२४	२४	गुरोमुखात	गुरोर्मुखात्
४९	९	-चक	रोचक
५०	३०	सदमनि	सद्मनि
५६	५	धन	धान
५६	२२	-चिरा	रुचिरा
५७	७।१०	फलो ने	फूलो ने
५७	१३	मण्ड्लानि	मण्डला।न
५८	६	जसे	जैसे
५८	१७	मुपति	मुपा।ते
६०	२३	कौनुका	कौतुका
६२	९	बन्ध	बन्धु
६२	३१	रवल	रबला
६६	२५	बन्धु	बंन्धु
६७	२६	मिवकाम्	मिबैकाम्
६८	२	अवसर-किए	अवसर पर किए
६८	६	नट	तट
७१	२	अन	अनु
७४	२६	कुते	करुते
७८	१२'	१३ और	×
८२	१३	रक्तकठै	रक्तकण्ठै
८८	२०	राजा-देख	राजा उसे देख
८९	२८	मिच्छ	मिच्छा
९०	१८	सम्बन्ध	सम्बन्ध मे
९६	१७	भरणा	प्रेरणा
९७	१७	अवस्था	अव्यवस्था
९८	११	उपव्यवथाएं	उपव्यवस्थाएं
१०२	२०	सभा के	समाप्ते
१०२	२१	प्रयप्तः	प्रयतः
१०३	८	अमिज्ञान	अभिज्ञान
१०३	११	ब्र ह्मण	ब्राह्मण पर
१०५	१२	प्रयोजनी	प्रयोजनो
१०६	५	होती थी	होती थी
१०७	३	या	था
१०७	२२	वक्रम	विक्रम
१०९	४	जाती	जाती
१०९	१४	घनी	घनी
११०	२०	चडाकर्म	चूडाकर्म
१११	१९	इस-सूत्र	इस काम सूत्र
११६	३०	एश्वर्य	ऐश्वर्य
११७	२	जिनके	जिनकी
१२६	२३	वध्यो	वघो
१२८	२४	एव व	एव
१२८	२६	वारिका	कारिका
१२९	१७	प्रीत्य	प्रीत्यै
१२९	२५	शाक	शाकु०
१२९	३०	शाक	शाकु०
१३१	१६	अमिज्ञान	अभिज्ञान
१३१	२६	शाकुतत्त्व	शाकुन्तल
१३५	९	कसा	कैसा
१३५	११	वीच में	बीच में ही
१३५	२६	घुई त	छुई न
१३५	३०	सर्व	सबै
१३६	३०	सीदन्त	सीदन्न
१३६	३१	स्थगथति	स्थगयति
१३७	२७	स्यु स्युस्तयो	स्युस्तत्कमो
१४०	२४	खलु न मा	खलु मो
१४१	२८	शिश्य	शिष्या
१४३	९	दि	दिल
१४३	३१	टेड़ी	टेढ़ी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४४	३१	चाहिए	चाहिए ।
१४५	१	समार	सहार
१४५	२२	सदुकल	सदुकूल
१४५	३०	समूच्चते	समूच्यते
१४६	२३	गीठी	मीठी
१४७	३०	तुम्हे भी	तुम्हे तो
१४८	२०	सौहादद्वि	सौहार्दाद्वा
१४९	१६	शापान्नो सप्तमे	शापान्तो मे
१५०	७	कामाम्	वामा
१५२	१६	योग्य वा	योग्यया
१५२	२५	यनुत्तरगम्	मनुत्तरगम्
१५२	२६	अन्तश्चेराणा	अन्तश्चराणा
१५४	२३	यौवनो त	यौवनोन्नत
१५६	२५	रात्रौ य	रात्रौ य य
१५९	१	स्पश	स्पर्श
१६३	१८	Could	Cou'd
१५९	१९	प्रेमियो	प्रतियो
१६५	२८	नवतमुपैति	नवतामुपैति
१६८	९	उनकी	उसकी
१६८	२९	show	show,
१६८	३४	provcd	proved
१६९	१९	those	these
१६९	२८	So if	So it
१७०	१९	स्तात्रगुणा	स्तत्रगुणा
१७०	२२	noisesome	noisome
१७०	२२	adhers	adders
१७०	२२	lark	lurk
१७०	२३	agreed	areed
१७६	२९	enamelld	enamell'd
१७७	१२	श्यामलता	श्यामालता
१७७	१९	dwelt.	dwell"
१७९	७,८	न होता पर मन	न होता हुआ भी मन
१८१	२९	when as	whenas
१८१	३४	As—	Or.
१८१	१६	imprisoned	imprison'd
१८१	२७	is fed	is fed,
१८३	१६	होता था।	होता था

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		मानो	मानो
१८४	१२	ये सौन्दर्य कभी	ये सौन्दर्य चित्र कभी
१८४	१७	रूप विस्मित	रूप-विस्मित
१८४	३०	विधना	विधाना
१८४	३०	शतकककक्ष्ये	शतकलक्ष्ये
१८६	२०	सौन्दर्य किसीने	किसीने सौन्दर्य
१८६	२३	तदन्तयन्था	तत्तदन्यथा
१८६	२४	रेखय	रेखया
१८६	२५	कि चिदान्वि-तम्	किचिदन्वि-तम्
१८९	१	मानस मे कुछ	सानस मे । कुछ
१९१	३	चित्रण	चित्रण,
१९१	४	रीझते	रीझते ।
१९१	२५	कर्तुबन्ध्य	कर्तुमबन्ध्य
१९२	२९	कृपावति	कृपावती
१९४	३०	सगमरुचया	सगमस्त्वया
१९५	२८	पदैरियत्	पदैरियम्
१९७	७	उलट	उलटे
१९३	१८	could	cou'd
१९७	९	प्रम	प्रेम
१९८	२२	हिमरश्म	हिमरश्मा
१९९	२८	stead fast	steadfast
१९९	३५	मनसिवशयः	मनसिशयः
२००	२	प्रवाह'	प्रवाह
२००	३	शेक्सपीयर	शेक्सपीयर'
२००	२३	ever fixed	ever-fixed
२००	३२	not man	nor no man
२०३	२०	मर्त	मर्त्य
२०५	२८	they	thy
२०५	३०	metal	mettle
२०६	१४	बिगुल	बिगुल की
२०६	२५	nooe	none
२०६	३३	I Love	O Love
२०६	३७	set the will	set the wild

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१०	२२	अथवा तृथ्य	अथवा तथ्य-
२१४	२१	कोईर चना	कोई रचना
२२३	३३	राज्य	राज्य मे
२२५	९	अनिवाय	अनिवार्य
२३३	३१	परिष्कृत ह	परिष्कृत हो
२३९	२८	तनप्र	तनयं
२४०	३०	प्रतापान्त	प्रतापात्त
२४१	२४	आसमुन्द्र	आसमुद्र
२४१	२९	यौवनो	यौवने
२४३	१४	कशल	कुशल
२४७	२६	महिलाओ	महिलाओं
२५७	३०	वक्त	वक्त्र
२५७	३०	स्यंभयति	स्तम्भयति
२५७	३०	बनधाति	बध्नाति
२५७	३०	हृदये	हृदय
२५८	२	थ	था
२७६	११	शंकः	शकुः
२७६	१७	सैनिक	सैनिक
२७६	२९	पुन्य	पुण्य